यह सर्वविदित है कि मुनिश्री धनराज संस्कृत, जैन, आगम, साहित्य एवं दर्शन के अधिकारी विद्वान हैं। साथ ही हिन्दी, संस्कृत, प्राकृत, गुजराती, पंजाबी आदि अनेक भाषाओं के हृदयग्राही व्याख्यानी हैं। श्रद्धास्पद अष्टमाचार्य श्री कालूगणी तथा वर्तमान संघ-नायक युगप्रधान आचार्यश्री तुलसी के निर्देशन में आपने देश के विभिन्न प्रदेशों में प्रवास कर हज़ारों लोगों को प्रतिबोधित किया है। इस प्रकार तेरापंथ एवं जैन शासन को मुनिश्री की महान् देन है।

'श्रीव्याख्यान मणिमाला' के लघु एवं सरस व्याख्यान अत्यन्त प्रभावकारी हैं। ऐसे उपयोगी व्याख्यानों का संग्रह अवश्य घर-घर में पहुंचना चाहिए। इसमें मुनिश्री के १०८ व्याख्यान संकलित हैं।

श्री व्याख्यान मणिमाला

श्रीव्याख्यान मणिमाला

शतावधानी मुनि धनराज
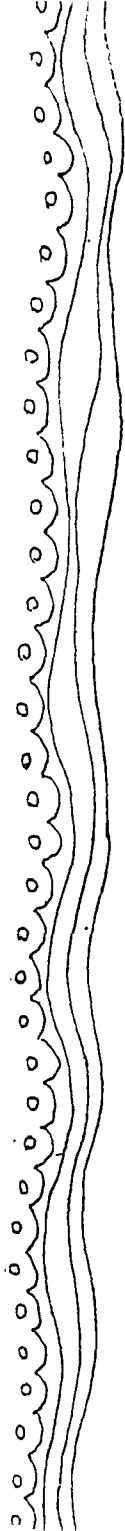
श्रीव्याख्यान मणिमाला
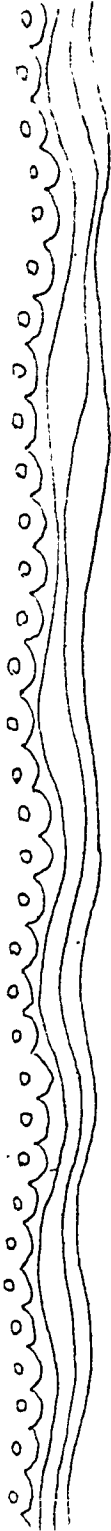
शतावधानी मुनि धनराज

□ संपादक :
मुनि झूमरमल

□ प्रकाशक :
श्रीमती भंवरदेवी सुराणा
सुराणा-हाउस,
डी-३२, सुभाष मार्ग, सी-स्कीम
जयपुर (राजस्थान)

□ प्रथम संस्करण : १९७९

□ मूल्य : बीस रुपये

□ मुद्रक : रूपाभ प्रिंटर्स, शाहदरा, दिल्ली-३२

आदि कथन

जैन मुनि नवकल्प विहारी माने गए हैं। चातुर्मास का एक कल्प होता है और आठ मास के आठ कल्प। चातुर्मास अधिकांश बड़े गांवों-नगरों में किया जाता है एवं शेषकाल (आठ मास) में आस-पास के क्षेत्रों में आवश्यकता एवं अनुकूलता के अनुसार कहीं दो दिन, कहीं चार दिन, कहीं दस दिन, कहीं बीस दिन, यावत् कहीं एक मास ठहरा जाता है। थोड़े दिनों के प्रवास में लम्बे व्याख्यानों की अपेक्षा छोटे-छोटे व्याख्यान अधिक उपयोगी सिद्ध होते हैं। नित्य नये व्याख्यान सुनकर श्रोतागण विशेष प्रभावित होते हैं एवं धर्म-प्रभावना अधिकाधिक विकासोन्मुख होती है।

इसी भावना की प्रबल प्रेरणा ने श्रीव्याख्यान-मणिमाला एवं व्याख्यान-रत्नमंजूषा—इन दोनों ग्रंथों का निर्माण करवाया है। व्याख्यान-रत्न मंजूषा (जो प्रकाशित है) में ५४ व्याख्यान हैं और श्रीव्याख्यान मणिमाला में १०८। प्रस्तुत ग्रन्थ का रचना काल वि० सं० २००२ से २००६ तक का है। अधिकांश व्याख्यान बम्बई-सौराष्ट्र-यात्रा के अन्तर्गत बने हैं। इस पंचवर्षीय यात्रा में काफी नये-नये क्षेत्रों में विचरना हुआ एवं नया-नया कथा साहित्य पढ़ने का सुअवसर मिला। पढ़ने के बाद जो भी कथाएं मुझे सिद्धांत के अनुकूल और विशेष उपयोगी लगीं, उन्हें मैं तत्कालीन रागिनियों में गूंथ कर व्याख्यानों का रूप देता गया एवं श्रीव्याख्यान मणिमाला ग्रन्थ संपन्न हो गया।

उक्त ग्रन्थ विशालकाय होने पर भी अनेक मुनि-महासतियों द्वारा सहर्ष लिपिबद्ध किया गया। महामहिम युगप्रधान आचार्यश्री तुलसी ने भी प्रसंगवश स्मित मुखारविंद से एक बार फरमाया धनराजजी स्वामी ! आपको इतनी नयी-नयी कथाएं कहां से मिलती हैं ? अस्तु !

नाम का रहस्य

इस ग्रंथ का नाम 'श्रीव्याख्यान-मणिमाला' इसलिए उपयुक्त लगा कि जैनों,

बौद्धों एवं हिन्दुओं की जयमालाओं में मनके १०८ होते हैं और इस ग्रन्थ में व्याख्यान भी १०८ ही हैं। दूसरी बात यह है कि १०८ की संख्या में (शून्य नगण्य होने से) १+८ मिलकर ६ बन जाते हैं। ६ का अंक अक्षुण्ण एवं ध्रुव है। इसे चाहे कितनी ही बड़ी संख्या से गुणा लिया जाए, गुणनफल की संख्या का ध्रुवांक ६ ही रहता है। '६' का पहाड़ा पढ़कर जरा देखिए = ६, १८, २७, ३६, ४५, ५४, ६३, ७२, ८१, ६०। पहाड़े की हर संख्या '६' है। यथा = ६, १+८ = ६, २+७ = ६, ३+६ = ६, ४+५ = ६, ५+४ = ६, ६+३ = ६, ७+२ = ६, ८+१ = ६, ६+० = ६।

हां, तो व्याख्यानों की संख्या १०८ रखकर यही मंगल-कामना की गयी है कि वक्ता श्रोता के हृदयों को चिन्मय बनाते हुए मणिमाला के ये १०८ व्याख्यान नव के अंकवत् सदा ध्रुव एवं अक्षुण्ण बने रहें। अस्तु !

वि० सं० २०३५ चैत्र शुक्ला त्रयोदशी फतेहपुर (राजस्थान)

—धनमुनि (सिरसा)

प्रकाशकीय

तेरापंथ धर्म संघ में अनेक विद्वान् साधु-साध्वियां विद्यमान हैं। साहित्य-सृजन, काव्य-निर्माण और ग्रन्थ प्रणयन की एक समृद्ध परम्परा संघ में चली आ रही है। हमारे वर्तमान आचार्यवर श्री तुलसी के सान्निध्य में तो यह धारा और भी सुन्दर ढंग से प्रवाहित हो रही है। पूरा धर्म संघ ही साहित्य के सृजन का विशाल लहराता सागर वन गया है।

अत्यंत हर्ष का विषय है कि श्रद्धास्पद आचार्य प्रवर ने जयपुर नगर को परम मनीषी, महान् कवि, अध्यात्म साधक एवं शतावधानी मुनिश्री धनराज जी के चातुर्मास का लाभ प्रदान किया। यह सर्व-विदित है कि मुनिश्री संस्कृत, जैन-आगम, साहित्य एवं दर्शन के अधिकारी विद्वान् हैं साथ ही हिन्दी, संस्कृत, प्राकृत, गुजराती, पंजावी आदि अनेक भाषाओं में हृदयग्राही व्याख्यानी हैं। श्रद्धास्पद अष्टमाचार्य श्री कालूगणी तथा वर्तमान संघ नायक युगप्रधान आचार्यश्री तुलसी के निर्देशन में आपने देश के विभिन्न प्रदेशों में प्रवास कर हजारों लोगों को प्रतिवोधित किया है। इस प्रकार तेरापंथ एवं जैन शासन को मुनिश्री की महान् देन है।

मुनिश्री धनराज जी का पदार्पण जयपुर नगर में ५४ वर्षों के बाद हुआ है। हमारे परिवार का सौभाग्य है कि मुनिश्री सर्व-प्रथम ग्रीन-हाउस, 'सी' स्कीम में ४३ दिन तक विराजे। मैंने तथा मेरी वहुओं ने आपसे सरस गीतिकाओं में गुंथे हुए अनेक लघु व्याख्यान सुने? पच्चीस बोलों को समझने का विशेष अवसर हमें मिला। आपकी सरल-सहज शैली से हम अत्यन्त प्रभावित हुईं।

'श्रीव्याख्यान मणिमाला' के लघु एवं सरस व्याख्यान भी अत्यन्त प्रभावकारी हैं। ऐसे उपयोगी व्याख्यानों का संग्रह प्रकाशित होकर अवश्य घर-घर में पहुंचना चाहिए। इसमें मुनिश्री के १०८ व्याख्यान संकलित हैं। 'मणिमाला' का प्रकाशन करते हुए मुझे अत्यन्त प्रसन्नता का अनुभव हो रहा है।

आशा है, सरल-सहज एवं सरस शैली में मुनिश्री ने जो भाव, 'श्रीव्याख्यान मणिमाला' के व्याख्यानों में गूंथे हैं, पाठकगण उनसे प्रेरणा प्राप्त कर अपना जीवन प्रशस्त करेंगे।

—भंवरदेवी सुराणा

सुराणा-हाउस
सी-स्कीम,
जयपुर

क्रम

श्रीव्याख्यान मणिमाला

आदि मंगल

तर्ज—मेरा दिल तोड़ने वाले

जिनेश्वर देव की जग में, सदा जय हो, सदा जय हो।
त्रिलोकी नाथ की जग में, सदा जय हो,सदा जय हो ।।ध्रुवपद।।
मारकर मोह-ममता को, धारकर अचल समता को।
बने अरिहंत जो उनकी,सदा जय हो,सदा जय हो। जिनेश्वर ।।१।।
महाव्रत शुद्ध धारण कर, दे रहे ज्ञान उत्तमतर।
परम उपकार कर्ता की, सदा जय हो, सदा जय हो।
सद्‌गुरुदेव की जग में, सदा जय हो, सदा जय हो! ।।२।।
आत्म-उत्थान जो करता, सकल मल कर्म का हरता।
वही सद्धर्म है, उसकी सदा जय हो, सदा जय हो!
धर्म महाराज की जग में, सदा जय हो, सदा जय हो! ।।३।।
देव-गुरु-धर्म को स्मरण कर, पिरोकर प्रवर मणिमाला।
आज सानंद पहनूंगा, सदा जय हो, सदा जय हो!
जिनेश्वर देव की जग में, सदा जय हो, सदा जय हो!
सद् गुरुदेव की जग में, सदा जय हो, सदा जय हो!
धर्म महाराज की जग में, सदा जय हो, सदा जय हो! ।।४।।

मणि पहला

धर्मवीर

देव शक्ति से वनिये ने वारिस वर्षा कर शहर का हैजा शांत किया। राजा ने वरदान मांगने के लिये कहा—संतोषी वणिक ने "आप जैन धर्म धारण कर लीजिये"—यह वरदान मांगा तथा अथक प्रयास करके उसे सच्चा जैन बना दिया वणिक का जीवन चमत्कारी एवं शिक्षाप्रद है।

तर्ज—राधेश्याम

अजर अमर पद वरना हो तो, धर्मवीर बन जाओ तुम !
भवसागर से तरना हो तो, धर्मवीर बन जाओ तुम !
दुख-दोहग से टरना हो तो, धर्मवीर बन जाओ तुम !
धर्म मर्म दिल धरना हो तो, धर्मवीर बन जाओ तुम! ।।१।।
धर्मवीर वह हो सकता है, जो करता है पर-उपकार।
धर्मवीर वह हो सकता है, जो करता है धर्म प्रचार ।।
धर्मवीर वह हो सकता है, जिसका हो अच्छा आचार।
धर्मवीर वह हो सकता है, जिसका हो सच्चा व्यवहार ।।२।।
धर्मवीर वह हो सकता है, जिसे धर्म की पूरी प्यास।
धर्मवीर वह हो सकता है, संतों का जिसको विश्वास ।।
धर्मवीर वह हो सकता है, जिसे नहीं है धन का लोभ।
धर्मवीर वह हो सकता है, जो न दिखाता झूठा रोब ।।३।।
परम भयंकर जंगल है, राही एक उसमें से गुजरा।
रहा दूर निज नगर, बीच ही छिपता सूरज नजर पड़ा ।।
था वनिया वह लगा सोचने, यदि साहस धर जाऊंगा।
रीछ-बाघ से भेंट हुई तो, विना मौत मर जाऊंगा ।।४।।
यहीं कहीं पर रात गुजारूं, चढ़ वृक्षादिक के ऊपर।
इतने ही में नजर चढ़ी है, एक बड़ी-सी गिरि कंदर ।।

आकर लगा बैठने त्यों ही, प्रतिमाधर मुनि दीख पड़े।
बने हुए गलतान ध्यान में, है न खबर कब हुए खड़े ।।५।।
खुश हो बनिया हाथ जोड़कर, बैठ गया मुनि सेवा में।
खैर ! हो गए दो तो ऐसे, सोच रहा मुनि-सेवा में।।
जंगल में छाया अंधेरा, निशा प्रहर अन्दाज गई।
सुनो ध्यान दे ! इतने ही में, घटना अद्भुत घटित हुई।।६।।

तर्ज—हीरा-मिसरी का

आया जंगल से, बबर एक विकराल।
आया जंगल से वह उछल रहा चोफाल। आया० ।।ध्रुवपद।।
बनिया थर-थर धूज रहा है, पदयुग ऋषि का पूज रहा है।
(कोई) है न और रखवाल। आया० ।।१।।
लगा घूमने आ पंचानन, सोच रहा है वणिक भीतमन।
यह घूम रहा है काल। आया० ।।२।।
बैठ गया इतने में आकर, रास्तागीर पै ताक लगाकर
उजब कर्म की चाल। आया० ।।३।।
डर राही ने मुनि ! मुनि ! गाया, सुनकर फौरन शेर पलाया।
छाया हर्ष विशाल। आया० ।।४।।

तर्ज—राधेश्याम

कहता है उठकर मुनिवर से, तुम करुणा से जान रही।
वरना मैं तो मरन-सरण था, यों कुछ मुनि गुन-गीति कही ।।
पूरा बैठ न पाया बनिया, इतने में राक्षस आया।
एक पांव है पांच सीस हैं, कृष्ण वर्ण लम्बी काया।।१।।
ही ! ही! कर उस दुष्ट दैत्य ने, भीषण दृश्य बनाया है।
दंतूसल-से दंत दिखाकर, हड़-हड़ हास्य रचाया है।।
आंखों के डोले उलटा कर, गान प्रानहर गाया है।
एक पैर से अजब-गजब का, नाटक फिर दिखलाया है।।२।।
बनी जान की बेचारे ने, मुनि चरणों में सीस धरा।
दैत्य तुरत ही बन के वामन, उसी गुफा में हुआ खड़ा।।

ऐ राहगीर! निकल यहां से, क्यों बैठा? घुस के अन्दर ॥३॥
हर्गिज तुझे न रहने दूंगा, है मेरी यह गिरिकंदर।
आंख मींचकर बनिये ने तो, सुमुनि-चरण में ध्यान दिया।
कर बकवास निशाचर ने भी, आखिर अपना पंथ लिया ॥
स्वस्थ हुआ बेचारा किंचित्, लगा घूमने इधर-उधर।
अकथ कर्म की कथा, तुरत ही विकट उपद्रव चढ़ा नजर ॥४॥

तर्ज—हरियाणे आजा तू

इतने में आया चालरे, बबुआ एक छोटा-सा।
दिखलाता अद्भुत ख्याल रे बबुआ एक छोटा-सा ॥ध्रुवपद॥
धोती छोटी-सी रेशमी किनार की,
टोपी सिर पर सुनहरी तार की।
मलमल का कुर्त्ता निहाल रे। बबुआ० ॥१॥
कुंडल कानों में खूब ही चमकदार,
हार गल में करों में कड़े जोरदार।
था तन का तेज विशाल रे। बबुआ० ॥२॥
बबुआ फौरन हुआ है वहीं आ खड़ा,
डरकर बनिया जरा-सा आगे को बढ़ा।
अब सुनो बाल का हाल रे। बबुआ० ॥३॥

तर्ज—हरिगीत

चिमठियां भरने लगा, बनिया बेचारा डर गया।
बोलना अच्छा नहीं, यों सोच चुप्पी भर गया ॥
उछल बैठा गोद में, कांटे बनाये हैं विकट।
हद घूमकर के वणिक के, तन पर चुभाये हैं प्रगट ॥१॥
खून से तन हो गया, सारा वणिक का लाल है।
दिल सोचता है हे प्रभो! यह बाल है या काल है?
आज छोड़ेगा नहीं, हर्गिज मुझे खा जायगा।
(अब) हे मुने! तेरी शरन है, तू मुझे छुड़वायगा ॥२॥
ध्यान मुनि का धर रहा है, लुप्त बबुआ हो गया।

तुरत उठ मुनिराज के, चरणों में वनिया सो गया।।
बोलता है आज मेरी, विकट वेला वह गई।
(मैं) तर गया गंगा नदी नाली जरा-सी रह गई।।३।।

तर्ज—राणा जी आया वावसू चलाई

इतने में आया एक हलवाई,
तरह-तरह की लाया साथ मिठाई। इतने में०।।ध्रुवपद।।
लड्डू जलेवी घेवर वरफी,
पेड़ा रवड़ी लच्छेदार सुहाई। इतने में०।।१।।
पिस्तापाक वदाम की कतली,
गर्मागर्म सीरा सुखदाई। इतने में०।।२।।
वड़ा-पकौड़ी-सेव-कचौरी,
आलुओं की चाट मन भाई। इतने में०।।३।।
वोला दिल चाहे सो खा ले,
लाज-शर्म का काम नहीं है राई। इतने में०।।४।।
माल रसीले स्वर्ग में भी दुर्लभ,
तेरे खातिर लाया हूं यहा भाई! इतने में०।।५।।
देख तकलीफ तेरी दिल हुआ गद्गद,
मुफ्त में खिलाऊं नहिं लूं पाई। इतने में०।।६।।

दोहा

माल देख मुख वाणिक के, लगा टपकने नीर।
डर का मारा किन्तु वह, रहा हृदय धर धीर।।१।।

तर्ज—राधेश्याम

हलवाई का विलय हुआ, उदयाचल पर रवि उदय हुआ।
शीश नमा कर मुनिपद में, वनिये का अथ सद्विनय हुआ।।
प्राण वच गए मेरे अव तो, दीनदयाल! दया कर दो!
जन्म कृतार्थ वने ऐसा, मेरे में ज्ञान सुखद भर दो!।।१।।
लाभ निहार मुनीश्वर ने, निज ध्यान तुरत ही पार लिया।
मासखमन के थे भूखे, पर खाने का न खयाल किया।।

संत पुरुष खुद कष्ट सहन कर, सुख औरों को देते हैं ॥
जैसे वृक्ष मार खाकर भी, फल औरों को देते हैं ॥२॥

तर्ज—मेरा रंग दे तिरंगी चोला

मुनि ने उपदेश सुनाया, शिवपुर का पंथ दिखाया ॥ध्रुवपद॥
जीव-अजीव पुण्य-पापादिक, भिन्न-भिन्न बतलाया । मुनि० ॥१॥
दया-दान-उपकार द्विविध सांसारिक धार्मिक गाया। मुनि० ॥२॥
व्रत में धर्म अधर्म अव्रत में, साफ-साफ समझाया । मुनि० ॥३॥
समकित की महिमा बतलाकर, व्रत पर जोर लगाया । मुनि० ॥४॥
सुन चौकन्ना वणिक हुआ पर, व्रत से कुछ भय खाया । मुनि० ॥५॥

तर्ज—पपैया काहे मचाता शोर

सुगुरुजी ! व्रत का कठिन है काम २ ॥ध्रुवपद॥
हूं मैं गरीब निहायत गुरुजी ! भटकूं आठों याम । सुगुरुजी ॥१॥
एक-एक पैसे के खातिर, सुबह गिनूं ना शाम । सुगुरुजी ॥२॥
भोले-भाले ग्राम्यजनों को, छलता रोज निकाम । सुगुरुजी ॥३॥
तोल-मोल में झूठ बोलता, है दिल अधिक हराम । सुगुरुजी ॥४॥

तर्ज—मेरे मौला मदीने बुला लो मुझे

वनिया! मान ले, मान ले! मेरी कही ।
निज जीवन सफल बना ले सही ॥ध्रुवपद॥
जुआ चोरी दगाबाजी, खूब ही तूने करी ।
पर न माणक-मोतियों से, पेटियां अब तक भरी ।
होती रोटी भी पूरी नसीब नहीं । वनिया ! ॥१॥
मानकर मेरी नसीहत, धार लेगा व्रत अगर ।
फिर क्या भूखा ही मरेगा, ज्ञान से कुछ गौर कर ।
यों गुरुजी ने हित सीख कही । वनिया ! ॥२॥

तर्ज—राधेश्याम

बैठ गयी वनिये के दिल में, फौरन उठ व्रत धार लिये ।
हिंसा-स्थूल असत्यादिक के, यथाशक्ति कुछ त्याग किये ॥

जय हो, जय हो, जय हो गुरुजी! वड़ी कृपा की तार दिया।
नमस्कार कर गुरु चरणों में, चलने का सुविचार किया ॥१॥

तर्ज—दिल्ली चलो।

देव आया, देव आया, देव आया जी।
झिगमिगाट करता इतने में देव आया जी ॥ ध्रुवपद ॥
चमक रहे कानों में कुंडल, गल विच हार है।
मस्तक मुकुट मनोहर, तन पोशाक उदार है।
मांग-मांग वर वनिया! सुर ने खुश हो गाया जी। झिग० ॥१॥
देख देव को विस्मित वनिया, मौनी हो गया।
फिर पूछा प्रभु! आप कौन हैं? कहिए कर दया।
किस कारण वर देते हैं, नहिं भेद पाया जी। झिग० ॥२॥
(देव) मुझको गिरिकंदर निवासी, देव मान ले!
रहता हूं निशि-वासर, मुनि सेवा में जान ले!
मुनि के सिवा किसी को कंदर में न वसाया जी। झिग० ॥३॥
देव योग से तूने कल यहां वासा कर लिया,
गुस्से में आ रूप ववर का मैंने धर लिया।
वन राक्षस ववुआ हलवाई फिर डराया जी। झिग० ॥४॥
देख धर्म का प्रेम खुश-खुश हो गया है मन।
मांग-मांग वर दूंगा मेरा सत्य है वचन।
शीश झुकाकर वनिये ने यों साफ सुनाया जी। झिग० ॥५॥

तर्ज—तन नहीं छूता कोई

हे दयानिधि देव! मैं वरदान कुछ चाहता नहीं।
धर्म से वढ़कर जगत में, वर नजर आता नहीं ॥ ध्रुवपद ॥
मरता-मरता जी गया, इस धर्म के सुप्रताप से।
वर दिया गुरुदेव ने अव, और वर भाता नहीं। हे० ॥१॥
नहीं चाहता राजगद्दी, त्यों रईसी ठाट-वाट।
भोग और विलास में भी, जीव अव जाता नहीं। हे० ॥२॥
अय पियारे सज्जनो! कुछ डाल लो इस पर नजर।
क्या गजव संतोप है, अंदाज तक पाता नहीं। हे० ॥३॥

तर्ज—राधेश्याम

अय संतोषी वणिक ! धन्य तू, मर्म धर्म का पाया है।
किन्तु "अमोघं देव दर्शनं" पद्य एक यह आया है ॥
देव दयानिधि! इतना ही जो, आग्रह तुमने ठान लिया।
लो जो कुछ दोगे ले लूंगा, मैंने भी यह मान लिया ॥१॥
काम पड़े जब कभी तुरत ही, याद मुझे तू कर लेना !
फौरन सिद्ध करूंगा, मेरा अंतर्मन से है कहना ॥
नत मस्तक बनिये ने माना, सुर निजस्थान सिधाया है।
फिर प्रमुदित मन कर गुरुवंदन बनिया भी घर आया है ॥२॥

तर्ज—पल-पल छिन-छिन

घर आकर के धर्म-ध्यान में, बनिया वक्त बिताता है।
हिंसादिक पापों से बचकर, निज गुजरान चलाता है ॥ध्रुवपद ॥
रूखी-सूखी जैसी मिलती, खुश हो रोटी खाता है।
कर मजदूरी नेकी से, दो पैसा वणिक कमाता है। घर० ॥१॥
जो चाहे सो कर सकता है, किन्तु न लोभ बढ़ाता है।
नाम इसी का है व्रतधारी, 'धनमुनि' साफ सुनाता है। घर० ॥२॥

दोहा

एक समय उस शहर में, गर्मी पड़ी सजोर।
जोर शोर से चल पड़ा, हैजा घर-घर शोर ॥१॥

तर्ज—मेरा रंग दे तिरंगी चोला

हैजे ने द्वंद्व मचाया, लोगों का मरना आया ॥ध्रुवपद ॥
लोग हजारों मरते हैं नित, गली-गली में राम-नाम सत।
आतंक भयंकर छाया। लोगों० ॥१॥
दौड़ा-दौड़कर रहे डाक्टर, भूख-प्यास की फिक्र न तिलभर।
पर लाभ न लेश लखाया। लोगों० ॥२॥
उलटा उग्र रूप वह पाया, राजा के दिल दुख न समाया।
नगरी में पड़ह बजाया। लोगों० ॥३॥

जो कोई वारिश वरसा दे, उसको नृप दिल चाहा वर दे।
अथ पता वणिक ने पाया। लोगों० ॥४॥
आया है दिल दया ठानकर, सांसारिक उपकार जानकर।
पड़हे के हाथ लगाया। लोगों० ॥५॥

दोहा

राज पुरुप ले वणिक को, आया नृप-दरबार।
पूछ रहा है मुदित मन, नगरी का सरदार॥

तर्ज—राधेश्याम

फटी कटीं-सी पगड़ी तेरी, फटी कटी-सी धोती है।
कैसे वरसायेगा वारिश, लगे बात अनहोती है॥१॥
कपड़ों से क्या मतलव राजन्! वारिश मैं वरसा दूंगा।
पांच मिनट में आंख देखते, जय-जयकार करा दूंगा॥२॥
हुक्म दिया है नर वर ने, अव दिखला जल वरसा करके।
लगा वोलने वनिया दिल में, व्यन्तर सुर को ध्या करके॥३॥

तर्ज—नरम वनो जी नरम वनो

वन जाओ जी वन जाओ! फौरन वादल वन जाओ० ॥ध्रुपवद॥
आसमान कर दो काला, विच चमका दो जल वाला।
गरड़-गरड़ फिर गरजाओ! फौरन० ॥१॥
मूसलाधार जल वरसा दो, दिल राजा का हुलसा दो।
शासन मेरा अपनाओ! फौरन० ॥२॥

तर्ज—सारी दुनिया में दिन हिन्द में

ऐसे कहते ही वादल निकलने लगे,
आसमां में तुरत ही पसरने लगे॥ ध्रुवपद॥
देखते ही घटा घोर छाने लगी,
वीच ऐरावती पल पलाने लगी।
गाज सुन मोर झिंगोर करने लगे। ऐसे० ॥१॥
मूसलाधार पानी वरसने लगा,
टिक न पाया है हैजा खिसकने लगा।

अंगुली लोग दांतो में, धरने लगे। ऐसे० ॥२॥
सब तरफ हो रहा जल जलाकर है,
साथ नदियों के हैजा हुआ पार है।
बस करो! यों नरेश्वर उच्चरने लगे। ऐसे ० ॥३॥
है न बारिश की बिल्कुल जरूरत यहां,
हो गयी जी! धूप की अब जरूरत यहां।
सेठजी देवता को सुमिरने लगे। ऐसे० ॥४॥

तर्ज—राधेश्याम

सुर स्मरते ही मेह रुका है, जय-जयकार हुआ पुर में।
बिना दवा के कट गयी व्याधि, रंगरेली हुई घर-घर में।
मेहरबान हो महाराज ने, बकसी पोशाकें सुन्दर।
आलीशान भवन दे बोला, बसो सेठ! इसके अन्दर ॥१॥
है उपकार अपार तुम्हारा, मरता शहर बचाया है।
जीवन भर यह याद रहेगा, जो सिर कर्ज चढ़ाया है॥
लेकिन वर लेकर कुछ लाला! कर दो सिर हलका मेरा।
बिना लिए उपकार-भार से, उतर रहा चलका मेरा ॥२॥

तर्ज—नरम बनो जी नरम बनो

गर्ज नहीं जी गर्ज नहीं, वर की मुझको गर्ज नहीं ॥ध्रुवपद॥
भजन प्रभु का करता हूं, धर्म ध्यान दिल धरता हूं।
सिर पर मेरे कर्ज नहीं, वर की० ॥१॥
पैदा मेरे मामूली, खरचा भी है मामूली।
झूठी मेरी अर्ज नहीं, वर की० ॥२॥

तर्ज—राधेश्याम

यद्यपि तुमको गर्ज नहीं, पर मन मेरा लखना होगा।
हूं मैं महाराज मेरा भी, शासन कुछ रखना होगा ॥१॥
अति आग्रह लख बोला लाला, मुश्किल है प्रभु! वर देना।
जोर नहीं पड़ता कहने में, पर मुश्किल है कर देना ॥२॥
खुश दिल से मैं कहता हूं, वर मांग-मांग जो कुछ चाहता।

हूं पाबंद जबां का, मेरा वचन बदलने नहिं पाता ॥३॥
राजन् ! जो वर देना है तो, मानें जैन धर्म को आप ।
सुनते ही नृप चौंका बोला, शुरू किये क्या ये आलाप ॥४॥
राज्य ऋद्धि चाहे सो ले ले, (पर) धर्म न बदला जाता है ।
जैन धर्म धारण करने में, दिल मेरा सकुचाता है ॥५॥
दिल क्यों सकुचाता है कहिए ? नृप बोला सुन रे लाला !
कठिनाई है जैन धर्म में, मैं हूं राजा मतवाला ॥६॥
(वणिक) क्या है राज्य आपका, जैनी भरतादिक चक्रेश हुए ।
राम हुए भी कृष्ण हुए, फिर पाण्डव से अवनीश हुए ॥७॥
इन सब ही ने सोच-समझ कर, जैन धर्म को माना है ।
राज्य किया है आखिर में, कइयों ने संयम ठाना है ॥८॥
अर्हद्देव गुरुव्रत धारी, सर्वज्ञोदित धर्म धरा ।
जिसने मान लिया वह जैनी, काम कष्ट का है न जरा ॥९॥

तर्ज—जमाना रंग बदलता है

राजा का दिल बदल गया, सुन जैन धर्म जय-जयकार ॥
ध्रुवपद ॥

राजा वणिक सहित मुनि पास गया,
किया मुनि ने धर्म प्रचार । राजा० ॥१॥
सुन मर्म धर्म का मुनिवर से,
लिया समकित युत व्रत धार । राजा० ॥२॥
सब लोगों में नृप कहने लगा,
बनिये का हद उपकार । राजा० ॥३॥
फिर हर्षित हो अति आग्रह से,
दिया नगर सेठ अधिकार । राजा० ॥४॥

जैन धर्म को खूब बढ़ाया, आध्यात्मिक उपकार किया ॥१॥
अन्त समय में अनशन कर, जा सेठ विराजे अमर विमान
अब श्रोताजन इस वर्णन पर, आंख खोलकर दो कुछ ध्यान
ऐसे-ऐसे धर्मवीर थे, इस भारत के जीवन प्रान
लिए धर्म के जो तन-धन को, गिनते थे तृण-धूल समान ॥२॥
है वर्णन का सार यही, अब धर्मवीर बन जाओ तुम !
मत सोओ सब जाग उठो ! कस कमरे बाहर आओ तुम !
पढ़ करके इतिहास पुराने, वीर प्रभु का ध्याओ तुम !
आते-आते भिक्षु प्रभु पर, गहरा ध्यान लगाओ तुम ॥३॥
उन की ही करुणा से मैंने, धर्मवीर का यह व्याख्यान।
जोड़ा शहर भिवानी में, जहां श्रावक अच्छे श्रद्धावान।
दो हजार दो वर्ष भाद्र वदि, नवमी गोगे का त्यौहार।
सद्‌गुरुओं की दया दृष्टि से, वरता 'धनमुनि' जय-जयकार ॥४॥

मणि दूसरा　　　　　　　　　　सद्गुरु का प्रभाव

राजा प्रदेशी जैसे घोर नास्तिक को भी आस्तिक एवं एक भव के अन्तर से मोक्षगामी बना दिया। धन्य है धन्य है ! श्री केसी सद्गुरुदेव। यहां श्री केसी और प्रदेशी का संक्षिप्त वर्णन पढ़िये।

तर्ज—दिल्ली चलो

तार दिया, तार दिया, तार दिया जी।
केशी ने प्रदेशी राजा तार दिया जी ।।ध्रुवपद।।
नगरी थी श्वेतांविका प्रदेशी राजा था,
हिंसकों के वीच जिसका नाम ताजा था,
दयाभाव तो जड़ से ही उखाड़ दिया जी। केशी ।।१।।
जीव-काया भिन्न-भिन्न जानता न था,
स्वर्ग-नर्क पुण्य-पाप मानता न था।
नास्तिकता में जीवन अपना डार दिया जी। केशी ।।२।।
वुद्धि का खजाना भाई चित्त था वजीर,
भेंटे उसने सावत्थी में केशी गुरु गुणहीर।
अर्ज मानकर गुरुजी ने दीदार[1] दिया जी। केशी ।।३।।
घोड़ों के मिष राजा को दीवान लाया है,
हाथ विना जोड़े ही फौरन प्रश्न उठाया है।
गुरु ने हेतु जगत का विस्तार दिया जी। केशी ।।४।।
समझ गया भूपाल, दिल की वातें जब कहीं,
ज्ञान वृद्धि हित फिर भी प्रश्न पूछे हैं कई।
उत्तर गुरुराज ने उदार दिया जी। केशी ।।५।।

---

१. दर्शन देने श्वेतांविका नगरी पधारे।

तर्ज—माढ़

चर्चा अजब रसीली जी ॥ध्रुवपद॥
अजब रसीली गजब रसाली, सुन रहा सकल समाज।
प्रश्नोत्तर अब करने लगे हैं, राजा और गुरुराज। चर्चा ॥१॥
दादा-दादी नरक-स्वर्ग से, क्यों नहिं कहते आय ?
व्यभिचारी और भंगी का हेतु, गुरु ने कहा समझाय। चर्चा॥२॥
कैसे जीव घुसा कोठी में ? लोहे में ज्यों आग।
कैसे निकला? शब्द शाला से,ज्यों निकले महाभाग। चर्चा ॥३॥
बालक तीर चला न सके क्यों ? त्रुटित धनुष अधिकार।
बोझा न चले क्यों बूढ़े से ? कावर जीर्ण विचार। चर्चा ॥४॥
निकला चेतन क्यों न घटा तन ? वात भरित दृति धार।
तन काटा नहिं दीखा चेतन ? तू मूरख-सरदार। चर्चा ॥५॥
मैं मूरख पर तुम तो चतुर हो, दिखलाओ धर हाथ।
तू वायु सरूप भी देख न सकताजीव अरूप विख्यात। चर्चा ॥६॥
मूरख कहना योग्य नहीं प्रभु ! सुन नृप परिषद चार।
तू है नृप ! पहला व्यापारी, देगा द्रव्य उदार। चर्चा ॥७॥
चेतन सम तन में क्यों अन्तर, दीपक का दृष्टान्त।
पकड़ी न छूटे लोहवणिक सम, रोएगा एकान्त। चर्चा ॥८॥
विना खमाये उठते सुनाई, आचार्यों की बात।
घर जाकर रानी-सुत लाकर, चरण पड़ा नरनाथ। चर्चा ॥९॥

तर्ज—दिल्ली चलो

जीव-काया भिन्न-भिन्न जाने राजा ने।
जैन के अनूठे ऐन माने राजा ने।
धार धर्म भ्रम को विदार दिया जी। केशी ॥१॥
जाते वक्त गुरु ने हेतु चार दिए हैं,
(सुन)राज्य के राजा ने हिस्से चार किए हैं।
छट्ट-छट्ट धर प्यार तन का टार दिया जी। केशी ॥२॥
हाय ! मतलबी रानी ने खाने में दिया जहर,
जान लिया पर न किया गुस्सा चढ़ी जहर की लहर।

धार कर संथारा जन्म सुधार दिया जी। केशी ॥३॥
हुआ देव सुधर्म ऋद्धि अपार पाया है,
एक भवान्तर मोक्ष वरेगा प्रभु ने गाया है।
"धनमुनि" कहता[1] सद्गुरु ने उद्धार दिया जी। केशी ॥४॥

---

१. वि० सं० २००२ मिगसर मास

पेटी

दुर्भावनावश राजपुरोहित ने राजकन्या को विषकन्या ठहराकर पेटी में बंद किया और नदी में बहा दिया। नतीजा यह निकला कि पेटी में से कन्या के बदले बाघ निकलकर पुरोहितजी का लड्डू कर गया क्योंकि बुराई का फल बुरा ही होता है।

तर्ज—हीरा-मिसरी का

बुरा करने वाले, खाते हैं खुद ही मार।
बुरा करने वाले, नहिं पाते सुख तार ॥ध्रुवपद॥
कुंडन पुर अरिमर्दन राजा, नाम सुशीला तनया ताजा।
(था) मात-पिता का प्यार। बुरा ॥१॥
पंडित[1] के घर पढ़ती थी वह, यौवनवय में चढ़ती थी वह।
अति परिचय है बदकार। बुरा ॥२॥
लगा बोलने पंडित इक दिन, मुग्ध हो रहा है मेरा मन।
तू भर ले हुंकार। बुरा ॥३॥
कन्या ने ऐसा फटकारा, कुछ नहीं बोल सका बेचारा।
बैठा घर में हार। बुरा ॥४॥
फिर भी काम न रुकने पाया, पास नरेश्वर के द्विज आया।
उदासीनता धार। बुरा ॥५॥

तर्ज—वंशीवाले श्याम

इक विपदा मोटी आ गयी जी, सुनिये नर सरताज।
मेरे मन में चिंता छा गयी जी, सुनिये नर सरताज ॥ध्रुवपद॥

---

१. जो राजपुरोहित था।

जन्म महाराज कुमारी, पत्नी भी हर्षित भारी।
वर लायक लगा मन भा गई जी। सुनिये० ॥१॥
बहुत गौर से भाई! रेखा पर नजर टिकाई।
विषकन्या स्पष्ट लखा गई जी। सुनिये० ॥२॥
सचमुच सूर्पणखा-सी, अथवा प्रभु! जीवयशा-सी।
लख मति मेरी अकुला गई जी। सुनिये० ॥३॥

तर्ज—दिल्ली नगो

क्या करूं मैं, क्या करूं मैं, क्या करूं मैं अब ?
राजकुमारी का पंडित जी! क्या करूं मैं अब ? ॥ध्रुवपद॥
मेरे दिल में आपका पूरा विश्वास है,
आप ही की करुणा से सब रंग-विलास है।
कैसे इस विपदा से बच आनन्द वरूं, मैं अब राजकुमारी० ॥१॥
तलवार लेकर सिर उड़ा दूं आप जो कहें,
पेटी में कर बन्द बहा दूं आप जो कहें।
हुक्म करें तो जहर पिलाकर प्रान हरूं, मैं अब राजकुमारी० ॥२॥

तर्ज—राधेश्याम

आंख मींच कर पांच मिनट फिर, पंडित जी यों कहने लगे।
मेरे ही सिर पर प्रभु! तुम तो बोझा सारा देने लगे।
शांति कर्म करने का ही, पंडितजी! काम तुम्हारा है।
पेटी में कर बन्द बहा दें! ऐसा शब्द उच्चारा है ॥१॥
वरना पीहर-श्वसुरालय, दोनों को नष्ट करेगी यह।
नदी किनारे जंगल में, जा बैठे पंडित जी यों कह।
रानी से मिल राजा ने, अन्याय तुरत ही कर डाला।
बहुत विलाप किये कन्या ने, किन्तु नृपति था मतवाला ॥२॥

तर्ज—सारी दुनिया में दिन

पेटी सरिता में बहती हुई आ रही,
खोल देखें! अनूठा क्या दिखला रही ॥ध्रुवपद॥
जिससे सगपन हुआ राजकुंवर वही,

आ रहा बाघ था साथ जिन्दा सही।
बोला कुंवर निकालो! यह क्या जा रही? पेटी० ॥१॥
नौकरों ने निकाली है पेटी पकड़,
खोलने पर मिली राजकन्या प्रवर।
बात पूछी कुमारी ने सारी कही। पेटी० ॥२॥
बाघ पेटी में फौरन बिठाया अहो!
बंद करके नदी में बहाया अहो!
दिल में खुशियां इधर विप्र के छा रही। पेटी० ॥३॥

तर्ज—मेरा रंग दे तिरंगी चोला

इतने में पेटी आई, पंडित घर रंग-बधाई ॥ध्रुवपद॥
बोला छात्रो! दौड़ो-दौड़ो, काम दूसरे सारे छोड़ो!
इसे पकड़ो! कर निपुणाई। इतने० ॥१॥
यज्ञ कर्म जो किये थे मैंने, प्रभु के नाम लिए थे मैंने।
उन्हीं ने यह प्रगटाई। इतने० ॥२॥
जा आश्रम में सिद्ध करूंगा, बैठे अकेला मंत्र पढ़ूंगा
है इसमें लक्ष्मी बाई। इतने० ॥३॥
सुन छात्रों ने जल से बाहर, लाकर पेटी कर दी हाजिर।
फिर आश्रम में पहुंचाई। इतने० ॥४॥

तर्ज—रहमत के बादल छाये

कोठे में बैठकर, फिर ऐसी सीख सुनाई ॥ध्रुवपद॥
द्वार बंद कर दे दो ताला, चिल्लाहट होगी विकराल॥
कोई पास न रहना भाई! कोठे० ॥१॥
अगर पास कोई रह जाओगे, तो फिर जीवित नहीं पाओगे।
यों झूठी बात बताई। कोठे० ॥२॥
दूर गई छात्रों की टोली, पंडितजी ने पेटी खोली।
के, कूका कूक मचाई। कोठे० ॥३॥

तर्ज—दिल्ली चलो

बाघ खाया, बाघ खाया, बाघ खाया रे।
छात्रो! जल्दी आओ! मुझको बाघ खाया रे ॥ध्रुवपद॥

हाय ! हाय ! कपटी राजा ने, मुझको ठग लिया,
कन्या के बदले में लाकर बाघ भर दिया।
किससे करूं पुकार मेरा! मरना आया रे। छात्रो०! ॥१॥
बाघ आ गुस्से में पंडित जी पर पड़ गया,
फाड़ तोड़कर पंडित जी का लड्डू कर गया।
छात्रों ने आवाज सुन मन ऐसे ध्याया रे। छात्रो०! ॥२॥
सिद्ध हो रहा मंत्र दूर ही रहना ठीक है,
द्वार खोलो बाद में आकर नजदीक है।
दंग हो गये देखकर विकराल माया रे, छात्रो०! ॥३॥

तर्ज—तुमको लाखों प्रणाम

आया राजकुमार, राजा के दरबार ॥ध्रुवपद॥
कन्या का सब हाल कहा है, नृप ने पश्चात्ताप किया है।
इत द्विज का पता न तार। आया० ॥१॥
करके कोशिश पता लगाया, समाचार सुन सबने गाया।
बुरा-बुरा संसार। आया० ॥२॥
सुन यह वर्णन बुरा न करना, पल-पल में सद्गुरु को स्मरना!
होगा बेड़ा पार। आया० ॥३॥
दो हजार दो रामजन्म-दिन[१] गुर्जर प्रांते ग्राम "जगूदन"
"धन" गाता धर ध्यान। आया० ॥४॥

---

१. चैत सुदी नवमी (रामनवमी)

मणि चौथा — अक्षय तृतीया

भगवान ऋषभदेव को उनके प्रपौत्र श्रेयांसकुमार ने वैसाख सुदी तीज के दिन इक्षु-रस से वर्षी तप का पारणा करवाया था अतः वह दिन अक्षय तृतीया के नाम से प्रसिद्ध हुआ। प्रसंग विशेष रोचक है।

तर्ज—दिल्ली चलो

तीज आई, तीज आई, तीज आई जी।
आदीश्वर के पारणेवाली तीज आई जी ॥ध्रुवपद॥
ऋषभदेव प्रभु पुरी अयोध्या के अधिराज थे,
मनुज धर्म के आदि विधाता त्रिभुवनताज थे,
पूर्व तिरासी लाख राज्य कर दीक्षा ठाई जी। आदीश्वर० ॥१॥
चेले चार हजार नाथ के साथ सिधाये हैं,
अन्तराय ने इधर नाथ को हाथ दिखाये हैं।
एक साल तक अन्न-पानी की विधि नहिं पाई जी। आदीश्वर० ॥२॥

तर्ज—नरम बनो जी नरम बनो

भाग गये जी भाग गये, चेले सारे भाग गये ॥ध्रुवपद॥
जीवन भर भूखा मरना, अरे रे! यह क्या साधुपना।
कुछ भी नहीं बताते नाथ, पूछें अब किससे अवदात।
कह यों रास्ते लाग गये। चेले० ॥१॥
प्रभु भिक्षा को जाते हैं, जन फूले न समाते हैं।
कई हय-गज-रथ लाते हैं, कई रत्न धर गाते हैं।
भाग्य हमारे जाग गये। चेले० ॥२॥
प्रभु वापस मुड़ जाते हैं, तब सारे अकुलाते हैं।
हा! हा! अब प्रभु को क्या दें, पर न समझते रोटी दें।
हस्तिनागपुर नाथ गये। चेले० ॥३॥

तर्ज—अय बाबुजी

स्वप्न अद्भुत इधर एक आया जी, श्रेयांस[1] को।
मानो! मेरु पर्वत को अमृत पिलाया जी, श्रेयांस को० ॥ध्रुवपद॥
उठ करके श्रेयांस बैठा है आसन,
सपने का करने लगा है विमर्शन।
नाथ इतने में आता लखाया जी। श्रेयांस को० ॥१॥
कहीं रूप ऐसा निहारा था मैंने।
कहीं वेष ऐसा ही धारा था मैंने।
बस! जातिस्मरण[2] ज्ञान पाया जी। श्रेयांस को० ॥२॥
क्या होगा इससे अधिक मेरु गिरिवर,
मिला स्वप्न सींचूं इसे अब हुलसकर।
रस इधर इक्षु का चित्त भाया जी। श्रेयांस को० ॥३॥

तर्ज—तन नहीं छूता कोई

हे प्रभो[3]! करके दया, अब पारणा कर लीजिये।
हो गया तन पिंजरा, अब इसे भाड़ा दीजिए॥ ध्रुवपद॥
तपस्या की आ गयी हद, एक साल गुजर गया।
तारना है विश्व को, कुछ गौर दिल में कीजिए! हे० ॥१॥
दोस्त पिछले जन्म के हम, अब पितामह-पौत्र हैं।
लाभ मुझको दान का, झट दीजिये रस पीजिए! हे० ॥२॥

तर्ज—हीरा-मिसरी का

पारणा करते हैं, अब अपने भगवान।
पारणा करते हैं अब पहले भगवान॥ ध्रुवपद॥
पड़पोते की सुनकर अर्जी, पड़दादे ने कर दी मरजी।
करने को कल्यान। पारणा ॥१॥

---

१. बाहुबल का पोता।
२. श्रेयांस कुमार ने पिछले जन्म में प्रभु के साथ साधुपना पाला था।
३. महल से नीचे उतर कर अर्ज करता है।

वूक मांड कर नाथ खड़े हैं, रस के एक सौ आठ घड़े हैं।
वहराये शुभ ध्यान'। पारणा० ॥२॥
बूंद एक भी न गिरी नीची, प्रत्युत शिखा चढ़ी है ऊंची।
सुर गाते गुणगान। पारणा० ॥३॥
धन्य-धन्य! श्रेयांस कुंवर है, सींचा सूखा सुर तरुवर है।
किया कार्य सुमहान। पारणा० ॥४॥

तर्ज—दिल्ली चलो

एक हजार वर्ष तक प्रभु छद्मस्थ फिर रहे,
क्षुधा-तृषादिक कष्ट करोड़ों सहे नये-नये।
बाद बने सर्वज्ञ केवल महिमा छाई जी,
आदीश्वर के पारणे वाली तीज आई जी। तीज आई ॥१॥
केवल ज्ञान मिला वह फौरन माता को दिया,
लाख पूर्व तक दुनिया का उद्धार फिर किया।
आत्मिक वस्तु धर्म है ऐसी साफ सुनाई जी। आदीश्वर० ॥२॥
यही तत्त्व समझाते थे अजितादि तीर्थेश्वर,
इस कलयुग में प्रगटे भिक्षु सच्चे परमेश्वर।
जैन धर्म की महिमा जग में खूब बढ़ाई जी। आदीश्वर० ॥३॥
उन की ही करुणा से जोड़ा यह व्यख्यान है,
शहर अहमदाबाद में मन हर्ष अमान है।
दो हजार दो इक्षु तीज 'धनमुनि' मन भाई जी। आदीश्वर० ॥४॥
इक्षु रस से आज प्रभु ने पारणा किया,
इसी हेतु से दुनिया ने त्योहार कर लिया।
इसे मनाओ! त्याग-तपस्या से सब भाई जी। आदीश्वर० ॥५॥

मणि पांचवां क्षमापना

जिस प्रद्योतन राजा को प्राणों की वाजी लगाकर युद्ध में पकड़ा और उसकी सारी राज्य-ऋद्धि भी अपने अधिकार में ले ली। सांवत्सरिक क्षमा मांगते समय उसने व्यंग्य कसा कि क्या भगवान् महावीर ने यही सिखलाया है ? राजा उदयन संभला और सारी संपत्ति लौटाकर उसको मुक्त कर दिया। देखिए, क्षमा के आदर्श में आप भी अपना मुख !

तर्ज—कर्मन की रेखा न्यारी

होता है कैसे खमाना, सुन लो ! इतिहास पुराना ॥ ध्रुवपद ॥
था समृद्ध वीतभय पत्तन, तापस भक्त नरेश उदायन ।
दस महिपालों ने माना । सुन लो! ॥१॥
प्रभावती नामक पटरानी,चेटक सुता श्राविका जानी ।
कर अनशन सुरपद पाना । सुनलो! ॥२॥
विविध युक्ति से पति समझाया,वना जैन श्रावक व्रतठाया ।
शास्त्रों में खूव गवाना । सुनलो ! ॥३॥
थी राजा के कुब्जा दासी, आया एक श्रावक गुण राशी ।
अति सारी वन मुर्छाना । सुन लो! ॥४॥
दासी ने उसकी सेवा की, उसने कामित गुटिकायें[1] दीं ।
फिर अपने शहर सिधाना । सुन लो! ॥५॥

तर्ज—राधेश्याम

गुटिका भक्षण करके दासी, वनी अप्सरा के अनुहार ।
उसी रोज से सुवरण-गुलिका, नाम हुआ जाहिर संसार ।

---

१. सत्य नाम का श्रावक, जिसके पास देवदत्त कामित गुटिकायें थीं ।

सुनकर[1] उज्जयनीपति प्रद्योतन के दिल में बढ़ा विकार !
करी अनल गिरि द्वारा आकार, रातों-रात किया अपहार ॥१॥

तर्ज—आजादी का दीवाना

सुनकर उदायन महाराज, गुस्से में आया है।
दूत भेजकर प्रद्योतन को, यों कहलाया है॥ ध्रुवपद ॥
सुन-सुन रे नालायक ! लंपट तस्कर नीच ! हराम !
हरण किया दासी का,क्यों मरने ललचाया है। सुन० ॥१॥
लौटा दे दासी को वरना, हो लड़ने तैयार।
मैं हर्गिज नहिं छोडूंगा, तू क्यों इतराया है। सुन० ॥२॥
कहा उज्जयनीपति ने, हाथों में न चूड़ियां हैं।
दासी ले ले किसकी मां ने, लड्डू खाया है। सुन० ॥३॥
फिर भी अपना सिर कटवाने की यदि मरजी हो।
तो बेशक आ जा! यहां, दल सजा सजाया है। सुन० ॥४॥

तर्ज—सारी दुनिया में दिन हिंद में रात है

भेद पाकर[2] उदायन दिवाना हुआ,
सज्ज होकर तुरत ही रवाना हुआ॥ ध्रुवपद ॥
साथ महाराजा ने फौज ली बेशुमार,
तेज थी जेठ की धूप गर्मी अपार।
बीच में देश मरुधर का आना हुआ। बस० ॥१॥
प्यास से फौज के होश उड़ने लगे,
रानी सुर[3] को नरेश्वर सुमिरने लगे।
आ अमर का सरोवर बनाना हुआ। बस० ॥२॥
राह में ऐसे तकलीफ काफी पड़ी,
फौज से किंतु उज्जैन आखिर घिरी।
घोर संग्राम का अथ रचाना हुआ। बस० ॥३॥

---

१. पुनः गुटिका खाकर प्रद्योतन को याद किया ! देवता ने उसे खबर दी।
२. दूत के द्वारा।
३. प्रभावती देव को।

वाद दोनों नरेशों की मिसलत हुई,
हो रथारूढ़ दोनों लड़ें हम सही।
किंतु प्रद्योत का गज राजाना हुआ। बरा० ॥४॥

तर्ज—राधेश्याम

देख अनलगिरि गजारूढ़, महाराज उदायन क्रुद्ध हुआ।
भिड़े उभय घूमे हैं चक्राकार भयंकर युद्ध हुआ ॥
किये प्रहार लगा गज गिरने, भयभ्रांत हो प्रद्योतन।
लगा कूदने पकड़ा अरि ने, थर-थर कांप रहा था तन ॥१॥

तर्ज—हीरा-मिसरी का

दशा व्यभिचारी की, बिगड़ी है बिना शुमार, दशा० ॥ध्रुवपद॥
'मम दासीपति' ऐसे अक्षर लिखवाये हैं भालपट्ट पर।
न सुनी करुण पुकार। दशा० ॥१॥
कर चरणों में जंजीरें जड़, रक्खा है कठ पंजर में धर।
संकट का न शुमार। दशा० ॥२॥
सत्ता अपनी स्थापित की है, सचिव मडली सब बदली है।
हो गया जय-जयकार। दशा० ॥३॥

तर्ज—रहमत के बादल छाये

वापस नृप आ रहा, जय डंका खूब बजा, वापस० ॥ ध्रुवपद ॥
रास्ते में पर्यूषण आया, राजा ने प्रस्थान रुकाया।
रहा वन में कैंप लगा के। वापस० ॥१॥
पौषध संवत्संरिक किया है, धर्मध्यान में चित्त दिया है।
कहा सूपकार ने आके[1]। वापस० ॥२॥
कहिये क्या चाहते हैं खाना? घबराया प्रद्योतन राना।
कहा मारे जहर खिला के। वापस० ॥३॥
बोला भइया! पर्व बड़ा है, मैंने भी उपवास धरा है।
विश्राम करो तुम जाके। वापस० ॥४॥

---

१. प्रद्योतन राजा से

तर्ज—राधेश्याम

प्रतिक्रमण कर नृपति उदायन, मत्सर भाव मिटाना है।
सब जीवों से क्षमा मांगकर, फिर प्रद्योतन पै आता है।।
युद्ध किया मैंने तेरे से, राज्य लिया, फिर कैद किया।
बारंबार खमाता हूं, मैंने अब गुस्सा त्याग दिया।।

तर्ज—जब तुम ही चले परदेश

हद छाया गुस्सा नैन, बोल रहा बैन, प्रद्योतन राना।
कहां सीखे कहो खमाना ? ।। ध्रुवपद ।।
क्या वीर यही फरमाते हैं, क्या आगम यही सुनाते हैं।
धर्म-मर्म क्या तुमने यही पिछाना ? कहां० ।।१।।
धन-संपत् सारी हर करके, लोगों को पंजर में धर के।
हाथ जोड़ फिर ऐसा ढोंग दिखाना। कहां० ।।२।।
जलते पर नमक लगाते क्यों ! मुर्दे पर शस्त्र चलाते क्यों !
पकड़ो अपना रास्ता तजो सताना। कहां० ।।३ ।।

तर्ज—हीरा-मिसरी का

कान निज पकड़ लिया, सुन प्रद्योतन का गान।
कान निज पकड़ लिया, राजा को हो गया ज्ञान ।।ध्रुवपद ।।
कहना इसका सत्य सही है, रत्ती भर भी झूठ नहीं है।
सिर काल खड़ा शर-तान। कान० ।।१।।
बस ! हाथों से बंधन तोड़े, अधिकारी अपने सब मोड़े।
सौंपा राज्य महान। कान० ।।२।।
दासी भी दे दी कहने पर, हुआ रवाना आया निज घर।
अब धर लो तुम ध्यान। कान० ।।३।।

तर्ज—कभी याद करके

जरा सोच करके, एक बार फिरके, तुम देखो खमाना इसका।
और देखो खमाना अपना ।। ध्रुवपद ।।
लड़ने में खर्चा कितना हुआ था,

रास्ते में संकट कितना सहा था—२।
जान झोंक करके, आया जीत करके। तुम देखो० ॥१॥
कर फिर भी ज्ञान, कान अपना ही पकड़ा,
कैदी को छोड़ा जो पंजर में जकड़ा—२।
अब कुछ तोल करके, दिल खोल करके। तुम देखो० ॥२॥
एक ओर से तुम कोर्टों में जाते, एक ओर से फिर मिलकर खमाते।
अरे! क्या है खेल करना या है स्वांग भरना। तुम देखो० ॥३॥
हक जिसका तुमने हर कर लिया है,
लौटा के जब तक न वापस दिया है—१।
तब तक खाली बकना, इसमें बिल्कुल शक ना। तुम देखो० ॥४॥

तर्ज—राधेश्याम

नृपति उदायन बन वैरागी, संयम लेने हुलसाया।
सुत[1] को राज्य न देकर भगिनीसुत को गद्दी बिठलाया ॥१॥
वीर प्रभु से संयम ले मुनि, एक बार निज पुर आया।
हुई मनाही नृप की[2] आखिर कुंभकार ने ठहराया ॥२॥
विष[3] दिलवा कर नृप ने मारा, मुनि केवल पा मोक्ष गया।
कुपित[4] देखने ध्वस्त किया पुर, कुंभकार घर शेष रहा ॥३॥
कुंवर अभीच क्रुद्ध हो, मौसी सुत कौणिक के पास गया।
श्रावकव्रत पाले पर, नृपति उदायन से मन द्वेष रहा[5] ॥४॥

---

१. मेरा पुत्र अभीच कुमार राज्य में आसक्त होकर नरकगामी न बन जाए—ऐसा सोचकर अपने भानजे केशीकुमार को राज्य दिया।

२. राजा केशी के मन में यह शक हो गया कि मामा पुनः अपना राज्य लेने आया है।

३. मुनि अस्वस्थ थे अतः दवा ले रहे थे। राजा ने वैद्य द्वारा विष दिलवा दिया।

४. प्रभावती देव को।

५. उसने उदायन नाम से भी खमतखामना नहीं किया।
वि० सं० २००३ पौष वदी—वेसवां (गुजरात)।

पंद्रह दिन के अनशन में, मरकर वह असुरकुमार हुआ।
साथ पिता के वैरभाव रख, भव सागर में डूब गया ॥५॥
सुन यह वर्णन वैरभाव तज, क्षमा याचना कर लो तुम।
सद्गुरु कृपया "धन मुनि" कहता अजर अमर पद वर लो तुम ॥६॥

मणि छठां मदनरेखा

क्रुद्ध पति को मरणांत के समय उपदेशामृत पिलाकर जिस महासती मदन-रेखा ने नरक से निकाल कर स्वर्गगामी बना दिया, उस महासती का पवित्र जीवन पढ़िए और उस पर मनन करके पवित्र बनिए।

दोहे

तान पक्ष एकान्त नित, करता विश्व विवाद।
उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य युत, जयतु जैन स्याद्वाद ॥१॥
उपदेशक अरिहन्तप्रभु, जपता हूं जयकार।
स्मरता हूं सानन्द फिर, सद्गुरु गुण भंडार॥ २ ॥
द्यूत-मांस-मदिरा प्रभृति, व्यसन सभी भयकार।
आगम में प्रभु ने कहे, यहां सप्तम अधिकार॥३॥

तर्ज—हीरा-मिसरी का

पाप परनारी का, है पापों का सरदार। पाप० ॥ध्रुवपद॥
रावण ने बदनामी पाई, पदमोत्तर ने शर्म गवांई।
मणिरथ हुआ खुवार। पाप० ॥१॥
नगर सुदर्शन मणिरथ राजा, युगबाहु लघुबांधव ताजा।
आपस में हद प्यार। पाप० ॥२॥
लघु बांधव की प्राणपियारी, मदन सुरेखा रूप पिटारी[1]।
लख भूप[2] हुआ सविकार। पाप० ॥३॥

---

१. चंद्रयश नाम का पुत्र था।
२. मणिरथ।

तर्ज—राधेश्याम

इत्र तेल साबुन वस्त्रादिक, लगा भेजने नृप फिर-फिर ।
तात समान समझकर लेती रही सती मन निर्मलतर ।।
एक रोज पा मौका आकर, लगा बात गंदी करने ।
फटकारा हो क्रुद्ध, सती के नेत्र लगे लोहो झरने ।।१।।
चला गया पापी हत मारा, हाल सती ने खोल कहा ।
पति ने ज्यों-त्यों समझा करके,हृदय सती का शांत किया ।
चन्द्रस्वप्न से हुई सगर्भा, एक रोज क्रीडा करने ।
नगर बाग में गए दंपती, रात रहे आनंद वरने ।।२।।

तर्ज—सारी दुनिया में दिन हिंद में रात है

राजा मणिरथ का इतने में आना हुआ ।
बस ! सती का सदन में सिधाना हुआ ।। ध्रुवपद ।।
उस वखत कम-से-कम रात आधी गई,
अश्व से भूप उतरा है फौरन वहीं ।
छोटे भाई का मस्तक झुकाना हुआ । राजा० ।।१।।
बस ! तुरत निर्दयी ने चलाई छुरी,
ओह ! पुकारा के प्यारी आ बाहर खड़ी ।
अश्व चढ़कर इधर वह रवाना हुआ । राजा० ।।२।।

तर्ज—जब तुम ही चले परदेश

पापी कर दुष्कृत घोर, लगाई दौड़, कर्म ने वारा ।
आ डंक सांप ने मारा ।। ध्रुवपद ।।
वह सांप बड़ा ही जहरी था, पापी का पूरा वैरी था ।
दबी पूंछ बस ! उछल किया फुफकारा । आ० ।। १।।
घोड़े से नीचे नृपति गिरा, मर करके चौथी नरक पड़ा ।
नरतन रत्न अमोल, हाथ से हारा । आ० ।।२।।

जो बुरा पराया करता है, वह उस के ही सिर पड़ता है।
है फल हाथों-हाथ न यहां उधारा। आ० ॥३॥
सती दहल गई इत देख दशा, हा! हा! अब पति तो
चल ही बसा।
छा रहा इसके दिल में क्रोध अपारा! आ० ॥४॥
यदि ऐसे ही मर जायेगा, तो बेशक दुर्गति पाएगा।
सोच सती यों दे रही धर्म सहारा। आ० ॥५॥

तर्ज—रहमत के बादल छाये

मरना एक रोज है, पिया! दिल से क्रोध हटा लो!
मरना एक रोज है, सब जीवा जून खमालो! ॥ध्रुवपद॥
मेरे पर पिया! मोह न लाओ! भाई पर दिल द्रोह न लाओ।
दोनों एक नजर निहालो! मरना० ॥१॥
अरिहंतों का सुमिरन करलो। नाम सुगुरु का दिल में स्मरलो!
जिन धर्म हृदय में ध्यालो! मरना० ॥२॥
पंचास्रव का त्याग करो तुम, आत्मिक गुण से राग करो तुम।
मेरा कहना दिल में रमालो! मरना० ॥३॥

तर्ज—अंखियां मिला के

गुस्सा हटा के, सब को खमाके, चला युगबाहु ॥ध्रुवपद॥
"खामेमि सव्व जीवे" मुख से खुश होकर गाया।
तज करके प्राण पंचम स्वर्ग में, डेरा लगाया। गुस्सा० ॥१॥
देखो इस महासती ने, प्रियतम का जन्म सुधारा।
अपना क्या होगा पीछे लेश भी, दिल में न विचारा। गुस्सा० ॥२॥
अबकी दुनिया तो मरते, टाइम पर स्वार्थ गाती।
मरने वाले के सुख-दुःख पर, नहिं ध्यान लगाती। गुस्सा० ॥३॥
करती हो खैर! जो कुछ, सोचा अब महासती ने।
नहिं मालूम जेठ करेगा क्या-क्या? चलकर जाऊं वन में
गुस्सा० ॥४॥

तर्ज—जब तुम ही चले परदेश

बस! सती बदलकर वेष, चली परदेश, मरा पति प्यारा।
रखने को शील पियारा ॥ध्रुवपद॥
जंगल में दौड़ी जाती है, आंखों से अश्रु बहाती है।
गर्भवती थी जन्मा सुत सुखकारा। रखने० ॥१॥
पीछे का भय अति भारी था, कारण महाराज विकारी था।
सुत ने चलने का अथ साहस हारा। रखने० ॥२॥
नामांकित मुद्री पहनाकर, मणिकंबल पर शिशु को ठाकर।
गद्‌गद्‌ होकर ऐसा शब्द उच्चारा। रखने० ॥३॥
सुत! पुण्य-पाप जैसे तेरे, होंगे सुख-दुख वैसे तेरे।
लेती है अम्मा तो आज किनारा। रखने० ॥४॥
यों कहकर सती सिधाती है, छाती तो फटने चाहती है।
पति-सुत का दुख साल रहा अनपारा। रखने० ॥५॥
सर एक देख सुख पाई है, सती धोने वस्त्र सिधाई है।
निकला हाथी जल से इत मतवाला। रखने० ॥६॥

तर्ज—राधेश्याम

पकड़ सती को जल-हाथी ने, नभ में शीघ्र उछाला है।
आता था मणिप्रभ खग उसने, ध्यान इधर से डाला है।
नीचे गिरती हुई निरखकर, आकर ठाना तुरत विमान।
लेशमात्र ना चोट लगी है, बचे सती के प्यारे प्रान ॥१॥
मोहित हो खेचर ने लेकिन, भोग-प्रार्थना की फौरन।
नव प्रसूता हूं न भोग के लायक, दुखित हूं सुत बिन ॥२॥
विद्याबल से खेचर बोला, पहुंचा सुत मिथिलापतिघर[1]।
सभी तरह सकुशल[2] है अब तू, मेरी आशा पूरी कर ॥३॥
बिना शांति के प्रेम न होता, खग लाया मुनिचरणों[3] में।
इतने में युगबाहु देव भी, आ पहुंचा मुनिचरणों में ॥४॥

---

१. पद्मरथ राजा।
२. उसका नाम नमिकुमार रखा है।
३. मणिचूड मुनि जो मणिप्रभ के पिता थे, उन्होंने ज्ञान से पुत्र को व्यभिचारी समझकर उसे ब्रह्मचर्य का उपदेश दिया।

महासती को वंदन कर, फिर, मुनिपद शीश झुकाया है।
विस्मित हो पूछा खग ने, सुर ने सब हाल सुनाया है ॥५॥
उपकारी लख मैंने पहले, इसका विनय रचाया है।
सुधरा खगमन गया स्थान, अथ महासती ने गाया है ॥६॥
नाथ ! पुत्रदर्शन करवा दो ! देव तुरत मिथिला लाया।
वहां हुए सतियों के दर्शन, सुन वाणी संयम ठाया ॥७॥
उभय बंधुओं के, मरने से, इधर हुआ है हाहाकार।
कर संस्कार चन्द्रयश राजा, बना हुआ सुख का सचार ॥८॥
माताजी का पता लगाने, काफी दौड़ा-दौड़ी की।
खबर न मिली हारकर आखिर, राजकुंवर ने बस कर ली ॥९॥
राज्य कर रहा परम शांति से, इधर बड़ा हो नमि सुकुमार।
पढ़-लिख योग्य विशेष हुआ, राजा ने सौंपा राज्य उदार ॥१०॥

तर्ज—खूने जिगर को पीते

मतवाला होकर आया रे, हाथी मिथिलेश का।
नृप चन्द्रयशा ने पाया रे, हाथी मिथिलेश का ॥ध्रुवपद॥
श्री नमि ने पता लगाकर, कहलाया दूत पठा कर।
हाथी को क्यों रुकवाया रे, हाथी मिथिलेश का ॥१॥
या तो हाथी दे दो ! वरना कर आयुध ले लो !
सुन चंद्रयशा सज धाया रे, हाथी मिथिलेश का ॥२॥
होने लगी लड़ाई, यह खबर सती ने पाई।
गुरुणी से हाल सुनाया रे, हाथी मिथिलेश का ॥३॥
यदि मैं आज्ञा पाऊं, जा दोनों को समझाऊं।
लख लाभ हुक्म बकसाया रे, हाथी मिथिलेश का ॥४॥

तर्ज—आजादी का दीवाना

सतियों के परिवार से, सेना में आई है।
रूं रूं में नृप चंद्रयशा के, खुशियां छाई हैं ॥ ध्रुवपद ॥
नमस्कार कर पूछा कहिये, आने का कारण ?
क्यों इक हाथी खातिर, इतनी बड़ी लड़ाई है। सतियों० ॥१॥
पति के मरने से लेकर, सब बात सुनाई है।

चंद्रयशा रोने लगा, पहचाना भाई है। सतियों० ॥२॥
दोनों भाई मिले प्रेम से, शांत हुआ संघर्ष।
संयम ले फिर ज्येष्ट बंधु ने,शिवगति पाई है। सतियों० ॥३॥
न्याय-नीति से उभय राज्यकर, श्री नमि राजा ने।
चूड़ी से प्रति बुद्ध होकर, दीक्षा ठाई है। सतियों० ॥४॥
महासती ने संयम पाला, आखिर धर अनशन।
आठों कर्म खपाकर,पंचम गति अपनाई है। सतियों० ॥५॥

तर्ज—राधेश्याम

सुन वर्णन परनारी तजकर, भवसागर से तर जाओ !
सती मदनरेखा सम स्वजनों, को सच्चा पथ दिखलाओ।
दो हजार तीन संवत, सित पौष पंचमी दिन सुखकार।
स्टेशन गंगाधरा सुगुरु कृपया 'धन मुनि' मन हर्ष अपार ॥१॥

मणि सातवां

मोती का हार

जो मोती के हार तुल्य धर्म को प्राप्त करता है वही वीरसिंह की तरह सम्यक्त्व मुकुट को पाता है। दृष्टान्त अद्भुत रस से परिपूर्ण है, जरा पढ़कर दृष्टान्त पर विचार कीजिए।

दोहा

दया, त्याग, उपदेश मय, आज्ञा मय अनमोल।
जैन धर्म जग में जयतु, तारन भवजल कोल[1]॥

तर्ज—बना मन मंदिर आलीशान

धर्म यह है मोती का हार, पहन लो ! होगा बेड़ा पार ॥ध्रुवपद॥
खड्ग सिंह मणिपुर का राजा, हय-गय-रथ-पायक दल ताजा।
दुनिया में सुयश अपार। धर्म० ॥१॥
वीरसिंह था एक सिपाही, रोटी सुख से मिल नहिं पाई।
मरने का किया विचार। धर्म० ॥२॥
कुएं में गिरने को धाया, रास्ते में कागज एक पाया।
थे समाचार ये सार। धर्म० ॥३॥

तर्ज—अय बाबु जी

रात में आ किसी ने चुराया रे, मेरा मुकुट।
अब तलक भेद मैंने न पाया रे, मेरा मुकुट ॥ध्रुवपद॥
हीरे जड़े और पन्ने जड़े थे,
माणिक जड़े और मोती जड़े थे।
धन करोड़ों का मैंने लगाया रे। मेरा मुकुट ॥१॥

---

१. नौका।

बैठा था सानंद महलों के अन्दर,
गोखे में रक्खा मुकुट वह मनोहर।
देखते-देखते आ उड़ाया रे। मेरा मुकुट ॥२॥
था कौन मैं कुछ समझने न पाया
था कोई राक्षस तथा देव माया।
आदमी तो नजर में न आया रे। मेरा मुकुट ॥३॥
मेरे मुकुट को मिला दे जो लाकर,
दूं लाख रुपये नहीं फर्क तिलभर।
वीर पढ़कर न फूला समाया रे। मेरा मुकुट ॥४॥

तर्ज—श्री महावीर प्रभु के चरणों में

हट गया मरने से मन, अब झट राजमहल में आया है।
लखपति बनने को दिल ललचाया है ॥ध्रुवपद॥
सुन लो महाराजा, दो कनक-कटोरा ताजा
महलों में सजकर साजा।
बैठूंगा नृप ने हां फरमाया है। हट० ॥१॥
गोखे में रखकर, वह कनक कटोरा सुंदर।
तलवार तेज निज कर धर।
छुपकर इक तर्फ खड़ा हुलसाया है! हट० ॥२॥

तर्ज—मेरा रंग दे तिरंगी चोला

इतने में पंजा आया, दिल वीरा विस्मय पाया ॥ध्रुवपद॥
धीरे-धीरे पंजा आकर, टिका है उस प्याले के ऊपर।
बस! प्याला तुरत पलाया। इतने० ॥१॥
दिवस दूसरे नृप से मिलकर, उस गोखे में बैठा जमकर।
पंजे का ध्यान लगाया। इतने० ॥२॥
पंजा वही प्रथम दिन वाला, आता वीरसिंह ने भाला।
दे गल हाथ उठाया। इतने० ॥३॥

तर्ज—चुराकर ले गया जालिम

वीर तो दिल में दहलाया, बोलने भी न पाया है ॥ध्रुवपद॥

आ गई आंख अंधेरी, वहां फिर थी कहां देरी।
आंख खुलते ही देखा तो, नजर इक दैत्य आया है। वीर ॥१॥
तर्फ चारों ही जंगल है, जल रही आग चूल्हे में।
हड्डियां और चमड़े का, इधर इक ढिग दिखाया है। वीर ॥२॥
सो रहे तीन बिल्ले इत, रंग में एक धोला है।
दूसरा स्याह काला है, चित्र[1] अंतिम लखाया है। वीर ॥३॥
लगा है सोचने वीरा, लाख तो पड़ गये भारी।
किन्तु हिम्मत से कौमत है, ऐसे साहस बढ़ाया है। वीर ॥४॥

तर्ज—राधेश्याम

रौद्र रूप वह दैत्य इधर से, लगा पूछने खड़ा निकट।
क्या इच्छा है ? वीरसिंह ने, कहा चाहिए मुझे मुकुट ॥
ओ हो ? तुमको मुकुट चाहिये, जी हां ! लेकर जाऊंगा।
अगर न दूंगा ? तो बेशक, तलवार तुझे दिखलाऊंगा ॥१॥
मुझ को भी ? तेरे में क्या है, तस्कर तू मैं साहूकार।
अरे मार डालूंगा ! फिर क्या ? सबको मरना है इकबार।
वीरसिंह के इस साहस से, होकर खुश-खुश दिल में दैत्य।
शिला दूर कर एक बड़ी-सी, उतर गया है दर में दैत्य ॥२॥

तर्ज—दिल्ली चलो !

हार लाया, हार लाया, हार लाया जी।
अंदर जाकर दैत्य फौरन हार लाया जी ॥ध्रुवपद॥
नीलम त्यों पन्नों का कंठा एक उदार था।
हार दूसरा मोतियों का चमकदार था।
रखते ही बिल्लों ने अद्‌भुत दृश्य दिखाया जी। अंदर ॥१॥
सो रहे थे तीनों ही तत्काल उठ गये,
दानव के दोनों कंधों पर दो आ जम गये।
सिर पर चढ़कर तीसरे ने आसन ठाया जी। अंदर ॥२॥

---
१. चितकबरा।

वीरसिंह पर बिल्ले तीनों ध्यान लगा रहे।
वीरसिंह जी देख दिल में, खिलखिला रहे।
इस दशा में दैत्य ने, ऐसे फरमाया जी। अंदर ॥३॥
भैया! तेरे हाजिर, ये दोनों ही हार हैं।
मन चाहे सो ले ले! यह मेरी मनुहार है।
क्या-क्या गुन हैं इनमें? मैं तो समझ न पाया जी। अंदर ॥४॥

तर्ज—हीरा-मिसरीका

गुन इन दोनों के, सुन ले हो होशियार॥ ध्रुवपद॥
पहला कंठा जो ले लेगा, तो भारी धनवान बनेगा।
किंतु न मुकुट उदार। गुन० ॥१॥
हार दूसरा यदि तू लेगा। तो तू मेरा दास बनेगा।
है यह मुकुट तैयार। गुन० ॥२॥
अच्छा है नौकर बन रहना, लेकिन मुकुट जरूरी लेना।
यों दिल दृढ़ता धार। गुन० ॥३॥

तर्ज—अखियां मिला के

मोतियों वाला, हार विशाला. तुरत उठाया ॥ध्रुवपद॥
लेते ही हार बिल्लों ने, उसका तन छिटकाया।
दानव के माफिक आकर वीर पै,आसन लगाया। मोतियों ॥१॥
कहता है दैत्य तेरे, हम चारों हैं अब किंकर।
करने को जांच कहा था, बाल को मैंने घुमाकर। मोतियों ॥२॥
आकर लालच में यदि तू,पहला कंठा अपनाता।
तो तू सड़-सड़ के आधे साल में,बेशक मर जाता। मोतियों ॥३॥
यों कहकर स्वयं दैत्य ने,कंठा मणिमुक्ता वाला।
गल में पहनाकर लाकर दे दिया,वह मुकुट विशाला। मोतियों॥४॥
जब-जब ही काम हो कुछ,मुक्ता-मणि शीघ्र दबाना।
हाजिर हम होंगे तेरे पास,मन शंका मत लाना। मोतियों ॥५॥

तर्ज—धर्म पर डट जाना

मुझे अब पहुंचा दो ! सुन मेरी अरदास।
दया कुछ दिखला दो ! सुन मेरी अरदास॥ ध्रुवपद॥
तुम्हारी कृपा सदैव स्मरूंगा, जीवन भर न कभी बिसरूंगा।
विदा प्रभु ! बकसा दो! सुन० ॥१॥
फौरन दानव ने पहुंचाया, मुकुट दे निकट भूप के आया।
लाख अब दिलवा दो ! सुन० ॥२॥

तर्ज—नरम बनो जी नरम बनो !

बिगड़ गया जी बिगड़ गया, दिल राजा का बिगड़ गया ॥ध्रुवपद॥
देकर रुपये बीस हजार, मुख से बोला नरसिरदार।
शेष रुपैये फिर दूंगा, तेरे घर भिजवा दूंगा।
लोभ हृदय में उमड़ गया। दिल० ॥१॥
वीरसिंह ने समझ लिया, राजा ने यह कपट किया।
ले रुपया घर आया है, मोती पकड़ दबाया है।
आ बिल्ले ने नमन किया। दिल० ॥२॥
याद किया क्यों ? हुक्म करो ! शेष रुपैये शीघ्र धरो।
तोड़ खजाना लाया है, वीर अचंभा पाया है।
बिल्ला वापस दबड़ गया। दिल० ॥३॥
इधर वीर ने चिट्ठी दी, रकम बकाया आज मिली।
स्वामिन् ! भूल गये थे आप, पर मैंने मंगवा ली चुपचाप।
पढ़ते ही नृप दहल गया। दिल० ॥४॥

तर्ज—बन जोगी मन भटकाई ना !

इत वीर ने महल झुकाया है, सब ठाठ रईसी पाया है ॥ध्रुवपद॥
अद्भुत ऐश उड़ाता है, नित चैन की बीन बजाता है।
लख नृप को गुस्सा आता है, पर करने कुछ नहिं पाया है। इत० ॥१॥
शत्रु अचानक चढ़ आया, दल राजसिंह बेहद लाया।
चौतर्फ शहर घेरा पाया, सज नृप ने जंग रचाया है। इत० ॥२॥
दुश्मन का दल-बल था भारी, हो घायल फौज गिरी सारी।
कारण नहिं हो पाई त्यारी, दिल खड्गसिंह घबराया है। इत० ॥३॥

अब बेशक इज्जत जाएगी, नहिं राज्य-ऋद्धि रह पायेगी।
सब नष्ट-भ्रष्ट हो जाएगी, रखवाला नजर न आया है। इत० ॥८॥
इतने में वीर याद आया, फौरन महलों में बुलवाया।
इज्जत से आसन दिलवाया, फिर मुख से यों फरमाया है। इत० ॥९॥

तर्ज—दुनिया में बाबा !

बन जा रे वीरा ! बन जा तू मेरा सहायक ॥ध्रुवपद॥
तूने मेरा मुकुट मिलाया, पता नहीं कहां जाकर लाया।
फिर भी मैंने दगा दिखाया, बन करके नालायक। बनजा० ॥१॥
किन्तु बड़प्पन तू तेरा स्मर ! मेरी गल्ती पै न नजर धर !
शर्म जा रही है रक्षा कर ! बन सेना का नायक। बनजा० ॥२॥
कहा वीर ने मत घबरायें ! सुख से जाकर लेट लगायें !
पिछली बात न स्मृति में लायें, मैं हूं आपका पायक। बनजा० ॥३॥
खुश हो नृप फूला न समाया, फौरन सेनाधीश बनाया।
वीर विदा ले मंदिर आया, अब छूटेंगे सायक[1]। बनजा० ॥४॥

तर्ज—आजादी का दीवाना था

महलों में आकर हार का, मोती दबाया है।
चार बार में चारों ने, आ सिर झुकाया है ॥ध्रुवपद॥
चारों ही को वीर ने, बतलाये चारों काम।
सूर्योदय तक श्वेत ने, अरिदल सुलाया है। महलों ॥३॥
कृष्ण-ओतु ने दुश्मन के, सब शस्त्र गुम किये।
चित्रक ने अरि राजा को, वन में छिपाया है। महलों ॥२॥
दैत्य ने घायल सेना को, सज्जित कर दिया।
बजे रात के तीन, तारागण चमकाया है। महलों ॥३॥
चन्द्र हो गया अस्त, सूरज आने वाला है।
वीरसिंह ने सारे दल को सज्ज बनाया है। महलों० ॥४॥
त्यार हो सब समरांगण में, हो गये खड़े।
अब देखो अरिदल में, कैसा रंग रचाया है। महलों० ॥५॥

---

१. वीरसिंह के तीर।

तर्ज—राधेश्याम

उदय हो गया सूरज तो भी, सब खुर्राटा मार रहे।
दूत भेजकर उन्हें जगाया, अब कुछ आंख उघाड़ रहे ॥१॥
नहा-धो सज्जित हो फिर सबने, वख्तर-टोप लगाये हैं।
शस्त्र कहां है जल्दी लाओ! ऐसे मुख चिल्लाये हैं ॥२॥
लेकिन शस्त्र नजर नहिं आये, एक-एक से कहता है।
दुश्मन रहे पुकार यार! तलवार नहीं क्यों देता है ॥३॥

तर्ज—अग वाबुजी!

मेरी तलवार तूने छिपाई रे, जल्दी से ला!
वरना आपस में होगी लड़ाई रे, जल्दी से ला! ॥ध्रुवपद॥
तलवार तेरी न देखी है मैंने, वन्दूक मेरी छिपाई है तूने।
ढाल-वरछी भी खोजी न पाई रे। जल्दी से ला! ॥१॥
इल्जाम क्यों तू लगाता है झूठा, मारूंगा थप्पड़ पड़ेगा अपूठा।
चुप वे! क्यों तूने वक-वक लगाई रे। जल्दी से ला! ॥२॥
एक-एक से ऐसे कहकर अड़े हैं, कुत्तों के माफिक वे काफी लड़े हैं।
अन्त राजा से मिलने ठाई रे। जल्दी से ला! ॥३॥
तम्वू में देखा तो राजा नहीं है, चिन्ता सभी के दिलों में हुई है।
हारकर फौज सारी पलाई रे। जल्दी से ला! ॥४॥

तर्ज—जब तुम ही चले परदेश

अव हो रहा मंगलाचार, लगी है वहार, हर्ष अनपारा।
घर-घर में जय-जयकारा ॥ध्रुवपद॥
दुश्मन का डर सव दूर हटा, सिंहासन पर महाराज डटा।
हुआ उपस्थित विजयी वीर पियारा। घर० ॥१॥
नृप ने सम्मान वढ़ाया है, अपना युवराज वनाया है।
खुद ने संयम धार किया निस्तारा। घर० ॥२॥
सानन्द वीर ने राज किया, आखिर ले संयम स्वर्ग लिया।
विज्ञ जनों ने अव यों तत्व निकारा। घर० ॥३॥
चेतन नृप मन तो सिपाई है, मुकुटोपम समकित गाई है।
महा भयंकर जंगल यह संसारा। घर० ॥४॥

ओतुत्रय क्रोध-मान-माया, यह लोभ दैत्य राम कहलाय।
इधर जल रही जन्म-मरण की ज्वाला। घर०
आ दुष्ट लोभ समकित हरता, मन लेने उसको संचरता
धर्म-पाप है श्वेत-नील दो हारा। घर०
आ लोभ दैत्य ललचाता है, मुख झूठी बात बनाता है।
देना चाहता कंठा पन्नों वारा। घर०।
लेता जो मुक्ता-मणि वाला, पाता है वह समकित आला।
वश हो जाता क्रोधादिक दुर्वारा। घर०॥
फिर मोह नृपति चढ़ आता है, तब विजयी वही[1] बनाता है।
बनता चेतन शिवपुर का सरदारा। घर०॥
सद्गुरु करुणा से यह वर्णन, हर्षित मन गाता है 'मुनि धन'।
स्टेशन मरोली गुर्जर में सुखकारा[1]। घर० ॥१॥

मणि आठवां   चार प्रश्न

घरवालों ने मनाही की, फिर भी सेठ ने राजा को भोजनार्थ घर बुलाया। राजा का मन बिगड़ा, सेठ की संपत्ति हड़पने के लिए उससे चार प्रश्न पूछे। छोटी बहू ने उत्तर देकर सारी सभा को आश्चर्यचकित किया। चारों ही प्रश्न अजब ढंग के थे, देखिये जरा पढ़कर।

तर्ज—धर्म पर डट जाना

तपस्वी बन जाना, सुनकर यह व्याख्यान।
सेठजी बन जाना, सुनकर यह व्याख्यान ।।ध्रुवपद।।
शहर था कंचनपुर अभिधान, सेठ था धनपति अति धनवान।
पुत्र-युग[1] मनमाना। सुन०।।१।।
करोड़ों की थी घर में माया, नगर श्रेष्ठी का पद भी पाया।
सभी ने सम्माना। सुन०।।२।।

तर्ज—पिया घर आजा

राजा को घर बुलवाके, खाना खिलाऊं एक दिन,
मन में यों आई-आई, मन में यों आई ।।ध्रुवपद।।
सेठानी और चारों लड़के पूछे हैं—पूछे हैं,
सुनते ही सब हद से बाहर पहुंचे हैं—पहुंचे हैं।
मुख से साफ मनाही की,
लेकिन न श्रेष्ठी को यह शिक्षा सुहाई आई। मन में० ।।१।।
कहा सेठ ने नृप को भोजन देना है—देना है,
बोले सारे साथ न हमको रहना है—रहना है।

---

१. चार पुत्र।

फौरन अलग हो गये हैं,
केवल बनी है छोटी बहुवर गहराई। आई मन में० ॥२॥
श्रेष्ठी ने नरपति को न्योता दे दिया-दे दिया,
मेहरबान हो राजा ने हां ! कह दिया-कह दिया।
सारी हुई तैयारी रे,
राजा भी आया खाने,करके गजाई। आई मन में०॥३॥
देख संपदा दिल राजा का हिल गया - हिल गया।
हरने को धन फूल लोभ का खिल गया-खिल गया।
प्रश्न चार अथ पूछे हैं,
उत्तर सुनाओ वरना, मरना है भाई! आई मन में० ॥४॥

तर्ज—हरि गीत

है यहां और नहिं वहां, है वहां और नहीं यहां।
यहां वहां दोनों जगह है, नहिं यहां और नहिं वहां ॥

तर्ज—अखियां मिला के

अकल लड़ाके, हिसाब लगाके, उत्तर लाओ[1] ! ॥ध्रुवपद॥
सुनते ही उतर गया मुख,श्रेष्ठी निज मंदिर आया।
करने विमर्शन चारों लड़कों को फौरन बुलाया। अकल० ॥१॥
किस्सा सब बिगड़ गया है, ऐसे मृदुवचन कहे हैं।
हम को नहिं मालूम कह यों पुत्र,चारों उठ गये हैं। अकल०॥२॥

तर्ज—चले आना हमारे अंगना

बहू ने सोच करके, कहा धैर्य धरके,
दूंगी उत्तर मैं चारों छिन में ॥ध्रुवपद॥
इसकी तो चिन्ता बिल्कुल न कीजिए !
नहा-धोके शान्ति से जलपान लीजिए-२
फूले सेठ सुनके, विकसे रूं-रूं तन के। दूंगी० ॥१॥

---

१. सात दिन के अन्दर।

आते हैं आठवें दिन वे दरबार में,
है साथ बहत्तर पहुंचे बाजार में-२ ।
बहू ने एक मंगता, लिया साथ रमता । दूंगी० ॥२॥
फिर एक वेश्या को रथ में बिठाकर,
धर्मिष्ठ सेठजी को साथी बनाकर-२ ।
एक तपस्वी सन्यासी, लिया साथ गुणराशी । दूंगी० ॥३॥
पूछे हैं प्रश्नों के उत्तर नरेश ने,
देगी बहू ये बताया धनेश ने-२ ।
चौंका भूप सुनके, बैठा उत्सुक बनके । दूंगी० ॥४॥

तर्ज—मेरे मौला मदीने बुलाओ मुझे !

उत्तर प्रश्नों के अब समझाय रही,
बहू जनता में रस बरसाय रही ॥ध्रुवपद॥
है यहां नहिं है वहां, उत्तर में वेश्या है सही ।
यहां मौज उड़ा रही पर, नरक में संशय नहीं ।
अब प्रश्न द्वितीय चलाय रही । उत्तर० ॥१॥
यहां नहिं और है वहां, प्रतिवचन इसका यह मुनि ।
यहां सुख तिल है न पर, आगे बनेगा सुर गुणी ।
जहां दुख का नाम-निशान नहीं । उत्तर० ॥२॥
यहां वहां दोनों जगह है, सेठ पै धरलो नजर !
सुख सभी मौजूद है, फिर धर्म करता है प्रवर ।
इस हेतु भवांतर में सुख ही । उत्तर० ॥३॥
प्रश्न चौथे के लिए प्रभु ! यह भिखारी है खड़ा ।
यहां-वहां दोनों जगह, दुख है न सुख इसको जरा ।
सुन जनता अचंभित खूब हुई । उत्तर० ॥४॥

तर्ज—नरम बनो जी नरम बनो !

सुधर गया जी सुधर गया, दिल राजा का सुधर गया ॥ध्रुवपद॥
देख बहू कि बुद्धि प्रवर, मुग्ध हुआ बेहद नरवर ।
धर्म की बहन बनाई है, दे इज्जत पहुंचाई है ।
प्यार सेठ से उमड़ गया । दिल० ॥१॥

अब सब लड़के आये है, आ-आ शीश झुकाए हैं।
मन वैराग्य बढ़ाया है, चरण सेठ मनभाया है
गुद्ध पाल कर अमर हुआ। दिल०॥२॥

तर्ज—राधेश्याम

सुनकर यह व्याख्यान सज्जनों! संन्यासी सम बन जाओ!
अथवा बन धर्मिष्ठ सेठ सम, उभय भवों में सुख पाओ!
वेश्या और भिखारी जैसे, लेकिन कभी न तुम बनना!
"धन मुनि" का तो बार-बार, केवल इतना-सा है कहना'॥१॥

मणि नौवां — दान के फल

देने मात्र से उद्धार नहीं होता, सुपात्र दान से होता है। कुपात्र दान से तो प्रत्युत आत्मा का पतन होता है। श्रीपाल सेठ का वर्णन पढ़कर सुपात्र-कुपात्र दान का मर्म समझिये !

तर्ज—टूट गया इकतारा मन का

दान है तारन हारा जग में, दान है तारन हारा।
देने मात्र से किन्तु न तरना, समझो! तत्त्व सुप्यारा ।।ध्रुवपद।।
सीप में पानी से मोती बनते, गंदी जगह में कीड़े प्रगटते।
मान रहा जग सारा। दान०।।१।।
गौ से घास का दूध निकलता, सांप से दूध का जहर उछलता ।।
खाते ही प्राण-संहारा। दान०।।२।।
दान सुपात्र-कुपात्र का वर्णन, सूत्र विपाक में कर गए श्री जिन!
कुछ करता हूं मैं भी इशारा। दान०।।३।।

तर्ज—जब तुम ही चले परदेश

तुम सुनो! लगाकर ध्यान, करो फिर ज्ञान, सज्जनों प्यारे!
खोलो अंदर के ताले ।।ध्रुवपद।।
श्रीपाल सेठ एक कोटिपति, शर्माते जिससे छत्रपति
थे जिसके कहने में परिजन सारे। खोलो०।।१।।
एक वेला पौष महीना था, श्रेष्ठी ने दगला पहना था।
दे रहा दान ले रहे रंक बेचारे। खोलो० ।।२।।
नंगे तन नर एक आया है, सर्दी से थर्राया है।
दे दो वस्त्र सेठ! यों वचन उचारे। खोलो०।।३।।

तर्ज—रहमत के बादल छाये

करुणा दिल आ गई, दगला लख पुण्य दिलाया ।।ध्रुवपद।।

दगला लेके रंक सिधाया, रू का उगने जाना बनाया ।
मांछिया पकड़ने आया । करुणा० ॥१॥
इधर सेठ का धन विलवाया, पल में सारा स्टेट विकाया ।
पुर बाहिर झोंपड़ा छाया । करुणा० ॥२॥

(सेठानी का हठ)

तर्ज—घटा घनघोर-घोर

किया हठ वार-वार बालम ! न लगाओ वार ।
मेरे पीहर जाओ-जाओ ! मेरे पीहर जाओ! ॥ ध्रुवपद॥
दिल का दरिया ससुर आपको, मदद अवश्य करेगा ।
देकर के धन माल पलक में, अपना-सा कर देगा ।
शर्म मत लाओ पिया ! हिम्मत बढ़ाओ पिया ।
जल्दी कदम उठाओ ! जाओ, मेरे पीहर जाओ ॥१॥
चार भाइयों के बिच में हूं, बहन प्राण से प्यारी ।
सुनते ही सब भाई बालम । भक्ति करेंगे भारी ।
आशा मन मेरी पूरी, देंगे कुछ तुम्हें जरूरी ।
आलस शीघ्र उड़ाओ ! जाओ, मेरे पीहर जाओ ॥२॥

पति का उत्तर

प्यारी ! तज झोड़-झोड़, क्यों तू मचावे शोर ।
मैं हर्गिज नहिं जाऊं-जाऊं मैं हर्गिज नहीं जाऊं ॥ ध्रुवपद॥
एक रोज मैं ठाठ-बाट ले, धूम-धाम से जाता ।
आज भिखारी बन कर जाना, मुझको नहीं सुहाता ।
अधिक अकुलाये जिया, फड़क फड़काए हिया ।
जा कुएं में गिर जाऊं-जाऊं, मैं हर्गिज नहिं जाऊं ॥३॥
अगर सासरे वाले देते, तो घर का क्यों जाता ।
दिन हैं बांके अपने प्यारी ! यों श्रेष्ठी समझाता ।
किसीका न कोई प्यारा, जग है स्वारथिया सारा ।
कहां तक मुख से गाऊं-जाऊं, मैं हर्गिज नहिं जाऊं ॥४॥

तर्ज—पिया घर आजा

हाय ! हठीली नारी ने, पति का सलौना शिक्षण,

बिल्कुल न माना-माना, बिल्कुल न माना ।।ध्रुवपद।।
अजब हठीली नारी-जाति कहाती है, कहाती है ।
जो कुछ चाहती है हठ से करवाती है, करवाती है ।
सेठ रोटियां ले करके, आखिर विवश हो निकला,
अवसर पिछाना, माना बिल्कुल ।।१।।
जंगल में वह पैदल चलता जा रहा, जा रहा ।
सर-पाली पर बैठ विसामा खा रहा, खा रहा ।
मासखमण का भूखा रे, आया मुनीश्वर श्रेष्ठी,
रग-रग फुलाना, माना बिल्कुल ।।२।।
जंगल में भी मंगल का दिन आ गया, आ गया ।
दुख-दोहग सारा ही दूर चला गया, चला गया ।
कर वन्दन मुनिवर को रे, खुश हो दिया है अपना,
सारा ही खाना-माना, बिल्कुल ।।३।।
भिक्षा लेकर वन में साधु सिधाया है, सिधाया है ।
इधर सेठ भी श्वसुरालय में आया है, आया है ।
वेष भिखारी जैसा है, बैठा विपण पर आकर,
दुख असमाना-माना बिल्कुल ।।४।।

तर्ज —हीरा मिसरी का

सासरे वालों ने, दिया न बिल्कुल मान, सासरे ।।ध्रुवपद।।
खैर ! सेठ तो बैठ गया है, उठ-उठ सारा स्टाफ गया है ।
भोजन समय पिछान, सासरे० ।।१।।
खा फिर काम लगे सब आकर, किस ही ने न पिलाया है जल ।
वक्र कर्मगति जान, सासरे० ।।२।।
हाट बंद कर बिछी चटाई, खींच जरा-सी तुरत दबाई ।
फिर कर गए प्रयान, सासरे० ।।३।।

तर्ज—दुनिया में बाबा

दुनिया में बाबा ! कर्मों का खेल निराला ।।ध्रुवपद।।
एक करोड़ाधिप था जो नर, भूखा-प्यासा पड़ा धरा पर ।
किस ही ने न संभाला, दुनिया० ।।१।।

दुख में सारी रात बिताई, एक पलक भी नींद न आई।

जगी दुःख की ज्वाला, दुनिया० ॥२॥

ज्यों का त्यों उठ चला सुबह फिर, लख रास्ते में सरिता कंकर।

थैला एक भर डाला, दुनिया० ॥३॥

जाते ही स्त्री कलह करेगी, इससे कुछ तो शांति धरेगी।

शांति का पंथ निकाला, दुनिया० ॥४॥

तर्ज—आजादी का दीवाना

घर आते ही सेठ ने, थैला पटकाया है।

फूली है सेठानी, जानी बेहद माया है ॥ध्रुवपद॥

गर्म पानी कर दिया, नहाये सेठजी।

सेठानी ने प्रेम से खाना खिलाया है, घर० ॥१॥

खाना खाकर सेठजी, घर से निकल गये।

फूटे मंदिर में सोने का, शंख वजाया है, घर० ॥२॥

इत खुश-खुश आ सेठानी ने, थैला खोला है।

झगमगाट करता रत्नों का,पुंज लखाया है,घर०॥३॥

देखते ही सेठानी, पागल-सी हो गई।

अक्ल बाप में है नहीं, दे दी सब माया है, घर० ॥४॥

प्यारे भाई-भाभियां पीछे, क्या खायेंगे।

खैर! मुनीम पुराना, फौरन ही बुलाया है, घर० ॥५॥

तर्ज—नरम बनोजी नरम बनो

एक दिया जी एक दिया, रत्न हाथ में एक दिया ॥ध्रुवपद॥

कहा गहने-कपड़े लाओ ! इमारतें सब छुड़वाओ !

अब द्रारिद्रय पलाया है माल बाप का आया है।

बस ! मुनीम ने काम किया, रत्न० ॥१॥

इधर सेठ जी नहिं पाये, जगह-जगह चर दौड़ाये।

चर मंदिर में आए हैं, मिले सेठ सुख पाए हैं।

चमत्कार दिल समझ लिया, रत्न० ॥२॥

अब सेठानी फूल रही, बाप-बाप कर भूल रही।

पति ने हां-हूं कर टाला, अवसर ऐसा ही भाला।

अंदर से हिल रहा हिया, रत्न० ॥३॥

तर्ज—नैने आना हमारे अंगना

गामों गाम फिरते, बेड़ा पार करते
गुरु ज्ञानी आये हैं वन में ॥ध्रुवपद॥
राजा-दीवान आदि दर्शन को आए,
श्रीपाल श्रेष्ठी न फूले समाये—२ ।
हुलसे गुरु की वाणी सुन, पूछा करके प्रणमन, गुरु० ॥१॥
दुख-सुख मिले नाथ ! मुझको बतायें
क्या पाप और पुण्य मैंने कमाये—२ ।
बोले ज्ञानी गुरुवर, सुन ले सेठ सुखकर, गुरु० ॥२॥
दगला भिखारी को तूने दिया[1] था,
फल था उसी का जो संकट सहा था—२ ।
ससुराल बदला, रोटी-पानी न मिला, गुरु० ॥३॥
वन में जो साधु को दी तूने रोटियां,
उस ही से वापस झुकी तेरी कोठियां—२ ।
होकर देव ने प्रसन्न, किये कंकर रतन, गुरु० ॥४॥
दस दान शास्त्र में जिनवर ने गाये,
गुरुवर ने भिन्न-भिन्न गाकर सुनाये—२ ।
दुर्लभ पाया नरतन, चेतो-चेतो भविजन ! गुरु० ॥५॥

तर्ज—राधेश्याम

सुन गुरुवाणी संयम लेने, सेठ तुरत तैयार हुए ।
सेठानी भी साथ हुई, ले संयम भवजल-पार हुए ॥१॥
इस वर्णन का सार यही है, समझो पात्रापात्र-विचार ।
सही तत्त्व समझाने खातिर, सहे भिक्षु ने कष्ट अपार ॥२॥
उन ही की करुणा से "धन" ने यह व्याख्यान बनाया है ।
दो हजार तीन शुभ संवत, गांव "पालघर" आया है ॥३॥

---

१. पुण्य मानकर ।
२. वैशाख वदी ८ ।

मणि दसवां भाविनी

लाख उपाय करने पर भी होनहार नहीं टलती। राजकुमारी भाविनी ने अपनी ओर से यद्यपि रेखले को मरवा ही दिया फिर भी भावीवश उसका वही पति बना। वर्णन रुचिकर एवं पढ़ने योग्य है।

तर्ज—अखियां मिला के

सोच के देखा, कर्म की रेखा, मिट नहिं पाती ॥ ध्रुवपद ॥
पश्चिम में ऊगे सूरज, पत्थर पर पंकज फूले।
शीतलता अग्नि भी करने लगे, सुरगिरि भी डोले, सोच के० ॥१॥
राघव और पांडव जैसे, वर्षों तक भटके वन में।
पानी-पानी कर श्री हरि रह गये, कौशांबी-वन में, सोच के० ॥२॥
कितने ही ऐसे-ऐसे, वर्णन हैं जग में जाहिर।
फिर भी एक छोटा-सा दृष्टान्त, मैं कहता हूं रचकर, सोचके० ॥३॥
शशिपुर शशिमंडल राजा, पुत्री थी "भाविनी" प्यारी।
पढ़ने को भेजी नृप ने पढ़ रही कुमारी, सोच के० ॥४॥
पढ़ता था उसी स्कूल में, बुढ़िया का लड़का, "रेखा"।
सोया था छात्रगण इक रोज, पंडित सुत ने देखा, सोच के० ॥५॥

तर्ज—अंबुए की डाली पर

भाविनी कुमारी यह, किससे जुड़ेगी—२ ?
कृपया बताओजी, जल्दी जताओ जी, किससे० ॥ ध्रुवपद ॥
ज्योतिष का ज्ञान पास आपके अपार है,
बेशक लगेगा पता मुझे एतबार है।
देर न लगाओजी, जल्दी० ॥१॥
पंडित वह आंख लाल करके डरा रहा,
लड़का हठीला तो भी हठ करके गा रहा।
अब न डराओजी, जल्दी० ॥२॥

तर्ज—हीरा-मिसरी का

जुड़ेगी रेखे से, द्विज ने कहा पुकार, जुड़ेगी० ॥ध्रुवपद॥
क्या इसको यह रंक मिलेगा, हां बेटा! नहीं फर्क पड़ेगा।
ज्योतिष के अनुसार, जुड़ेगी० ॥१॥
राजसुता भी इधर जगी है, सुन रूं-रूं में आग लगी है।
दुख का रहा न पार, जुड़ेगी० ॥२॥
गिर कुएं में अभी मरूंगी, लेकिन इसको तो न वरूंगी।
ली यों दिल में धार, जुड़ेगी० ॥३॥
संध्या-समय महल में आकर, सोयी टूटी खाट बिछाकर।
गुस्सा चढ़ा अपार, जुड़ेगी० ॥४॥

तर्ज—पिया घर आ जा !

लख गुस्से में लड़की को, फौरन मनाने चलकर,
महाराज आया-आया, महाराज आया ॥ध्रुवपद॥
कह दे वेटी ! किस कारण से रूसी है, रूसी है?
मेरे से क्या करवाने को हूंसी है, हूंसी है?
गद्‌गद् होकर बोली वह,
कुंएं में गिर के मरूंगी, यही प्रण ठाया-आया, महाराज० ॥१॥
कहा बाप ने किसके खातिर मरती है, मरती है ?
लेकिन उत्तर बिलकुल नहीं वितरती है, वितरती है।
आखिर रास्ता जीने का,
रेखा अगर मर जाए, यह बतलाया-आया-महाराज० ॥२॥
बेटी ! तेरा रेखे ने क्या गुनह किया, गुनह किया ?
गुनह नहीं कुछ पर मैंने प्रण धार लिया, धार लिया।
दोनों साथ न जीएंगे,
इससे मरूंगी मैं ही, कन्या ने गाया, आया-महाराज० ॥३॥
बहुत कहा पर लड़की ने हठ ठाया है, ठाया है,
मारो रेखा आखिर हुक्म लगाया है, लगाया है।
बुढ़िया सुन घबराई है,
पंचों से मिलकर किस्सा, सारा सुनाया-आया महाराज० ॥४॥

तर्ज—रहमत के बादल छाए

नृप के दरबार में, मिल पंच सभी चल आये ॥ध्रुवपद॥
आ रेखे का प्रश्न उठाया, नृप ने चख से नीर बहाया।
सब समाचार बतलाये, नृप० ॥१॥
पंचों ! न्याय तुम्ही निपटाओ ! किसको मारूं साफ सुनाओ !
सुन चुप हो पंच सिधाये, नृप० ॥२॥
वधक पकड़ रेखे को लाये, रोते शिशु ने सभी रुलाये।
गद्गद् यों वचन सुनाये, नृप० ॥३॥

तर्ज—चले आना हमारे अंगना

मेरी अर्ज सुन के, दयावान बन के,
छोड़ो ! मैं हूं अनाथ लड़का ॥ध्रुवपद॥
ना मेरे बाप है ना मेरे भाई,
आगे और पीछे बुढ़िया कहाई—२।
मेरा दोष है नहीं, राजा मरवाता यूं ही छोड़ो ॥१॥
इस देश में मैं न कभी रहूंगा,
जाकर कहीं दूर सुख-दुख सहूंगा—२।
तुम्हें बिसरूंगा नहीं, पल-पल सुमरूंगा सही, छोड़ो ! ॥२॥

तर्ज—धर्म पर डट जाना

रेखला छूट गया, दौड़ा जान बचा के ॥ध्रुवपद॥
रात-दिन दौड़ा-दौड़ लगाई, मिली तो रोटी लेकर खाई।
चला फौरन खा के, दौड़ा० ॥१॥
देश की हद से बाहर आया, अब कुछ शांति हृदय में पाया।
जी गया दुख पा के, दौड़ा० ॥२॥
कनकपुर-बाहर सर की पाल, जहां आ बैठा रेखा बाल।
हटे हैं दिन बांके, दौड़ा० ॥३॥
शहर का मरा अपुत्र नरेश, दिव्य पंचक से बना धरेश।
रहा सुख में आके, दौड़ा० ॥४॥

तर्ज—अय बाबुजी !

ताज महाराज का आज पाया रे, वही रेखला।
जिसने रो-रो के जीवन बचाया रे, वही रेखला ॥ध्रुवपद॥

श्री रेवतसिंह नाम जाहिर हुआ है,
बड़ा तेज जग में सुयश छा रहा है।
ब्याह करने का अब वक्त आया रे, वही रेवता ॥१॥
इधर भाविनी भी जवानी में आती,
वर की खबर हेतु मनसा उमाही।
भूप ने मंत्रिमंडल सजाया रे, वही रेवता ॥२॥

तर्ज—राधेश्याम

वर की खोज लगाते मंत्री, उसी शहर में आए हैं।
देख अनूठा तेजस्वी नृप, सगपन हेतु लुभाए हैं॥
कहा भूप ने शादी करने, हम नहिं आएंगे शशिपुर।
कन्या लेकर आना होगा, किन्तु आपको कनकनगर ॥१॥

तर्ज—खूने जिगर को पीते रे

मंत्रीगण विस्मय पाया रे, राजा की बात सुन ॥ध्रुवपद॥
अहा! छोटी-सी वय में, है मेधा अजब हृदय में।
एक मंत्री तुरत सिधाया रे, राजा की बात सुन ॥१॥
अपने नृप से मिलकर, बतलाया सारा व्यतिकर।
राजा ने हां फरमाया रे, मंत्री की बात सुन ॥२॥
शीघ्र हो गया सगपन, दिखलाकर फिर अच्छा दिन।
ले कन्या परिजन धाया रे, राजा की बात सुन ॥३॥
सानंद हो गयी शादी, बिच में नहिं उठी उपाधि।
है आगे अद्भुत माया रे, राजा की बात सुन ॥४॥

तर्ज—श्री महावीर चरन में

शादी होते ही वर-कन्या, रंग-महल में आए हैं।
लेकिन वे बिल्कुल चैन न पाये हैं, शादी० ॥ध्रुवपद॥
शय्या के ऊपर, वर राजा मुंह को ढंक कर,
पोढ़े हैं दिल गुस्सा धर।
तन-मन कन्या के अति अकुलाये हैं, शादी० ॥१॥
यह क्या है माया, पति ने क्या रंग रचाया,
कुछ भी न समझ में आया।
हो खिन्न अन्त ये शब्द सुनाए हैं, शादी० ॥२॥

तर्ज—घटा घन घोर घोर

पिया ! तज रोष-रोष, कह कर बताओ दोष,
मैं तो समझ न पाई-पाई, मैं तो समझ न पाई ।।ध्रुवपद।।
प्रथम समागम आज हुआ है,कभी न मिलजुल बोले ।
आठ घड़ी से खड़ी पगों पर, मेरा कलेजा डोले ।
महर अब करो पिया ! वचन रस झरो पिया !
क्यों यह गांठ बंधाई, पाई मैं तो समझ न पाई ।।१।।
बड़ी-बड़ी आशाएं थीं दिल, खत्म हो गयी सारी ।
प्रथम ग्रास में आ गयी मक्खी,छा गई चिन्ता भारी ।
बिछाती हूं झोली पिया ! अब न सताओ जिया !
गुनाह बताओ साई, पाई मैं तो समझ न पाई ।।२।।

तर्ज—आजादी का दीवाना

गुनहगार तेरे-सी जग में, और न कोई है ।।ध्रुवपद।।
अयि पापिनि! अयि दुष्टे! फिर क्या पूछ रही मुझ से ।
चखले बेल जहर की, जो निज कर से बोई है, गुनहगार० ।।१।।
अरी भाविनी ! भूल गयी क्या ? वही रेखला हूं ।
चमकी बिजली-सी, देखा तो रेखा वोही है, गुनहगार० ।।२।।

तर्ज—दिल्ली चलो

गुनहगार हूं-गुनहगार हूं-गुनहगार हूं मैं,
जो कुछ भी फरमाए, राजन्! गुनहगार हूं मैं ।।ध्रुवपद।।
विषभक्षण कर अभी मरूं मैं हुक्म जो करें !
कुएं में गिरकर मरूं मैं हुक्म जो करें !
अग्निकुंड में कूदने को अभी त्यार हूं मैं, जो कुछ० ।।१।।
शूली-फांसी दे दें ! चाहे पहना दे छुरी ।
भींत में चिनवा दें चाहे हाजिर हूं खड़ी ।
लेकिन राज्य दिलाने में तो मददगार हूं मैं, जो कुछ० ।।२।।

तर्ज—जब तुम ही चले परदेश

फिर भी दें मुझको दंड, चंड से चंड फिक्र नहिं तारा ।
जीवन-धन तुम पै उवारा ।। ध्रुवपद ।।

सुन युक्ति वचन मन शांत हुआ, रेखे का गुस्सा भाग गया।
ला माता को फौरन हुक्म निकारा, जीवन० ॥१॥
उस ही क्षण गाड़ी जुड़वाई, बुढ़िया को लेने हित धाई।
लख बुढ़िया का कांप गया तन सारा, जीवन।

तर्ज—हैदराबाद

हा-हा रे! डाकिन मेरी कुटिया में आ रही है।
मेरी कुटिया में आ रही है, बुढ़िया यों गा रही है ॥ध्रुवपद॥
पहले तो खाया नंदन, अब मेरा करने भक्षण।
आई है आज भाविनी, ऐसे चिल्ला रही है, हा-हा० ॥१॥
इतने में रथ को तजकर, सासू के पैर पकड़कर।
नृपकन्या सारा किस्सा, सच्चा बतला रही है, हा-हा० ॥२॥
विस्मित हो बोली वृद्धा, क्या मेरा सुत है जिंदा।
हां-हां सासू जी! कह यों, कंचनपुर ला रही है, हा-हा० ॥३॥

तर्ज—मेरा रंग दे तिरंगी

रेखा उठ सम्मुख आया माता को शीश झुकाया ॥ध्रुवपद॥
माताजी ने हृदय लगाया, रोम-रोम में आनन्द छाया।
अब कन्या ने फरमाया, रेखा० ॥१॥
करिए मेरा भी निपटारा, खुश हो बख्सा गुनाह सारा।
आपस में हृदय मिलाया, रेखा० ॥२॥
काफी अर्से राज्य किया है, आखिर संयमभार लिया है।
कर अनशन सुरपद पाया, रेखा० ॥३॥

तर्ज—राधेश्याम

देखो राजकुमारी ने, रेखे को मरवा ही डाला।
फिर भी स्वामी बना वही आ, जा न सका उसको टाला ॥१॥
यही समझकर कर्मों से, अयि भव्यों! पगपग पर डरना!
सद्गुरु-कृपया 'धन मुनि' कहता,[1] होगा भवजल से तरना ॥२॥

---

१. वि० सं० २००३ वैशाख वदी १०, सोपाला (महाराष्ट्र)।

मणि ग्यारहवां — भक्ति के भूखे भगवान

चित्रकार से प्रेरित होकर राजा प्रद्योतन ने कोशांबी पर आक्रमण किया भयातिसार से राजा शतानीक मर गया। मृगावती के मीठे आश्वासन से प्रद्योत एक बार तो मुड़ गया लेकिन पुनः आकर कोशाम्बी को घेर लिया। महारानी ने प्रभु का स्मरण किया। प्रभु महावीर पधारे, प्रद्योतन को ज्ञान हुआ एवं महारानी दीक्षित हुई।

तर्ज—पपैया काहे मचावै शोर

भक्ति के भूखे श्री भगवान—२।
मौके पर आ ही जाते थे, करने को कल्यान ।।ध्रुवपद।।
देख भक्ति चन्दनबाला की, बाकलों का लिया दान, भक्ति० ।।१।।
मृगावती में व्रत संकट लख, आये बिन आह्वान, भक्ति० ।।२।।
कच्छ देश कौशांबी नगरी, शतानीक महाराज, भक्ति० ।।३।।
चेटक दुहिता मृगावती थी, महारानी गुनखान, भक्ति० ।।४।।
चित्रशाल में चित्र बनाने, सुविचक्षण पहचान, भक्ति० ।।५।।
एक चितेरा रक्खा जिसको, था सुर का वरदान, भक्ति० ।।६।।

तर्ज—पिया घर आजा !

अंगूठा महारानी का, रास्ते में जाते इसको,
नजरों में आया, आया नजरों में आया ।।ध्रुवपद।।
दिव्य शक्ति से चित्र बनाया रानी का, रानी का।
लगा जांघ पर धब्बा काले पानी का, पानी का।
फिर धोया फिर आके लगा,
समझा चितेरा इसके, तिल है सुहाया-आया-नजरों में ।।१।।

---

१. एक अंग देखकर सारा रूप लिख सकता था।

तर्ज — सारी दुनिया में दिन

जोर करने से बिल्कुल न मानूंगी मैं,
खींच कर जीभ जीवन गवां दूंगी मैं ॥ध्रुवपद॥
इस समय नाथ का दुःख दिल है अपार,
पुत्र[1] छोटा है उसका भी बेहद विचार।
शांति रखने से अवसर पिछानूंगी मैं, जोर० ॥१॥
चंद्रप्रद्योत घर आश धरता गया,
सज्ज सामान पीछे से इसने किया।
सोचा लड़ने में अब तो न हारूंगी मैं, जोर० ॥२॥

तर्ज—राधेश्याम

प्रद्योतन का प्रेम-पत्र ले, दूत अचानक आया है।
रानी ने फिटकारा उसको, हो वह क्रुद्ध सिधाया है ॥१॥
समाचार सुन प्रद्योतन नृप, भारी दल-बल ले आया।
कौशांबी को घेर लिया, पर अंदर घुसने नहिं पाया ॥२॥
द्वार बंद थे उन्हें तोड़ने, लगा सैन्ययुत प्रद्योतन।
मुकुट विहीन कर दिया, छोड़ा तीर कुंवर ने सननननन ॥३॥
हटा द्वार से डर प्रद्योतन, किंतु रहा घेरा डाले।
पुरी अमित संत्रस्त हुई है, कौन उसे अब संभाले ॥४॥
रानी लगी तपस्या करने, मन में यह संकल्प किया।
वीर प्रभु यदि यहां पधारें, करूं चरण ले सफल जिया ॥५॥

तर्ज—चले आना हमारे अंगना

उपदेश करते गामों-गाम फिरते,
भक्ति वल से पधारे भगवान ॥ध्रुवपद॥
देवों ने त्रिगढ़ा अद्भुत रचाया,
श्रोताजनों का मेला भराया—२।
आया राजा प्रद्योतन, रानी और उदायन, भक्ति ॥१॥
नश्वर विषय सुख प्रभु ने दिखाया,

---

१. राजकुमार उदायन।

मधु बिंद का हेतु अद्भुत झुकाया—२ ।
बन गया ज्ञानी प्रद्योतन, निर्मल कर लिया है मन, भक्ति ॥२॥
खुश होके राज्य राजसुतं[1] को दिया है,
संयम सती ने प्रभु से लिया है—२ ।
करके साधना सफल, पाई शिवपद अचल, भक्ति० ॥३॥

तर्ज—राधेश्याम

सुन यह वर्णन सच्चे मन से, सच्चे प्रभु की भक्ति करो !
संकट संकट कट जायेंगे, भाव यही दिल बीच भरो !
दो हजार तीन शुभ संवत, वर वैशाख मास सित दल
सद्गुरु-कृपया "धनमुनि" कहता, महाराष्ट्र में हर्ष अतुल ॥१॥

---

१. उदायन ।

मणि बारहवां — करण-योग

रास्ते चलते युवक के साथ रानी चोनजर हुई। फिर फूलां मालिन के माध्यम से दोनों मिले। पता लगने से राजा ने रानी एवं मालिन को भींत में चिनवायातथा व्यभिचारी को चोरंगा करके चौरास्ते में गड़वाया। एक भंगेड़ी ने उसे शाबाशी दी, उसकी भी वही दशा हुई। उक्त दृष्टान्त करणयोग समझाने के लिए अत्यन्त उपयोगी है।

तर्ज—पिया घर आजा

करण योग की चाबी से, खुलता है पल में समकित,
पेटी का ताला-ताला, पेटी का ताला ॥ध्रुवपद॥
जो भी काम करने में होता पाप है, पाप है।
करवाने में भी वो ही इन्साफ है, इन्साफ है।
वैसा ही फिर अनुमोदन,
है हेतु भिक्षु प्रभु का, अद्भुत रसाला-ताला, पेटी० ॥१॥
इन्द्रपुरी में इन्द्रध्वज नरपाल है, नरपाल है।
इन्द्रवती पटरानी रूप रसाल है, रसाल है।
एक दिन बैठी गोखे में,
देख रही है पुर की रचना विशाला-ताला पेटी० ॥२॥
व्यभिचारी नर एक सड़क से निकला है, निकला है।
रूप देखकर दिल रानी का पिघला है, पिघला है।
चिट्ठी लिखकर फेंकी है,
हा! हा। मदनवश काला कुल कर डाला, ताला-पेटी० ॥३॥

तर्ज—दुनिया में बाबा

मिल जा रे प्यारा! मेरे से एक बार मिल जा! ॥ध्रुवपद॥
मैं तेरे बिन हूं दुख पाती, वर्ष बराबर पल-पल जाती।

तू आकर दशा बदल जा ! मिल जा ०।।१।।
चिट्ठी पढ़ लंपट ललचाया, और उपाय नजर नहिं आया ।
आ मालिन घर गरजा, मिलजा० ।।२।।

तर्ज—हीरा-मिसरी का

मालिन जाने लगी, महलों में धर प्यार ।
मालिन जाने लगी, ले फूलों का उपहार ।।ध्रुवपद।।
इसने भी गूंथी एक माला, चिट्ठी उसमें लिखी विशाला ।
हूं आने को तैयार, मालिन० ।।१।।
किन्तु बता तू कैसे आऊं, मर जाऊं यदि पकड़ा जाऊं ।
है खतरा अनपार, मालिन० ।।२।।
फूलां राजमहल में आई, रानी ने वह चिट्ठी पाई ।
फूली विनाशुमार, मालिन० ।।३।।

तर्ज—चले आना हमारे

जरा कष्ट करके, माता ! महर धर के,
उसे लाकर मिला दे मुझसे ।।ध्रुवपद।।
तुझको निहाल मैं धन दे करूंगी,
उपकार तेरा पल-पल स्मरूंगी—२ ।
अब तू देर मत कर ! मेरे मन की पीड़ा हर ! उसे० ।।१।।
(मालिन) रानी जी ! यह काम अच्छा नहीं है,
जानेंगे मालिक तो मरना सही है—२ ।
रखें मन को वश में, है बदनामी इसमें, उसे० ।।२।।
रानी का लेकिन न हुआ सुधारा,
फूलां ने आखिर लाना स्वीकारा—२ ।
आया नारी बनके, सिर पर छाबड़ी[१] धर के, उसे० ।।३।।
पूछा है राजा ने यह कौन आयी ?
प्यारी वह नाथ ! मेरी कहाई-२ ।
रानीजी से मिलने, आयी प्रेम करने, उसे० ।।४।।

१. फूलों से भरी हुई ।

तर्ज—कलदार रुपया चांदी का

आकर के छल से महलों में, पापी ने पाप कमाया है ॥ध्रुवपद॥
रहकर दो घटे महलों में, मालिन राह वापस जाने लगा।
पग पड़ा जोर से राजा के, दिल में कुछ भ्रम-सा छाया है, आकर० ॥१॥
पूछा तब बोली, बहुवर है, कहकर यों फूलां निकल गयी।
कर घूंघट दूर निहारो जा, राजा ने हुक्म लगाया है, आकर० ॥२॥
ना-ना कहते मुख खोल दिया, अन्दर से पापी प्रकट हुआ।
चौराहे में कर चौरंगा, नृप ने उसको गड़वाया है, आकर० ॥३॥
थूको सब इसके मुख में जा, जूतों की सिर बरसात करो।
तारीफ करे उसकी भी यही, गति कर दो स्पष्ट सुनाया है, आकर० ॥४॥

तर्ज—राधेश्याम

फूलां मालिनयुत रानी को, नृप ने होकर क्रुद्ध अपार।
चिनवाया है तुरत भींत में, डूब गयी दोनों भववार॥
इधर हजारों लोग आ रहे, देते पापी को धिक्कार।
इतने ही में इक भंगेड़ी, आकर बोला बिना विचार ॥१॥

तर्ज—दिल्ली चलो

शाबाश है, शाबाश है, शाबाश है शाबाश !
अरे बहादुर वीर ! तुझे शाबाश है शाबाश ! ॥ध्रुवपद॥
मरते हैं सब ही जो आकर जन्म पाते हैं,
पर तेरे सम विरले ही जग नाम कमाते हैं।
हैं लाखों लखदाद! किया रानी से भोग-विलास, अरे० ॥१॥
यों कहते ही इसको भी चौरंगा कर दिया,
मर दोनों ने दुर्गति में जा वास है किया।
करण-योग पर अब थोड़ा-सा डालूंगा प्रकाश, अरे० ॥२॥
रानी और लंपटी ने दुष्कर्म था किया,
करवाने में फूलां ने कुछ भाग था लिया।
अनुमोदक भंगेड़ी सबका हो गया विनाश, अरे ॥३॥

तर्ज—राधेश्याम

कई कह रहे खाने में तो, धर्म-पुण्य नहिं होता है।
तो फिर खिलवाने में बोलो! धर्म कहां से होता है ॥१॥

खाना-खिलवाना दोनों ही, है सांसारिक काम सही।
सत्य धर्म है आत्मिक वस्तु, महावीर का कथन यही ॥२॥
भिक्षु प्रभु ने करण-योग की, बारीकी से की है छान।
गहराई से तत्त्व समझ लो! जो करना आत्मिक कल्यान ॥३॥
बोरीवल्ली में हर्षित मन "घन" ने गाया यह वर्णन।
दो हजार तीन शुभ संवत, सित वैसाख छट्ठ का दिन ॥४॥

मणि तेरहवां — सच्चा अभिमान

शिवभक्त को कुलटा स्त्री ने भ्रम में डाला। वह भटकता हुआ दशार्णभद्र राजा से मिला। उससे प्रेरणा पाकर राजा ने प्रभु महावीर को याद किया। प्रभु पधारे, राजा भारी दल बल लेकर वन्दनार्थ गया। इन्द्र आया, राजा दीक्षित होकर सच्चा अभिमानी कहलाया। वर्णन पढ़िए और सच्चे अभिमानी बनिए !

तर्ज—हीरा मिसरी का

सच्चे अभिमानी, हैं विरले संसार ॥ध्रुवपद॥

झूठी मूंछ मरोड़ने वाले, अकड़-अकड़ कर बोलने वाले।
जग में बिना शुमार, सच्चे० ॥१॥

हुए बाहुबलि सच्चे मानी, बाली मुनि सच्चे अभिमानी।
यहां दशार्णभद्र-अधिकार, सच्चे० ॥२॥

देश वराटनगर था धनपुर, ब्राह्मण था शिवभक्त वहां पर।
दु:शीला घर नार, सच्चे० ॥३॥

कोटवाल से लगी हुई थी, काम-आग दिल जगी हुई थी।
नट आए इकबार, सच्चे० ॥४॥

तर्ज—रहमत के बादल

नाटक नट कर रहे, पुर लोग हजारों आये ॥ध्रुवपद॥

अद्भुत वेष बनाते थे नट, अभिनव खेल दिखाते थे नट।
जन देख-देख हुलसाये, नाटक० ॥१॥

कुलटा भी नाटक में आयी, रूप देख नट से ललचाई।
दिल भाव उसे दरसाये, नाटक० ॥२॥

फिर उसको अपने घर लाई, फौरन पूरी-खीर बनाई।
गद्दी त्यों पट्ट लगाये, नाटक० ॥३॥

खाने को बैठा नट सज कर, कोटवाल ने आकर के घर।
दरवाजे इत खखड़ाये, नाटक० ॥४॥
नट को तिल कोठे में रखकर, कोटवाल को लाई अन्दर।
फिर रंग कई दिखलाये, नाटक० ॥५॥

तर्ज—पिया घर आ जा

खाना अभी न खाया है, वाहर से इतने ही में,
शिवभक्त आया-आया, शिवभक्त आया ॥ध्रुवपद॥
कोटवाल डर बोला प्रान बचा दे तू, बचा दे तू।
जहीं-कहीं जल्दी से मुझे छिपा दे तू, छिपादे तू।
तिल का कोठा वतलाया।
आगे है अहिवर ऐसे, भय भी दिखाया, आया शिवभक्त० ॥१॥
कोटवाल झट तिल कोठे में चला गया, चला गया।
इधर क्षुधावश नट तिल पर ललचा गया, ललचा गया।
फूंक-फूंक लगा खाने रे,
डर करके आरक्षक ने, कुदका लगाया, आया शिवभक्त० ॥२॥
मौका पाकर नट भी पीछे दौड़ा है, दौड़ा है।
देखा तो ब्राह्मण ने खाना छोड़ा है, छोड़ा है।
लगा पूछने नारी से,
ये कौन निकले घर से, समझ न पाया, आया शिवभक्त० ॥३॥

तर्ज—अखियां मिला के

जलवा दिखा के, मनवा रिसा के, चले शिव-गौरीं ॥ध्रुवपद॥
नानाविध सेवा करके, मुश्किल से मैंने मनाये।
पूजा विन वैठ गये तुम खाने, इससे चले रिसाये, जलवा० ॥१॥
अव भी तुम दौड़ो वालम! वापस अपने घर लाओ!
पैरों में पड़ रुष्टमान भगवान को, फौरन मनाओ! जलवा० ॥२॥
लेकर के प्रभु को आना, वरना मुख मत दिखलाना।
स्त्री के चक्कर में आकर, चल पड़ा गाता यों गाना, जलवा० ॥३॥

तर्ज—घटा घन घोर घोर

अरज मेरी वार-वार, अव न लगाओ वार,
जल्दी वापस आओ-आओ! गौरी-शंकर आओ! ॥ध्रुवपद॥

भूल हो गई मेरी भारी, बिन पूजे लगा खाने ।
बिगड़ गया प्रभु जीवन सारा, तुम हो चले रिसाने ।
दया दिखलाओ स्वामी ! तुम ही हो अन्तर्यामी ।
दर्शन शीघ्र दिखाओ—आओ ! गौरी ॥१॥
सच्ची भक्ता प्यारी मेरी, खूब करेगी सेवा ।
दुखी दास की अर्ज मानकर, पार करो प्रभु ! खेवा ।
ढूंढ रहा गाम-गाम, कहां गए मेरे स्याम ।
मैया कोई बतलाओ-आओ ! गौरी ॥२॥

तर्ज—धर्म पर डट जाना

भटकता आया है, विप्र दशारण देश ॥ध्रुवपद॥
बेचारा भूला नहाना-धोना, भूला खाना-पीना सोना ।
ध्यान एक लाया है, विप्र० ॥१॥
दशारणभद्र नृपति पै आया, बात सुन भेद भूपने पाया ।
तुरत समझाया है, विप्र० ॥२॥
न भइया ! गौरी-शंकर आए, कुलटा ने सब चरित बनाए ।
तुझे भरमाया है, विप्र ॥३॥
कहा द्विज ने प्रभु ! थूको मुख से, देखे हैं मैंने निज चख से ।
नृप चकराया है, विप्र० ॥४॥

तर्ज—राधेश्याम

यद्यपि है भोगी प्रभु इसके, फिर भी श्रद्धा है असमान ।
मुझे मिले हैं वीतराग प्रभु, महावीर सच्चे भगवान ॥
अगर पधारें यहां जिनेश्वर, कर सेवा कल्याण करूं ।
निश्चल मन यों सोच रहा नृप, बेड़ा भवजल-पार करूं ॥१॥

तर्ज—जब तुम ही चले परदेश

शतपंच सजी पटनारियां हैं, मानो सुरपति की प्यारियां हैं।
अद्भुत चामर छत्र वाद्य-झनकारे श्री वीर० ॥३॥
रच करके ऐसा आडंबर, जिन वंदन को आया नरवर !
फूल रहे तनुरोम हर्षवश सारे, श्री वीर० ॥४॥

तर्ज—चले आना हमारे अंगना

इत मान हरने, जिन दर्श करने,
सुरपुर से पधारे सुरराज ॥ध्रुवपद॥
चौंसठ हजार साथ हाथी उदार हैं,
वर्णन अनूठा उनका अपार है—२।
खड़े सारे ही गगन, दुनिया हो रही मगन, सुरपुर ॥१॥
एक-एक के पांच-सौ मुख सुहाये,
मुख-मुख में दांत फिर अष्टाष्ट गाये—२।
उनमें वापी अष्ट-अष्ट, उनमें पद्म अष्ट-अष्ट सुर० ॥२॥
पद्मों की अठ-अठ पंखड़ियां उदार हैं,
उन सब पै नाटक के बत्तीस प्रकार हैं—२।
ऐसा रंग रचके, छूए पैर प्रभु के, सुर० ॥३॥
अद्भुत निहार दृश्य नृप ने विचारा,
मेरे लिए जाल हरि ने पसारा—२।
तारो-तारो प्रभुवर ! नम के बोला नरवर, सुर० ॥४॥
प्रभु ने उसी वक्त चारित्र दे दिया,
चरणों में इन्द्र ने प्रणमन तुरत किया—२।
जय हो-जय हो! मुनिवर, कह रहा मुख से सुरवर, सुर० ॥५॥

तर्ज—राधेश्याम

धन्य ! दशारणभद्र नृपति ने, रक्खा अपना सच्चा मान।
कर्मक्षय कर मोक्ष पधारे, भव्यजनों ! अब कर लो ज्ञान ॥
दो हजार तीन शुभ संवत, सित वैशाख द्वादशी सार।
सद्गुरु-कृपया विलेपारले में 'धन' करता धर्म प्रचार ॥१॥

मणि चौदहवीं एकशिक्षा

आषाढ़ मुनि लब्धिबल से रूप बदल कर चार लड्डू लाए। फिर नट पुत्रियों से मोहित होकर नट बने। आखिर गुरु की एक शिक्षा ने उन्हें उस अंध कूप से निकाला। वे नाटक करते-करते ही केवल ज्ञानी बन गए।

तर्ज—रहमत के बादल छाए

शिक्षा गुरुदेव की, है राह लगाने वाली ॥ध्रुवपद॥
राजगृह पुर गुरुवर आए, साथ अनेक सुमुनि मन भाए।
थे हर्षित भविनर-नारी, शिक्षा० ॥१॥
ऋषि आषाढ़ अमित ओजस्वी, यौवन वय में उग्र तपस्वी।
छठ-छट्ठ तपस्या धारी, शिक्षा० ॥२॥

तर्ज—पिया घर आजा

छठ का पारणा लेने को, लेकर सुगुरु की आज्ञा॥
नगरी में आया-आया, नगरी में आया॥ ध्रुवपद॥
एक सेठ के घर में मुनिवर आया है, आया है।
सेठानी ने लड्डू एक वहिराया है, वहिराया है।
अजब रसीले लड्डू ने, ऐसे तपस्वी के भी,
दिल को हिलाया-आया, नगरी में ॥१॥
लोलुप बनकर करने लगा विचार है, विचार है।
करनी होगी इससे[1] गुरु-मनुहार है, मनुहार है।
वैक्रिय लब्धि द्वारा रे, तत्काल बालक ऋषि का,
रूप बनाया-आया, नगरी में० ॥२॥
फिर आया वहिराया लड्डू एक है, एक है।
दिया गुरु को दूंगा किया विवेक है, विवेक है।

---
१. इस लड्डू से।

बूढ़ा मुनि बन आय रे, लड्डू रसीला फौरन,
फिर एक पाया आया, नगरी में० ।।३।।
इतने ही में याद बाल-मुनि आया है, आया है ।
मेरे तो न रहेगा लोभ बढ़ाया है, बढ़ाया है ।
काणा खोड़ा कूबा रे, बामन-सा बनके चौथा,
लड्डू भी लाया-आया, नगरी में० ।।४।।

तर्ज—राधेश्याम

खुश हो मुनि आषाढ़ जा रहा, देख लिया इक नट ने खेल ।
लगा सोचने यह मुनि यदि, आ जाए तो धन रेलमपेल ।।१।।
कहा सुताओं से सब किस्सा, काम बने तो बढ़िया है ।
इसे फंसा लेना है ज्यों-त्यों, यह सोने की चिड़िया है ।।२।।

तर्ज—चले आना हमारे अंगना

नट दौड़ करके, कर जोड़ करके,
बोला मुनिजी ! पधारो मेरे घर ।।ध्रुवपद।।
चाहे सो ले लो ! भिक्षा है हाजिर,
जरूरत नहीं है बोले ऋषीश्वर-२ ।
फिर भी महर कर दो, घर में पैर धर दो ! बोला०।।१।।
घर आयी गंगा को जाने न दूंगा,
चरणों में सोकर भी लेकर चलूंगा-२ ।
भक्ति विलोक मुनि के, बदले भाव मन के, बोला०।।२।।
आया है-मुनिवर नट के निवास में,
नटपुत्रियों ने फंसाया है फांस में-२ ।
होशियार थी अपार, बोली प्रेम को प्रसार, बोला०।।३।।

तर्ज—अय बाबुजी !

किसने उपदेश ऐसा सुनाया रे, अय साधुजी !
चढ़ते यौवन में सिर को मुंडाया रे, अय साधुजी !।।ध्रुवपद।।
फिरते हो घर-घर खाने के खातिर,
माफिक किरड़ के नये रूप धर-धर-२ ।
लाभ इससे कहो क्या कमाया रे, अय साधुजी ! ।।१।।

नहाना न धोना सदा यों ही रहना,
सर्दी ओ गर्मी में तकलीफ सहना-२ ।
मोक्ष का लोभ झूठा दिखाया रे, अय साधुजी ! ॥२॥
चली जायगी यह जवानी न फिर-फिर ।
वापस मिलेगी विचारो समझ कर-२ ।
त्यार हैं हम, करो जो सुहाया रे, अय साधुजी ! ॥३॥
था साधु कैसा ? विचलित हुआ है,
दिग् मूढ़ बन कर विमोहित हुआ है-२ ।
पूछने किंतु गुरुवर से आया रे, अय साधुजी ! ॥४॥

तर्ज—हीरा मिसरी का

सुगुरु ने पूछ लिया, कैसे लग गई वार, सु० ॥ध्रुवपद॥
पूछा तो बोला कर गुस्सा, हूं न निकम्मा कहने किस्सा ।
क्या मां बैठी थी त्यार, सुगुरु ने०॥१॥
बैठ रोब से सिंहासन पर, कहां गया, कहां गया करते घुर-घुर ।
खुद जा देखो ! एक वार, सुगुरु ने०॥२॥
उधर गाम में फिरते-फिरते, आते हैं प्रभु ! प्रभु! मुख करते ।
सिर इधर तुम्हारी मार, सुगुरु ने०॥३॥
यह ओघा यह मुंहपत्ति ले लो ! मुझको विदा खुशी से दे दो !
देखूंगा विषय-वहार, सुगुरु ने० ॥४॥
तरह-तरह गुरु ने समझाया, नहिं माना आखिर फरमाया ।
अरे ! एक सीख तो धार ! सुगुरु ने०॥५॥

तर्ज—अखियां मिला के

पीते हों दारू, हों मांस के चारू, वहां मत रहना ॥ध्रुवपद॥
मेरी इस सीख को तू, चेला ! मत भूल जाना !
हां! कहकर करके गुरुपद वंदना, हो गया रवाना, पीते हों ०॥१॥
दारू और मांस तजो तो, बोला ऋषि मैं आ जाऊं।
वरना जाकर के श्री गुरुदेव को, मस्तक झुकाऊं, पीते हों०॥२॥
बोली हैं सविनय दोनों, जिस दिन हम पीयें-खायें ।
उस ही दिन चाहे हमको छोड़कर, स्वामिन्! सिधायें,पीते हों०॥३॥

कर दी है नट ने शादी, दोनों की साथ मुनि के।
विद्या के बल से कर-कर खेल, भर दिए कूप धन के, पीते हों०॥४॥
कंठों तक फंसा भोग में, अब तुम कर गौर सुनना !
कैसे गुरु शिक्षा-बल से होता है, पुनरपि उद्धरना, पीते हों०॥५॥

तर्ज—धर्म पर डट जाना

गया नाटक करने, एक बार आषाढ़ ॥ध्रुवपद॥
खेल नरपति को अजब दिखाया,
सभी के दिल में विस्मय छाया।
लगे हैं सिर हिलने, एक०॥१॥
युवतियों ने इत अवसर जान,
मांस खा किया है मदिरापान।
लगी हैं बड़बड़ने, एक० ॥२॥
खुलकर लटक गए सिर बाल,
वस्त्र का पता न मुख से लाल।
लगी बेहद झरने, एक०॥३॥
अचानक आया चल आषाढ़,
देख दिल प्रगटा दुःख प्रगाढ़।
लगा गुरुवच समरने, एक० ॥४॥

तर्ज—घटा घन घोर-घोर

चला चख नीर-नीर, मन न समाई पीड़,
अब आषाढ़ा रोया-रोया, अब आषाढ़ा रोया ॥ध्रुवपद॥
हा! हा! श्री गुरुवर ने मुझको,था कितना समझाया।
मोह-अन्ध बन मैं नहिं समझा, इनसे प्रेम लगाया।
पड़ा भव वार-वार, कैसे अब पाऊं पार,
हीरा संयम खोया-रोया, अब आषाढ़ा रोया ॥१॥
चाहे सौ मन साबुन लाएं, काग सफेद न होता।
जीवन भर चाहे घी-गुड़ सींचें, नीम न मीठा होता।
ऐसे ही यह नट की जाति, रास्ते नहिं आने पाती।
हा! हा! जन्म विगोया-रोया, अब आषाढ़ा रोया ॥२॥

तर्ज—बन जाओ जी बन जाओ

जाता हूं जी जाता हूं, अब मैं वापस जाता हूं।
गुरु को शीश झुकाता हूं, अब मैं० ॥ ध्रुवपद ॥
लज्जित हो वे बोल रहीं, माफी दो एक बार सही।
बस रहने नहिं पाता हूं, अब० ॥१॥
हमको फिर किसका आधार, क्या खाएंगी प्राणाधार !
खाना धन ! जो लाता हूं, अब० ॥२॥

तर्ज—दिल्ली चलो !

पड़ह बजाया, पड़ह बजाया, पड़ह बजाया जी।
राजगृह की गली-गली में पड़ह बजाया जी ॥ध्रुवपद॥
अद्भुत अंतिम खेल करूंगा आना पेखने,
ऐसा खेल मिलेगा न कभी फिर से देखने।
लोगों का मैदान में मेला भराया जी, राजगृह० ॥१॥
श्री भरत चक्री का नाटक अजब रचाया है,
षट् खंडों की साधना का दृश्य दिखाया है।
खुश होकर लोगों ने धन का घन बरसाया जी, राजगृह० ॥२॥

तर्ज—जिंदगी है प्यार से

आ रहा, आ रहा, आ रहा जी आ रहा।
खेल दिखाता आखिर चक्री, स्नानघर में आ रहा ॥ ध्रुवपद॥
आभूषण सब खोल दिए, मन वच-तन एकाग्र किए।
अंगुली की अंगूठी पर, अब वह ध्यान लगा रहा, आ रहा० ॥१॥
नाशमान यह काया है, झूठी जग की माया है।
पर पुद्गल की शोभा पर, नाहक यह जीव लुभा रहा, आ रहा० ॥२॥

तर्ज—तालिओं ना ताले

ऐसे खेल दिखाते, फौरन लग गया सच्चा ध्यान रे।
केवल हुआ, नट को केवल हुआ ॥ ध्रुवपद ॥
बाह्यभान को भूला अंतर शुक्ल ध्यान में झूला,
हो गया अविचल मंगलगान रे, केवल० ॥१॥
लोग अचंभा पाए, ऋषिजी सुगुरु-शरण में आए
आखिर पहुंच गए निर्वाण रे, केवल० ॥२॥

तर्ज—राधेश्याम

देखो एक सुगुरु-शिक्षा से, हुआ पतित मुनि का उत्थान।
इसीलिए सब सुगुरुवचन का, रखो हमेशा पूरा ध्यान !
शुक्ल पक्ष वैशाखी तेरस, दो हजार पर संवत तीन।
"भायंदर' में सद्गुरु-कृपया 'धनमुनि' का मन संयम लीन ॥१॥

मणि पन्द्रहवां — भावना नैया

इला पुत्र नटनी से मोहित हुआ। बाप ने बहुत समझाया लेकिन नहीं समझा और नट बन गया। फिर एक बार नटी को लेकर राजा के सामने नाटक करने लगा। नटी का इच्छुक राजा नट को मारना चाहता था। अचानक एक मुनि को देखकर नट प्रतिबुद्ध हुआ एवं नाटक करता-करता ही केवलज्ञानी बनकर मुक्त हो गया।

तर्ज—हीरा मिसरी का

भावना नैया है, चढ़ जाओ धर प्यार, भावना० ॥ध्रुवपद॥
कहीं! डूबते इसने तारे, कहीं! जूझते इसने तारे।
करते स्नान उदार, भावना ॥१॥
गज पर बैठे इसने तारे, घाणी के बिच इसने तारे।
करते नाटक सार, भावना० ॥२॥
शहर इलावर्धन था भारी, धनदत्त सेठ अमित धन धारी।
सुत का फिक्र अपार, भावना० ॥३॥
इला सुरी ने संकट चूरा, हुआ सेठ के पुत्र सनूरा।
मुख-मुख जय-जयकार, भावना० ॥४॥
इलापुत्र अभिधान दिया है, पाल-पोषकर बड़ा किया है।
सुख की आशा धार, भावना० ॥५॥

पूछा पिता ने, बना! क्यों रिसाया?
नट की सुता चाहिए उसने गाया।
बाप सुनते ही बेहोशी पाया रे, एक दिन० ॥२॥
अरे पुत्र! यह काम जायज नहीं है,
आ होश में बातें काफी कही हैं।
पर हठीला न काबू में आया रे, एक दिन० ॥३॥
अन्याय ऐसा न कभी करूंगा,
सीमा से पग मैं न बाहर धरूंगा।
बाप कहकर यों वापस सिधाया रे, एक दिन ॥४॥

तर्ज—धर्म पर डट जाना

तुरत ही बुलवाया, लड़के ने नटराज ॥ध्रुवपद॥
कहा है कृपया कन्या दे दो! धन दिल चाहे जितना ले लो!
मेरा मन ललचाया, लड़के। ।१॥
कुंवरजी! उत्तम जाति तुम्हारी, अधमाधम है जाति हमारी।
न जोड़ा कहलाया, लड़के ॥२॥

तर्ज—पिया घर आजा

हाय हठीले लड़के ने, शिक्षण नटेश का यह,
बिल्कुल न माना-माना बिल्कुल न माना ॥ ध्रुवपद ॥
बोला जी नहिं सकता तेरी बेटी बिन, बेटी बिन।
वर्ष बराबर बीत रही है मेरी छिन, मेरी छिन।
कहा हार कर नटवर ने,
करना पड़ेगा मेरा, शासन प्रमाना, माना० ॥१॥
ऐश-आराम पड़ेगा सारा छोड़ना, छोड़ना।
नट-जीवन से होगा मनको जोड़ना, जोड़ना।
राजाओं को खुश करके,
द्रव्य पड़ेगा तुमको, लाख कमाना, माना० ॥२॥
प्रीतिभोज सब न्यातिजनों को दूंगा मैं, दूंगा मैं।
आज्ञा उनसे शादी की फिर लूंगा मैं, लूंगा मैं।
अगर हुक्म वे दे देंगे,
तो मैं करूंगा शादी, जाहिर जताना, माना ॥३॥

मणि पन्द्रहवां भावना नै

इला पुत्र नटनी से मोहित हुआ। बाप ने बहुत समझाया लेकिन नहीं स और नट बन गया। फिर एक बार नटी को लेकर राजा के सामने नाटक लगा। नटी का इच्छुक राजा नट को मारना चाहता था। अचानक एक मुि देखकर नट प्रतिबुद्ध हुआ एवं नाटक करता-करता ही केवलज्ञानी बनकर हो गया।

तर्ज—हीरा मिसरी का

भावना नैया है, चढ़ जाओ धर प्यार, भावना० ।।ध्रुव०
कहीं! डूबते इसने तारे, कहीं! जूझते इसने तारे।
करते स्नान उदार, भावना ।।
गज पर बैठे इसने तारे, घाणी के बिच इसने तारे।
करते नाटक सार, भावना० ।।
शहर इलावर्धन था भारी, धनदत्त सेठ अमित धन धारी।
सुत का फिक्र अपार, भावना० ।।
इला सुरी ने संकट चूरा, हुआ सेठ के पुत्र सनूरा।
मुख-मुख जय-जयकार, भावना० ।।
इलापुत्र अभिधान दिया है, पाल-पोषकर बड़ा किया है।
सुख की आशा धार, भावना० ।।

तर्ज—अय बाबु जी !

नाच अद्भुत नटों ने रचाया रे, एक दिन वहां ।।
साथ दोस्तों के सुकुमार आया रे, एक दिन वहां ।।ध्रुवपद।।
थी अप्सरा तुल्य नटवर की लड़की,
अवलोकते ही बिजली-सी कड़की।
हो गया मुग्ध घर आ रिसाया रे, एक दिन० ।।१।।

नट ने निहारे हैं करते तमाशा,
जाति स्मरन का हुआ है प्रकाशा-२।
शुद्ध भाव प्रगटा, पर्दा मोह का हटा, इत ।।२।।
चाहता है राजा यह मुझको मारना,
चाहता हूं मैं इससे धनमाल झाड़ना-२।
हा! हा! खो दिया जनम, धिग्-धिग् मोहनीकरम, इत ।।३।।
मिनटों में नट ने केवल उपाया,
नटी राजा रानी ने प्रतिबोध पाया-२।
संयम ले लिया विमल, जीवन हो गया सफल, इत ।।४।।

तर्ज—राधेश्याम

चारों ही सद्भाव-नाव पर, चढ़कर पाए परमानंद।
सुन यह वर्णन निर्मल, भावों से काटो कर्मों के द्वंद्व।
दो हजार तीन शुभ संवत, जेष्ठ कृष्ण तिथि तीज पिछान।
विलेपारले में गुरु-कृपया, धर्म ध्यान में 'धन' गलतान ।।१।।

मणि सोलहवां — अभय की अकलमंदी

अवसरज्ञ श्रेणिक घर छोड़कर चला गया। वेन्नातट नगर में सेठ पुत्री सुनंदा से व्याह करके वहीं रहने लगा। एक पुत्र अभयकुमार हुआ। फिर पिता के बुलाने पर राजगृह जाकर राजा बना। अभय माता सहित राजगृह आया। बुद्धि का चमत्कार दिखाकर प्रधानमंत्री बना।

अंत में चेलना का महल जलाकर राजा के मुख से जा! जा! कहलवाया एवं साधु बनकर विजय विमान में गया।

तर्ज—तेरे बाल घूघर वाले

विश्व में हैं विरले ही वीर, अभय सम संयम धरने वाले।
संयम धरने वाले, शीघ्र भवसागर तरने वाले, विश्व ॥ध्रुवपद॥
राजगृह पुरसार, प्रसेनजित् महाराज दिलदार।
पुत्र सौ श्रेणिकादि सुविचार, पितृ-आज्ञा अनुसरने वाले, विश्व ॥१॥
श्रेणिक अवसर जान[1] चला है घर से तत्त्व पिछान।

---

१. प्रसेनजित् राजा के अनेक रानियां थीं, १०० पुत्र थे। उनमें से श्रेणिककुमार परम विचक्षण था [माता का नाम कलावती था]। पूछने पर ज्योतिषी ने कहा था कि आपका उत्तराधिकारी श्रेणिक होगा। पुत्रों की बुद्धि की परीक्षा के लिए राजा ने निम्नलिखित प्रयोग किए—

एक दिन कहा—ऐसा जल लाओ! जो कूप, तालाब, नदी, समुद्र, द्रह एवं मेघ का न हो! सारे भाई खाली आए लेकिन श्रेणिक ने ओस का जल हाजिर किया।

एक बार पुत्रों को भोजन के थाल दिए। ज्योंही सब खाने लगे, शिकारी कुत्ते छोड़े। डरकर सभी कुमार भाग गए, एक श्रेणिक खाता रहा एवं भाइयों की थालियां कुत्तों के सामने रखता गया।

एक दिन मिठाई से भरे हुए करंड और जल भृत कोरे घड़े देकर कहा—इन्हें बिना खोले मिठाई खाओ और पानी पीओ! सब राजकुमार

राह में पाए रत्न महान[1], अनूठा तेज वितरने वाले, विश्व ॥२॥

तर्ज—कलदार रुपैया चांदी का

मशहूर शहर वेन्नातट में, अब श्रेणिक फिरता आया है[2] ॥ध्रुवपद॥
एक सेठ धनावा रहता था, कर्मोवश संकट सहता था।
श्रेणिक आ वैठा आपण पर, उसने अति लाभ कमाया है मशहूर ॥१॥
कर आग्रह मंदिर लाया है, खाना सप्रेम खिलाया है।
लख योग्य सुनंदा पुत्री दे, अपना दामाद बनाया है, मशहूर ॥२॥
एक सुरनंदी व्यापारी को, देकर के अद्भुत तेजमतूरी[3]।
श्रेणिक ने लाखों रुपयों का क्षण ही में लाभ कमाया है, मशहूर ॥३॥

एक दूसरे का मुंह ताकते रहे लेकिन श्रेणिक ने करंड को हिला-हिलाकर मिठाई का चूर्ण खा लिया एवं घड़े के वस्त्र लपेट कर झरा हुआ जल पी लिया। एकदा नाटक होते समय राजमहल में आग लगी। राजा ने कहा—जलते हुए महल से यथेष्ट वस्तु ले आओ! राजकुमार दौड़े एवं वस्त्र आभूषण-रत्न आदि ले आए। श्रेणिक ने भंभा-भेरी [जिसके शब्द मात्र से छः महीनों तक रोग नहीं हो सकता] ली। अतएव श्रेणिक का नाम भंभासार हुआ।

श्रेणिक का बुद्धि वैभव देखकर सारे भाई ईर्ष्यावश जलने लगे एवं श्रेणिक को मारने की सोचने लगे। भेद पाकर राजा ने कहा—श्रेणिक! तू यहां से चला जा! बुलाऊं जब वापस आ जाना।

१. स्वप्न में कुल देवी ने स्थान निर्देश किया, वहां जाने से श्रेणिक को १८ रत्न मिले। उनमें विषहरना, जल में रास्ता हो जाना, पुत्र लाभ, उच्चाटन नाश, रोगनाश, भोगप्राप्ति, भुजा से समुद्र को पार करना, रूपवृद्धि, अग्निशांति, सिंहपलायन, धान्यवृद्धि, शत्रुदमन, स्त्रीवशीकरण आदि गुण थे।
२. वेन्नातट नगर जाते समय रास्ते में नंदीग्राम आया। वहां बौद्धमठ में गया एवं बौद्धाचार्य से प्रभावित होकर प्रण किया कि राज्य मिलने पर मैं आपको धर्मगुरु मानूंगा। इसी कारण राज्य प्राप्ति के बाद श्रेणिक बौद्ध बन गया था।
३. तेजमतूरी (एक प्रकार की जड़ी या घास) किसी माल के साथ आयी थी, जो दुकान के आगे कचरे के रूप में पड़ी थी। श्रेणिक ने उसे अमूल्य द्रव्य समझकर कोठे में रखवा दी। (एक भार छः मण तांबा उकाल कर उसमें एक तोला तेजमतूरी डालने से तांबा सोना बन जाता है। एक वाल तेजमतूरी

पा पता पिता ने बुलवाया, लिख पत्र सपुत्रा[1] तज नारी ।
चल राजगृहपुर आया है, महाराजा का पद पाया है, मशहूर८ ॥४॥

तर्ज—पिया घर आजा

लेकिन राजा बन करके, सुत और नारी पर तो,
ध्यान न डाला-डाला, ध्यान न डाला ॥ध्रुवपद॥
लगा पूछने अभय बताओ मातजी, मातजी !
कहां गए हैं मेरे प्यारे तातजी, तातजी ।
गद्-गद् हो तब माता ने,
जाकर के पेटी से वह, पत्र निकाला डाला, ध्यान० ॥१॥
राजगृह में हूं मैं ऊंचे घरवाला, घरवाला ।
लिखा पत्र में तुरत पुत्र ने पढ़ डाला, पढ़ डाला ।
नां नां ! कहते नाना के,
लेकर के मां को निकला, होकर उताला-डाला, ध्यान० ॥२॥
राजगृह के वन में कैंप लगाया है, लगाया है ।
धूम मचाकर सबका मन चमकाया, चमकाया है[2] ॥
भीड़ निरख फिर कुएं पर,
क्या है अभय ने पूछा, हर्ष विशाला-डाला ध्यान० ॥३॥

तर्ज—हीरा मिसरी का

है इस कुएं में, अंगूठी इक सार ॥ध्रुवपद॥
ऊपर बैठा कर से जो नर, अंगूठी ले आए बाहर ।
कर अद्भुत उपचार है, इस कुएं में० ॥१॥
सचिव पांच-सौ का अगवानी, उसे बनावे नर-अगवानी ।
सुन बोला अभयकुमार, है इस कुएं में० ॥२॥

की कीमत एक मन सोना) देवनंदी व्यापारी ने राजा से तेजमतूरी की मांग की। राजा ने घोषणा करवाई। सेठ की दुकान से दी गयी। राजा ने सेठ का सम्मान किया, इधर लाखों की कमाई भी हो गयी।

१. सुनंदा के एक पुत्र हुआ उसका नाम अभयकुमार था।

२. जौहरी बन कर जौहरियों को ठगा, सुन्दरी बनकर कोटवाल को ठगा, बाबा बनकर मंत्री को ठगा एवं धोबी बनकर राजा को ठगा।

तर्ज—राधेश्याम

अभी निकालूं इसमें क्या है, यों कह ला गोबर डाला।
चिपकी मुद्रा सुखा लिया, गोबर को खोला जल नाला।
भरते ही वह अंधकूप, गोग्रंथि आ गयी है ऊपर।
पहनी अभयकुंवर ने मुद्रा, उसमें से फौरन लेकर ।।१।।

तर्ज—अखियां मिला के

नृप ने सुनकर विस्मित बनकर, तुरत बुलाया ।।ध्रुवपद।।
छोटी-सी उम्र अद्भुत-मेधावी बाल सुहाया।
अरे! किसका है पुत्र? राजन्! तात का तो पता न पाया, नृप ने० ।।१।।
वेन्नातटपुर का हूं मैं, क्या है वहां सेठ धनावा ?
हांजी हां ! पुत्री उसकी नन्दा है, हद रूप दिखावा, नृप ने० ।।२।।
अरे नन्हा-सा पुत्र अभय था, जी हां ! अब बड़ा हुआ है।
लेकर निज मां को मिलने तात से, यहां आ रहा है, नृप ने० ।।३।।
किसके घर ठहरा है वह ? उपवन में ! है वह कैसा?
जाकर के देखें राजन् ! है सही, वह मेरे जैसा, नृप ने० ।।४।।

तर्ज—जब तुम ही चले परदेश

दिल में न खुशी का पार, मगध-सरदार,
तुरत उठ धाया, उपवन में चलकर आया ।। ध्रुवपद ।।
जा सुत ने खबर सुनाई है, माता रूं-रूं विकसाई है।
दोनों ने राजा को शीश झुकाया, उपवन में० ।।१।।
राजा ने पूछा अभय कहां, यह हाजिर है रानी ने कहा।
विस्मित नृप ने सुत को कण्ठ लगाया, उपवन में० ।।२।।
रानी ने उलहने कई दिए, राजा ने चुप हो सभी सहे।
अभय कुंवर को बड़ा दिवान बनाया, उपवन में० ।।३।।
क्या-क्या न अभय ने काम किया, दुनिया में भारी नाम किया।
आखिर संयम लेने मन हुलसाया, उपवन में० ।।४।।

तर्ज—चले आना हमारे अंगना

कर जोड़ करके, बोला पैर पड़के,
दे दो आज्ञा पिताजी ! मुझको-२ ।।ध्रुवपद।।

लूंगा चरण में घर को तजूंगा,
कल्याण अपना अब मैं करूंगा-२।
जरा महर करके, मन से मोह हरके, दे दो० ॥१॥
आज्ञा तुझे में हर्गिज न दूंगा,
तो मैं भी पिताजी ! न अब तो रहूंगा-२
खूब हुई मनुहार, बोला नरसरदार, दे दो० ॥२॥
कह दूं तुझे जब आवेश में आ,
जा-जा ! अरे रे अभय ! तू चला जा-२।
संयम लेना उस दिन, चुपके रहना इतने दिन, दे दो० ॥३॥
माता अभय ने इतने में आए,
महावीर भगवान सबको सुहाये-२।
लेकर साथ अन्तःपुर, वंदन आये नर वर, दे दो० ॥४॥
सुन वीर-वाणी लौटे नरेश्वर,
खड़े एक दरखत के नीचे मुनीश्वर-२।
सर्दी पड़ रही अपार, पास वस्त्र नहिं तार, दे दो० ॥५॥
करके नमस्कार आये हैं मंदिर,
रानी का हाथ रहा कंबल से बाहर[१]-२।
खुले दोनों ही नयन, निकले मुख से वचन, दे दो० ॥६॥
इस वक्त में वह क्या करता होगा,
धीरज भी कैसे अहो। धरता होगा-२।
सुन नृप हो गया गरम, दिल में छा गया भरम, दे दो० ॥७॥

तर्ज—रहमत के बादल छाये

श्रेणिक महाराज के, अब बहम विना हद छाया ॥ध्रुवपद॥
सोच रहा है कुलटा रानी, किसी अन्य से प्रीति रचानी।
निशि समय उसी को गाया, श्रेणिक० ॥१॥
प्रातः अभय कुमार बुलाया, महल जला दो ! हुक्म सुनाया।
खुद दर्शन हेतु सिधाया, श्रेणिक० ॥२॥
किंतु अभय था मति का सागर, महारानी को इधर-उधर कर।
फिर अन्तःपुर जलवाया, श्रेणिक० ॥३॥

---
१. मध्य रात्रि के समय।

तर्ज—आजादी का दीवाना

राजा ने पूछा वीर से, कैसा है अन्तःपुर ?
फरमाया भगवान ने, सच्चा है अन्तःपुर ।।ध्रुवपद।।
चेलना की बात का, तूने न पाया मर्म ।
हुक्म जलाने का दिया, बे मतलब क्रोधकर, राजा० ।।१।।
हाय ! हो गया जुल्म, कह यों नृप उठ धाया है ।
जलता हुआ महल इतने में, आ गया नजर, राजा० ।।२।।
इधर सामने आ मिला है, अभय कुमार भी ।
पूछा महल जला दिया क्या ? हां नरेन्द्रवर, राजा० ।।३।।
जा जा रे बेवकूफ ! तूने यह क्या कर दिया ।
बस ! तुरत जा वीर से, संयम लिया प्रवर, राजा० ।।४।।

तर्ज—राधेश्याम

इधर सुनो मगधेश्वर ने आ, पुर में खबर लगाई है ।
लेकिन केवल महल जला था, रानी जीवित पाई है ।।१।।
इतने ही में पहले वाली, बात स्मरण हो आयी है ।
चलकर आया दर्शन करने, दिल दिलगीरी छाई है ।।२।।
अपना गुनह खमा करके, अब करता है भूपति गुणगान ।
धन्य-धन्य हे कुल के सूरज ! जीवन अपना किया प्रमान ।।३।।
यों गुन गाता आया मंदिर, मुनि ने घोर तपस्या ठान ।
अन्तिम समय किया है अनशन, पाया अद्‌भुत विजय विमान ।।४।।
सांसारिक कार्यों में बुद्धि चलाने वाले बिनाशुमार ।
लेकिन धार्मिक कार्यों में, नर बुद्धिमान विरले संसार ।।५।।
सुनकर अभय कुंवर का वर्णन, आया समय न जाने दो ।
उद्यम करके इस चेतन को, अजर-अमर पद पाने दो ! ।।६।।
दो हजार तीन शुभ संवत, जेठ वदी सातम सुखकार ।
"विले पारले" में गुरु कृपया, "धन मुनि" कर रहा धर्म प्रचार ।।७।।

मणि सत्रहवां

मधुबिंदु

जंगल में हाथी से डरकर राही वड़ के वृक्ष पर चढ़ा। नीचे कुएं में सांप-अजगर थे एवं ऊपर दो चूहे और मधुमक्खियों का छाता था। वृक्ष के हिलने से मक्खियां उड़कर काट रही थीं। इधर एक मधु का बिन्दु मुंह में गिरा। विद्याधर ने उसे घर पहुंचाने को कहा किन्तु मधुविन्दु का लोभी नहीं माना एवं चूहों के शाखा काटने पर कुएं में गिर कर मरा।

तर्ज—पिया घर आजा

सुख मधुबिन्दु समान कहे, दुख से घिरे हैं प्रभु ने,
शास्त्रों में गाया-गाया, शास्त्रों में गाया ॥ध्रुवपद॥
बेमतलब तुम क्यों इन पर ललचा रहे, ललचा रहे।
हीरा न रतन क्यों तुम व्यर्थ गवां रहे, गवां रहे।
फिर-फिर गुरु समझाते हैं,
मानो सलौनी शिक्षा, अवसर सुहाया, गाया ॥१॥
भूला राही भीषण वन में जा रहा, जा रहा।
मतवाला गज पीछे उसके धा रहा, धा रहा।
वड़ तरुवर पर दौड़ चढ़ा,
हाथी ने आकर नीचे द्वंद्व मचाया, गाया ॥३॥
वड़ की शाखा डरता राही पकड़ रहा, पकड़ रहा।
उन्दर-जोड़ा हाय! उसी को कुतर रहा, कुतर रहा।
नीचे कूप भयंकर है,
वैठे वहां दो अजगर, लंबी है काया, गाया ॥४॥
चारों ओर भयंकर विषधर, चार हैं, चार हैं।
मधु का छाता तरु पर एक उदार है, उदार है।
मक्खी-गण तन काट रहा,
मधु का इधर एक बिन्दु, छाते से आया, गाया ॥४॥

स्वाद लगा राही ने मुंह उठाया है, उठाया है।
इतने ही में विद्याधर वहां आया है, आया है।
देख दशा उस राही की,
रूं-रूं में छाई करुणा, दिल गद्गदाया, गाया ॥५॥

तर्ज—चले आना हमारे अंगना

दया ठान करके, नीचे यान धर के,
कहा खेचर ने बैठो इसमें ॥ध्रुवपद॥
तुमको शहर में मैं ले चलूंगा,
पाई किराये की तुमसे न लूंगा-२।
भैया! देर न करो! इस कष्ट से टरो! कहा ॥१॥
इतने में बिन्दु एक मधु का पड़ा आ,
बोला है मूर्ख अहा? कितना है मीठा-२।
चखलूं एक मैं पुनर्, करें आप जो महर, कहा ॥२॥
बोला है विद्याधर सुन रे, मूरख!
सिर पर है मौत क्या खुश होता चख-चख।
खेचर हार करके, चला तर्फ घर के, कहा ॥३॥
चूहों ने शाखा को काटा उधर से,
गिरा कूप में मूर्ख राही इधर से-२।
मधुबिन्दु के लिए, प्रान हार ही दिए, कहा, ॥४॥

तर्ज—जब तुम ही चले परदेश

अब वर्णन पर ध्यान, धरो कर ज्ञान, तरो भवपारा।
सार्थक हो जन्म तुम्हारा ॥ध्रुवपद॥
दुनिया यह जंगल भारी है, रास्तागिर चेतन जारी है।
काल रूप गजराज महामतवारा, सार्थक ॥१॥
वड़-शाखा उम्र पिछानो तुम, चूहे दिन रात्री मानो तुम।
चार सांप है क्रोधादिक दुखकारा, सार्थक ॥२॥
तिर्यंच-नरक दो अजगर हैं, मधुबिन्दु विषय सुख भंगुर है।
हैं चटके संयोग-वियोग अपारा, सार्थक ॥३॥
विद्याधर सुगुरु सुहाये हैं, सद्धर्म यान ले आये हैं।
समझाते हैं दे उपदेश उदारा, सार्थक ॥४॥

तर्ज—दिल्ली चलो

बैठ जाओ, बैठ जाओ, बैठ जाओ रे !
धर्म के विमान में तुम बैठ जाओ रे ! ।।ध्रुवपद।।
शील दया सत्य त्यों संतोष धार लो ।
क्रोध मोह माया अहंकार मार लो ।
बेधड़क जा मुक्ति में मौजें उड़ाओ रे, धर्म ।।१।।
हो विषय में अन्ध नर जो मानेंगे नहीं,
गुरुशिक्षा पै ध्यान अपना ठानेंगे नहीं ।
दुर्गति में वे जा गिरेंगे मन समझाओ रे, धर्म ।।२।।

तर्ज—राधेश्याम

सुगुरु कृपा से "धन मुनि" ने यह वर्णन सुखद सुनाया है ।
दो हजार तीन शुभ संवत, जेष्ठ कृष्ण दल आया है ।
"मांटुंगा" में भव्य जनों ! मिल-जुलकर मंगल गान करो !
विषय सुखों से मन को मोड़ो, अजर अमर पद शीघ्र वरो ।।१।।

मणि अठारहवां सत्संग

कठियारे ने मुनि से हरी लकड़ी न काटने का नियम लिया। वर्षा ऋतु में सूखी लकड़ी न मिली, कठियारा आगे चला। गिरि गह्वर में लकड़ियां मिलीं। लेकर घर आया, व्यापारी ने उसे ठगना चाहा क्योंकि वह बावना चन्दन था। कठियारा उसे बेचकर धनाढ्य बना फिर मुनिराज पधारे। उसने गृहस्थधर्म धारण किया। इस कथा में सत्संग की महिमा वर्णित है।

तर्ज—जब तुम ही चले परदेश

सत्संग सदा सुखकार, करो धर प्यार, तरो भवपारा।
मानो! उपदेश हमारा ॥ध्रुवपद॥

आलस्य प्रमाद हटाओ तुम, मन में सत्संग रमाओ तुम।
हो क्षण में उद्धार फर्क नहिं तारा, मानो! ॥१॥

मुनि बहिर्भूमिका जाते थे, तप-संयम में हद माते थे।
नगर द्वार पर मिला एक कठियारा, मानो! ॥२॥

मुनि ने उपदेश सुनाया है, कठियारे ने व्रत ठाया है।
नहिं बांधूंगा हरे काठ का भारा, मानो! ॥३॥

तर्ज—अखियां मिला के

जा रहा खुशमन, अब वह एक दिन, लेने लकड़ियां॥ध्रुवपद॥

बारिश हो रही थी काफी, नीलापन वन में छाया।
सूखी लकड़ी का नाम-निशान भी, न नजर में आया, जा० ॥१॥

भारे लकड़ी के बांधे, साथी कठियारों ने मिल।
लेकिन वह बंदा तो आगे बढ़ा, मन को कर निश्चल, जा० ॥२॥

अंदाजन दस माइल पर, गह्वर एक नजर चढ़ी है।
सूखी लकड़ी की जिसमें ढेरियां, पुष्कल पड़ी हैं, जा० ॥३॥

खुश-खुश हो कठियारे ने, भारी एक बांधा भारा।
वापस घर पहुंचा तब तक छा गया, अंधेर अपारा, जा० ॥४॥

तर्ज—चले आना हमारे अंगना

भारा नीचे धर के, सब तैयारी करके,
लगा खाना पकाने खुश हो ॥ध्रुवपद॥
हांडी में डाल दाल चूल्हे चढ़ाई,
सूखी लकड़ियां नीचे जलाई-२ ।
रहा रोटियां बना, इत रंग क्या छना, लगा० ॥१॥
की चार दोस्तों ने मिल गोठ बाग में,
तीनों गए बैठे चौथे की लाग में-२ ।
चौथा जल्दी करके,आ रहा सीधा चलके, लगा० ॥२॥
चंदन की खूशबू बिच ही में आ गयी,
बस ! गोठ की बात दिल से पला गयी-२ ।
देखा झोंपड़ी में आ,भारा चंदन का पड़ा लगा० ॥३॥
इधर वो ही चंदन चूल्हे में जल रहा,
अरे मत जला ! यों बनिया उबल रहा-२ ।
ले ले ! एक रुपया, भारा दे दे भइया ! लगा० ॥४॥

तर्ज—हीरा मिसरी का

पड़ गया चक्कर में, कठियारा सुनकर बात ॥ध्रुवपद॥
विस्मित होकर मन में कहता, आठ से नौ पैसे नहिं देता ।
बनिया यह साक्षात, पड़ गया० ॥१॥
आज रुपैया दे रहा मुझको, उत्तावल से कह रहा मुझको ।
है तत्त्व सही अज्ञात, पड़ गया ॥२॥

तर्ज—पिया घर आजा

लगा पूछने कठियारा, पहले बताओ मुझको,
किसका है भारा-भारा, किसका है भारा ॥ध्रुवपद॥
भले किसी का हो तेरे क्या काम है, काम है ।
मूर्ख जला मत! ले ले दो अभिराम हैं, अभिराम हैं ।
मेरी मर्जी जलाऊंगा,
कह यों बड़ा-सा लकड़ा,चूल्हे में डारा, भारा० ॥१॥
तीन पांच दस बीस कहे फिर सौ हजार, सौ हजार ।
पांच लाख तक आखिर कर दी है पुकार, है पुकार ।

फिर-फिर के कठियारे ने,
क्या है बताओ ऐसे, मुख से पुकारा, भारा ॥२॥
आखिर बनिया बोला, चन्दन सार है, सार है।
पल[1] की कीमत सवा लाख दीनार है, दीनार है।
सुन खुश हो कठियारे ने,
लाकर दिया है लकड़ा,एक उदारा, भरा० ॥३॥

तर्ज—रहमत के बादल छाये

बनिया निज मन्दिर आया, चन्दन ले बावना ॥ध्रुवपद॥
चन्दन विक्रय कर कठियारा, बना धनी सबका सरदारा।
नव खण्डा महल झुकाया, चन्दन० ॥१॥
कालांतर वे ही मुनि आये, कठियारे ने व्रत अपनाये।
कर अनशन स्वर्ग सिधाया, चन्दन० ॥२॥
सत्संगति-महिमा सुखदाई, सद्गुरु कृपया "धन" ने भाई।
स्थल "लौर परेल[2]" सुहाया, चन्दन० ॥३॥

---

१. १६ माशों का एक कर्ष एवं चार कर्ष का एक पल होता है।
२. बम्बई के अन्तर्गत।

मणि उन्नीसवां — संप से संपत्ति

गरीबी आने पर विनयी पुत्र-परिवार युक्त एक सेठ जंगल में गया और मूंज को कूट-पीट कर रस्सी बंटने लगा। इनका संप देखकर भूत ने रत्नों का चरू दिया। इनका भेद पाकर कदाग्रही-परिवार वाला सेठ भी वहां गया किन्तु कुसंप के कारण क्रुद्ध भूत ने धमकाकर उसे फौरन निकाल दिया।

तर्ज—हीरा मिसरी का

वासा लक्ष्मी का, है संप महा सुखकार ।।ध्रुवपद।।

साथ संप के संपत फिरती, फूट फजीहत जग में करती।
इसमें फर्क न तार, वासा० ।।१।।

धनपुर नगर बड़ा ही सुंदर, था धनदत्त सेठ धन-ईश्वर।
विनयी बेटे चार, वासा० ।।२।।

फिर भी थी बेहद नादारी, की परदेशों की तैयारी।
छोड़ चले घर बार, वासा० ।।३।।

तर्ज—पिया घर आजा !

एक मुंज के जंगल में, दरखत के नीचे डेरा,
श्रेष्ठी ने डाला-डाला, श्रेष्ठी ने डाला ।।ध्रुवपद।।

बेटे-बहुएं सारे पास बुलाए हैं, बुलाए हैं।
हाथ जोड़कर सबने शीश झुकाए हैं, झुकाये हैं।
मुंज काट कर कूटो रे,
बंट कर बनाओ डोरी, शासन निकाला, डाला० ।।१।।

बस इतना-सा कहने ही की देर थी, देर थी।
लगे काम सब अब उनके क्या देर थी, देर थी।
भूत एक बटवासी था,
सारा ही खेला इनका, उसने निहाला, डाला० ।।२।।

क्या करता है अरे सेठ! सुर पूछ रहा, पूछ रहा ।
तुझे बांधने डोरी, उत्तर स्पष्ट हुआ, स्पष्ट हुआ ।
मुझे किसलिए बांध रहा ?
परिवार बहुत बड़ा है, धन का कसाला, डाला ॥३॥
देख परस्पर संप भूत खुश हो गया, हो गया ।
बोला जा दुख-दोहग तेरा खो गया, खो गया ।
खोद देख घर-चूल्हा रे,
निकलेगा मणि का चरुवर, उससे विशाला, डाला ॥४॥

तर्ज—जब तुम ही चले परदेश

सुन दैविक फरमान, सेठ मतिमान, तुरत घर आया ।
चूल्हे में चरुवर पाया ॥ध्रुवपद॥
घर में धन बिना शुमार हुआ, सुख में अब टाइम गुजर रहा ।
लख अचल सेठ के दिल में विस्मय छाया, चूल्हे ॥१॥
आ पूछा बतलाओ भाई! यह संपत तुमने कहां पायी ?
सरल सेठ ने सच्चा हाल सुनाया, चूल्हे ॥२॥
सुन अचल सेठ ने सबको[1] ले, उस ही बड़ नीचे डेरा दे ।
जाओ लाओ मूंज ! हुक्म फरमाया, चूल्हे ॥३॥

तर्ज—अखियां मिला के

बोले हैं चिढ़के, चारों ही लड़के, बक-बक मत कर ॥ध्रुवपद॥
सिर मेरा दर्द कर रहा, लड़का यों पहला बोला ।
तन मेरा टूट रहा है, दूसरे ने उत्तर खोला, बोले ॥१॥
बोला है तीसरा यों, क्या हूं मैं जंगली नर ।
चौथे ने कहा मुझे क्यों कर रहा, हैरान फिर-फिर, बोले ॥२॥
बोली हैं बहुएं, छोटे बच्चे सब रो रहे हैं ।
पोतों ने कहा खेल में मग्न हम सब हो रहे हैं, बोले ॥३॥

तर्ज—चले आना हमारे अंगना

बूढ़ा क्रोध करके, हाथ कुल्हाड़ी धर के,
गया उठकर बेचारा वन में ॥ध्रुवपद॥

---

१. चारों पुत्र, बहुएं और पोतों को लेकर ।

घर हरते हाथों से कुछ मूंज काटकर,
रस्सी बनाने लगा कूट-पीटकर-२ ।
कर रहे मौज सब ही, बोला भूत तब ही, गया ॥१॥
अरे मूर्ख ! बनिया ! यह क्या तू कर रहा ?
तुझे बांधने को डोरी यह बंट रहा-२ ।
(भूत) क्या तू बांधेगा मुझे घर नहिं मानता तुझे, गया ॥२॥
बेवकूफ धनदत्त की करता बराबरी,
चला जा ! मैं मारूंगा वरना इसी घड़ी-२ ।
डर घर आए हैं सकल, लड़ते आपस में अतुल, गया ॥३॥
अब तुम सभी नैन अदर के खोल लो !
संपत-कुसंपत को तकड़ी से तोल लो-२ ।
कहना "धन" का है सही' शंका लेश भी नहीं, गया ॥४।

मणि बीसवां   आसक्ति

भरत चक्रवर्ती की अपने से प्रथम मुक्ति सुनकर एक सोनार ऋषभदेव भगवान् पर पक्षपात का आरोप लगाने लगा। चक्रवर्ती ने हाथ में तेल का प्याला देकर उसे अयोध्या में घुमाया और उसको समझाया कि वास्तव में आसक्ति ही पाप है। वर्णन ध्यान से पढ़ने योग्य है।

तर्ज—रहमत के बादल छाए

आसक्ति पाप है भारी, आगम फरमा रहे।
विरलों ने आंख उघाड़ी, आगम फरमा रहे ।।ध्रुवपद।।

खूब तुम्हें धन-माल मिला है, दिल चाहा परिवार मिला है।
है महल स्वर्ग-सहचारी, आगम ।।१।।

लेकिन ये सब हैं न तुम्हारे, यहीं रहेंगे आखिर सारे।
क्यों इन पर ममता धारी, आगम ।।२।।

रहो अलेप भरत के नाई, तर जाओगे फर्क न राई।
तुम सुनो बात सुखकारी, आगम ।।३।।

तर्ज—लाखों प्रणाम

आये ऋषभ जिनेश-२, करते उग्र विहार, आये।
घर-घर मंगलाचार, आये ।।ध्रुवपद।।

वंदन आया भरत नरेश्वर, हुई देशना प्रभु की सुखकर।
परिषद जुड़ी अपार, आये ।।१।।

अल्पारंभ-परिग्रह तरते, इससे उलटे फिर-फिर मरते।
सुन बोला सोनार, आये ।।२।।

भरतेश्वर से पहले शिवपुर, तब तो मुझे मिलेगा प्रभुवर !
प्रभु ने किया नकार, आये ।।३।।

तर्ज—चले आना हमारे अंगना

सोनी चौंक करके, बोला जोश भरके।
किया तुमने तो पक्ष प्रभुवर-२ ॥ध्रुवपद॥
कितनी हैं रानियां और हाथी-घोड़े,
मेरे छोटे-से हटड़े में औजार थोड़े-२।
फिर भी मुक्ति न मुझको, होगी पहले इनको, किया ॥१॥
बोले जिनेश्वर नहिं पक्षपात है,
सोनार ने किन्तु मानी न बात है-२।
पूरी देशना हुई, जनता उठकर गयी, किया ॥२॥
करके नमस्कार चक्री सिधाया,
सोनार को पास आपने बुलाया—२।
सोनी थरथरा रहा, भारी फिक्र छा रहा, किया ॥३॥
व्याख्यान सुनने क्यों मैं गया हा!
भगवान से वाद काहे किया हा-२!
अब तो आ गया मरन, है न कोई भी शरन, किया ॥४॥

तर्ज—पिया घर आजा

तेल का प्याला भर करके, सोनी के कर में देकर,
चक्री ने गाया-गाया, चक्री ने गाया ॥ध्रुवपद॥
ले नंगी तलवार सिपाही जाओ दो, जाओ दो!
इस सोनी के पीछे-पीछे सज्जित हो, सज्जित हो।
चौरासी चौरास्ते हैं,
फिर-फिर सभी दिखलाओ, हर्ष सवाया, गाया ॥१॥
बिन्दु तेल का अगर एक भी जाए गिर, जाए गिर।
काट डालना फौरन इस सोनी का सिर, सोनी का सिर।
कह यों विदा कर दिया है,
चलता है सोनी, जीना मुट्ठी में आया, गाया ॥२॥
इधर पंथ में खेल अनेक रचाए हैं, रचाए हैं।
रकम-रकम के बाजे अजब बजाए, बजाए है।
किन्तु ध्यान सोनी का तो,

मणि इक्कीसवां — दुष्टों की दुर्दशा

पशु-पक्षी की भाषा को समझने वाली महासती शीलवती नदी में बहते हुए मुर्दे की कमर से खोलकर पांच रत्न लाई। संदेह होने से उसे लेकर ससुर पीहर की तरफ चला लेकिन धन के चार घड़े मिलने पर वापस घर आ गये। फिर राजा की सलाह से चार मंत्री सती को विचलित करने आए और कैदी बनकर दुखी हुए। कथा विशेष रुचिकर है।

तर्ज—मैं चुपके-चुपके रोती

सतियों को सताने वालों की, होती है दुर्दशा।
बेशक कामी मतवालों की, होती है दुर्दशा ।।ध्रुवपद।।
सतियां हैं सोना निर्मल, उन पर नहिं चढ़ सकता मल।
अरे ! मैल चढ़ाने वालों की, होती है० ।।१।।
सतियों के मन हैं निश्चल, होते न कभी वे चंचल।
उन पर ललचाने वालों की, होती है० ।।२।।

तर्ज—रहमत के बादल छाए

रत्नाकर सेठ सुहाया, नन्दनपुर शहर में।
सुत अजितसेन कहलाया, नन्दनपुर शहर में।।ध्रुवपद।।
शीलवती थी उसकी नारी, रूप कला गुण-शील पिटारी।
सतियों में नंबर पाया, नन्दन० ।।१।।
पढ़ी पक्षि-पशुओं की भाषा, कोकशास्त्र में रुचि थी खासा।
था धार्मिक प्रेम सवाया, नन्दन० ।।२।।
सोए थे दंपति शय्या पर, पड़े कान में जंबुक के स्वर।
शीला ने ध्यान लगाया, नन्दन० ।।३।।

तर्ज—और कहीं पर जाओ !

मुर्दा एक जा रहा कोई आ जाना !
बंधे कमर में रत्न पांच कोई लेजाना ।।ध्रुवपद।।

पांच कोटि के पांच रतन हैं, मानो मेरा सत्य वचन है।
ले रत्नों को जीवन सुखी बना जाना! ।। मुर्दा० ।।१।।
शीलवती उठ तुरत सिधाई, घट ले सरितातट पर आयी।
रत्न अमोल मिले हैं, मनवा हुलसाना, मुर्दा० ।।२।।
शंका पति के दिल में छाई, नारी यह कुलटा दुखदाई।
पितृचरण में हाल रात का जतलाना, मुर्दा० ।।३।।
अब इसको पीहर पहुंचा दो, अपने घर से बला हटा दो।
चला बहू को लेकर रच झूठा बहाना, मुर्दा० ।।४।।
चतुरा समझी दिल के अंदर, लखे कुलटा पहुंचाते पीहर।
हृदय हो रहा गद्‌गद्, दुख था असमाना, मुर्दा० ।।५।।

तर्ज—जब तुम ही चले परदेश

फिर भी दिल हिम्मत धार शकुन सुखकार, निहार विचारा।
है बेशक जय-जयकारा ।।ध्रुवपद।।
बिच खेत मूंग का आया है, ससुरे ने श्रेष्ठ बताया है।
भूख मरेगा मालिक इसने उचारा, है बेशक० ।।१।।
रास्ते में सरिता आयी है, पनहीयुत बहू सिधाई है।
फिर शूर सुभट को कायर-क्लीव पुकारा, है बेशक० ।।२।।
मंदिर को नरक-समान कहा, फिर पुर को वन उपमान कहा।
तुच्छ गांव में ठहरी मान उदारा, है बेशक० ।।३।।
इतने में मामा आया है, दोनों को निज घर लाया है।
खा-पी सुख से सोकर समय गुजारा, है बेशक० ।।४।।
फिर जंगल में विश्राम लिया, ससुरे ने बड़तल शयन किया।
इसने रथ-छाया में आसन डारा, है बेशक० ।।५।।

तर्ज—राधेश्याम

इत्यादिक सब जगह बहू ने, किया सेठ जी का अपमान।
लगा सोचने सेठ बहू यह, है निश्चय दुर्गुण की खान।।
काक एक आ इतने ही में, बैठा बड़ तरुवर की डाल।
कांव-कांव कर रहा जोर से, सुन बोली शीला तत्काल ।।१।।

तर्ज — घटा घन घोर घोर

वोले मत काग-काग, मंदे हैं मेरे भाग, और कहीं पर जा-जा!
जा-जा ! और कहीं पर जा-जा ! ॥ध्रुवपद॥
करने से गीदड़ का कहना, छूट गया है घर भी।
अव यदि मानू तेरा कहना, नहिं पहुंचू पीहर भी।
करूं अव क्या मैं धन का ? न पता है इस जीवन का।
भइया ! चुप्पी खा जा, जा-जा ! और० ॥१॥
सुनी बहू की बात दूर से, सेठ सुविस्मय पाया।
उठकर फौरन निकट उसी के, आकर यों फरमाया।
सुना दे कहानी तेरी, मत कर तू शर्म मेरी।
बेटी ! दुख बतलाजा ! जा-जा ! और० ॥२॥
सुन सियाल के शब्द, नदी पर जा मणि पंचक लाई।
उसी हेतु से मुझे, आप सव ने कुलटा ठहराई।
पांचों मणि ला दिखाए, श्रेष्ठी अचंभा पाए।
समझे मति है ताजा, जा-जा ! और० ॥३॥
अव यह कौआ बोल रहा, सुवरण के चार घड़े हैं।
अभी खोद लो, इस करीर के सुनिकट डटे पड़े हैं।
सही यह मेरा गाना, मुझको खिलाओ खाना !
हूं भूखा बे अंदाजा, जा जा ! और० ॥४॥

तर्ज—धर्म पर डट जाना

सेठजी पछताए, सुन बहुवर की बात।
बड़े ही अकुलाए, सुन बहुवर की बात ॥ध्रुवपद॥
वहू है सही गुणों की खानी, हम हैं मूर्खों के अगवानी।
न गुन ओलख पाए, सुन० ॥१॥
खोदने लगे तुरत ही दौड़, मिले हैं धन के घड़े अजोड़।
सेठ विस्मय पाए, सुन० ॥२॥
काक को खाना खूब खिलाया, रथ को घर की तर्फ चलाया।
अजब दौलत लाये, सुन० ॥३॥
पिछली वातों का भी भेद, वताया बहुवर ने तज खेद।
श्वसुरजी चकराए, सुन० ॥४॥

कृपक[1] था कर्जदार असमान, नजर[2] नहिं आता था जल स्थान।
पीठ पर शर[3] खाए, सुन०॥५॥
देवल था चोरों का स्थान, शहर में थी न जरा पहचान।
वहां[4] मामे गाए, सुन०॥६॥
वृक्ष पर बैठा था एक काग, वींठ करने से क्लेश अथाग।
विज्ञ कहते आए, सुन०॥७॥

तर्ज—पिया घर आजा

मुक्त कंठ से रत्नाकर, महिमा वहू की गाता,
निज घर आया-आया, निज घर-आया ॥ध्रुवपद॥
शीलवती को देख अजित भभकाया है, भभकाया है।
वापस क्यों ले आए मुख यों गाया है, गाया है।
हाल सुनाया श्रेष्ठी ने,
गुस्सा अजित का सुनते-सुनते पलाया-आया, निज०॥१॥
अजित सेन ने आ अपराध खमाया है, खमाया है।
साथ सती के अपना हृदय मिलाया है, मिलाया है।
शीलवती की मेधा[5] से,
सब मंत्रियों में मुखिया अजित कहाया-आया, निज०॥२॥
राजा ने दुश्मन पर किया प्रयान है, प्रयान है।
घर में आया लेने विदा दिवान है, दिवान है।
कमल दिया एक शीला ने,
गुन भी बताओ! पति ने, प्रश्न उठाया-आया, निज०॥३॥
स्वामिन्! जब तक मेरा अडोल है, अडोल है।
तब तक इसका नहीं बदलेगा डोल है, डोल है।

---

१. मूंग के खेत वाला अत्यधिक कर्जदार था अतः भूखा मरेगा, ऐसे कहा।
२. जल अधिक गहरा था अतः जूतियां नहीं निकालीं।
३. सुभट के पीठ पर तीर लगे हुए थे अतः कायर कहा।
४. गांव में।
५. शीलवती के बुद्धिबल से अजित ने राजा के अनेक जटिल प्रश्नों का समाधान किया, अतः मुख्यमंत्री बना।

प्रमुदित मन हो मंत्रीश्वर,
लेकर कमल को फौरन, लड़ने सिधाया-आया, निज ।।४।।
कमल देखकर पूछ लिया नगरीश ने, नगरीश ने ।
कह दिया सच्चा किस्सा सब मंत्रीश ने, मंत्रीश ने ।
मिल राजा से सचिव कई,
भ्रष्ट सती को करने द्वन्द्व मचाया-आया, निज०।।५।।

तर्ज—अंखियां मिलाके

शहर में आके, दूतिका बुलाके, भेजी सती-घर ।।ध्रुवपद।।
दूती ने समाचार सब, आकर के स्पष्ट कहे हैं ।
मंत्रीश्वर चार तेरे रूप पर, ललचा रहे हैं, शहर०।।१।।
सुन शीला समझ गयी है, ईर्ष्यावश हैं ये आए ।
समुचित अवसर लख वासर पांचवें, घर पर बुलाए, शहर०।।२।।
खुदवाया गहरा खड्डा, उस पर पल्यंक बिछाया ।
छिपते ही सूर्य पांचवां सज्ज हो, एक मंत्री आया, शहर०।।३।।
देकर सत्कार सती ने, उसको पल्यंक बिठाया ।
लेकिन वह बिना मढ़ा था, पापी खड्डे में सिधाया, शहर०।।४।।
चारों प्रहरों में चारों पहुंचे खड्डे के अन्दर ।
खाना और जाना उस ही स्थान में, दुर्गन्ध भयंकर, शहर०।।५।।

तर्ज—अय बाबुजी

दुःख भीषण नरक तुल्य पाए हैं, चारों ही ने ।
छह महीने वहीं पर बिताए हैं, चारों ही ने ।।ध्रुवपद।।
करके विजय भूप जब लौट आए,
हालात पिछले सती ने सुनाए ।
सुन अजित जी न फूले समाए हैं, चारों०।।१।।
चारों ही बाहर समय पा निकाले,
बढ़ी दाढ़ी-मूंछें हुए जिस्म काले ।
फूल केशों में फिर ला गुंथाए हैं, चारों० ।।२।।
ला लाल चंदन बदन पर पुताया,
चारों को यक्षों के सदृश बनाया ।
फिर नरेश्वर भी खाने बुलाए हैं, चारों० ।।३।।

तर्ज—चले आना हमारे अंगना

मनुहार करके, दिल प्यार धरके,
खाना खाने पधारे महराज ॥ध्रुवपद॥
रक्खा है कमरे में खाना तैयार कर,
दिया हुक्म चारों को फिर आंख लाल कर-२ ।
चुपचाप रहना, हर्फ न एक कहना, खाना०॥१॥
महाराज जो कुछ मांगे वदन से,
चुपके-सी ला शीघ्र देना सदन से-२ ।
वहीं कैद करना, होगी खूब स्मरना ! खाना०॥२॥
भयभ्रांत चारों चुपचाप फिर रहे ।
खाना रसीला ला-ला वितर रहे-२ ।
रूप देख इनके, महाराज चमके, खाना०॥३॥
किस्मत अजित की कितनी है भारी,
चुपचाप करते सुर सब तैयारी-२।
इनको मांग लूंगा मैं, हर्गिज नहिं छोड़ूंगा मैं, खाना०॥४॥
खाना खिला कर बोला अजित फिर,
जो भी हो मर्जी करूं भेंट सत्वर-२ ।
चारों यक्ष दीजिए ! राजन् ! अब ही लीजिए ! खाना०॥५॥
पेटी में बन्द कर लाया दरबार में,
फैली है बात यह घर-घर बाजार में-२।
पुरजन आए सुनके, मन में विस्मित बन के, खाना०॥३॥
जटा-जूट धारी खड़े चारों आकर,
उत्सुक नगर जन रहे देख फिर-फिर-२ ।
रहे पूछ नरवर, इनसे सारा व्यतिकर, खाना ॥६॥

तर्ज—हीरा मिसरी का

हो रहे शर्मिन्दे, चारों चुप्पी मार ॥ध्रुवपद॥
राजा ने फिर-फिर बोलाए, किन्तु जवाब न बिलकुल आए ।
इत स्मरे हैं मंत्री चार, हो रहे०॥१॥
घरवालों से पता लगाया, मास हुए षट् पता न पाया ।
बोले सभी पुकार, हो रहे०॥२॥

आये थे वे सती-सताने, सोचा नृप ने हों न फंसाने।
देखा दृष्टि पसार, हो रहे०॥३॥
ध्यान लगाते ही पहचाने, पूछा फिर क्या रंग रचाने?
बोले हो लाचार, हो रहे०॥४॥
धन्य-धन्य! यह शीलवती है, नारी रूपे सरस्वती है।
है न गुणों का पार, हो रहे०॥५॥
हमने जैसे पाप कमाए, हाथों-हाथ यहीं फल पाए।
बात कही विस्तार, हो रहे०॥६॥
फिर सब ही ने माफी मांगी, जीवन भर परनारी त्यागी।
लिया धर्म दिल धार, हो रहे०॥७॥

तर्ज—राधेश्याम

करते उग्र विहार इधर, दमघोष महामुनि आए हैं।
राजा और प्रजाजन सारे, दर्शन कर हुलसाए हैं॥
मुनिवर ने उपदेश दिया, व्रत-अव्रत का विस्तार किया।
व्रतमय जीवन घड़ने का, रच अद्भुत युक्ति प्रचार किया॥१॥
अजित सेन और शीलवती ने, समकित युत व्रत धारे हैं।
शुद्ध पालकर ब्रह्म स्वर्ग में, डेरे अपने डाले हैं।
सुन यह वर्णन भव्यजनो! सतियों से ईर्ष्या मत करना!
'धन मुनि' कहता गुरुकृपया धर ब्रह्मचर्य भवजल तरना[1]!॥२॥

---

१. वि० सं० २००३ आषाढ़ वदी ८, विलापारला (बम्बई)।

मणि बाईसवां — संतोषी रत्नसार

रत्नसार ने गुरुदेव से राजा नहीं बनूंगा—यह नियम लिया। परीक्षार्थ देव आया एवं मरणांत उपसर्ग किया लेकिन रत्नसार ने राज्य लेना स्वीकार नहीं किया। देव ने प्रसन्न होकर कुंवर को सीमंधर भगवान के दर्शन करवाए। वर्णन पढ़कर संतोषी बनिए !

तर्ज—कलदार रुपइया चांदी का

दिल सोच समझ कर देख लिया, संतोषी प्राणी विरले हैं ।।ध्रुवपद।।
राजा हो चाहे महाराजा, हो शहनशाह या सुरराजा।
सब के लालच की आग लगी, संतोषी० ।।१।।
कई कहते हम हैं संतोषी, लेकिन उनको मिलता ही नहीं।
मिलने पर त्याग करे ऐसे, संतोषी० ।।२।।
परिमाण कई कर लेते हैं, लेकिन जब धन आ मिलता है।
उस वक्त सुदृढ़ रहने वाले, संतोषी० ।।३।।

तर्ज—मैं चुपके-चुपके रोती

सुन लो तुम ध्यान लगा के रे, संतोषी रत्नसार।
फिर देखो दिल अजमा के रे, हो जाए बेड़ा पार ।।ध्रुवपद।।
नगरी रत्न विशाला, नृप समरसिंह धृतिवाला।
वसुसार सेठ था आला रे, संतोषी० ।।१।।
रत्नसार सुतनामी, गुरु समवसरे गुणधामी।
सुन गया रत्न हितकामी रे, संतोषी० ।।२।।
गुरु ने ज्ञान सुनाया, संतोष धर्म समझाया।
वैराग्य रत्न को आया रे, संतोषी० ।।३।।

तर्ज—राधेश्याम

राज्य न लेने का सविनय उठ, नियम रत्न ने धारा है।
मित्रों युत फिर वन में आकर, किन्नर-युगल निहारा है ।।१।।

हयमुख देख हास्य में बोला, इनकी बुरी कमाई है।
वे बोले धिक्कार तुझे, विश्वास न तेरा राई है ॥२॥
तेरा बाप एक हय लाया, जो न तुझे दिखलाया है।
किन्नरवाणी ने कुमार को, बेहद दुखी बनाया है ॥३॥

तर्ज—अखियां मिला के

निज घर आके, मनवा रिसाके, सो गया रतना ॥ध्रुवपद॥
पाते ही खबर पिता ने, प्राण प्रिय पुत्र मनाया।
घोड़ा दे दिया तुरत ही रत्न तो, बाहर सिधाया, निज० ॥१॥
घोड़ा था वक्रशिक्षित, दौड़ा है खूब दपट से।
पालित तोता[1] भी पीछे आ गया, उड़ता झपट से, निज० ॥२॥
वन में से तापसनन्दन, इतने में सम्मुख आया।
लाया फल सरस मधुर-मनुहार कर, खाना खिलाया, निज० ॥३॥
तोते ने पूछा कैसे, बचपन में संयम भाई!
गद्‌गद हो तापससुत कहने लगा, ज्यों ही दिल चाही, निज० ॥४॥

तर्ज—अय बाबु जी

तीव्र अन्धड़ अकस्मात आया रे, इतने ही में।
घोर अन्धेरे जंगल में छाया रे, इतने ही में ॥ध्रुवपद॥
अन्धड़ ने तापस का नन्दन उड़ाया,
खोजा रतन ने नहीं किन्तु पाया।
राजकन्या थी तोते ने गाया रे, इतने० ॥१॥
करता खबर यक्षमन्दिर में आया,
कन्या को इक मोर इतने में लाया।
रत्न के दिल न विस्मय समाया रे, इतने० ॥२॥
क्या नाम तेरा किसकी है जाई?
चढ़ मोर पर चल कहां से तू आई?
हाल कन्या ने सच्चा सुनाया रे, इतने० ॥३॥
कनकपुर कनककेतु राजा कहाए,
तिलका-अशोका युगल कन्यकायें।
प्रेम दोनों का अद्‌भुत कहाया रे, इतने० ॥४॥

[1] तोता मनुष्य की वाणी बोलता था।

तर्ज—कलदार रुपया चांदी का

एक दिन दोनों ही झूल रहीं,
कर क्रीड़ा मन में फूल रहीं ।।ध्रुवपद।।
आ निकला इत एक विद्याधर छोटी को तुरन्त चला अपहर ।
अब होश बड़ी भी भूल गई, इक० ।।१।।
फिर उठ देवी का स्मरण किया, कुलदेवी ने हो प्रगट कहा ।
इतनी चिन्ता की बात नहीं, इक० ।।२।।
तिलके ! धर धैर्य तीसवें दिन, आएगी वह जहां यक्षसदन ।
दोनों का पति भी होगा वहीं, इक० ।।३।।
कहकर यों दिव्य मयूर दिया, मैंने यहां आना शुरू किया ।
है दिवस तीसवां आज सही, एक० ।।४।।

तर्ज—बाबा लंगोटी वाला

इतने में फड़-फड़ करती, हंसी एक आ रही है ।।ध्रुवपद।।
रक्षा अब करिये साईं ! बच कर मैं ज्यों-त्यों आई ।
रतने ने गोद बिठाई, हंसी हुलसा रही है, इतने० ।।१।।
समयांतर वन दशकंधर, आ बोला इक विद्याधर ।
हंसी दे ! वरना तेरी जिन्दगानी जा रही है, इतने० ।।२।।

तर्ज—राधेश्याम

कन्यादिक घबराए लेकिन, थान रत्न-मन डर-भय लेश ।
केकी ने शस्त्रास्त्र दिए, बस ! सज्ज हो गया है रत्नेश ।।
खग ने भीषण रूप रचाकर, भारी द्वन्द्व मचाया है ।
पुण्य प्रबल थे रत्न कुंवर ने आखिर मार भगाया है ।।१।।

तर्ज—पिया घर आ जा !

अब हंसी से पूछा है,
हंसी ने नरवाणी में, हाल सुनाया सच्चा हाल सुनाया ।।ध्रुवपद।।
झूल रही थीं झूले में हम एक दिन-२ ।
तरुणीमृगांक खगेश्वर आया, लंपट बन, लंपट बन ।
मुझे उड़ा कर दौड़ गया,
अपनी बनाने बेहद लालच दिखाया, सच्चा० ।।१।।

लेकिन मैंने उत्तर बिल्कुल नहीं दिया, नहीं दिया।
कामी ने तापस का रूप बना दिया, बना दिया।
बात कर रही थी तुमसे,
पापी ने आकर बिच में, मुझको उड़ाया, सच्चा० ।।२।।
बोला, सुभगे! उससे तो तू बोल रही, बोल रही।
फिर मेरे से अन्तर क्यों नहिं खोल रही, खोल रही।
मैंने उत्तर नहीं दिया,
हंसी बना ही पिंजर वासा दिलाया, सच्चा० ।।३।।

तर्ज—हीरा मिसरी का

रानी रुष्ट हुई, मुझको वहां विलोक, रानी ।।ध्रुवपद।।
एक दिन अच्छा अवसर पाकर, खोला उसने मेरा पिंजर।
मैं उड़ आई बिन रोक-रानी० ।।१।।
अब मैं प्रभु का आश्रय पाई, बड़ी बहन भी मिली यहां ही।
हुआ दुःख से मोख, रानी० ।।२।।
मोर देव ने मूल रूप कर, तुरत अशोका कर दी हाजिर।
मिल गई तिलका चौंक, रानी० ।।३।।
प्रमुदितमन कुलदेवी आई, खबर पिताजी ने भी पाई।
आए परिजन लोक-रानी० ।।४।।

तर्ज—श्री महावीर चरण में

हो गई धूम धाम से शादी, अब नगरी में आया है।
घर-घर में आनन्द-मंगल छाया है, हो गई ।।ध्रुवपद।।
मंदिर मन भाया, राजा की ओर से पाया,
शुक सुवरण-पंजर ठाया।
ले पंजर तस्कर एक पलाया है, हो गई० ।।१।।
सुकुमार सिधाया, पर चोर हाथ नहिं आया,
ले तोता नभ में धाया,
इत नगर अनूठा वन में पाया है, हो गई० ।।२।।
अनपार पड़ा है, हाटों में माल भरा है,
नर किंतु न नजर चढ़ा है।
पल्यंक सुखद महलों में पाया है, हो गई० ।।३।।

लेट लागई, छिन भर में निद्रा आई,
इत राक्षस इक दुखदाई ।
आया और बेहद क्रोध दिखाया है, हो गई० ।।४।।

तर्ज—चले आना हमारे अंगना

बोला जोश भरके, दिल रोष धर के,
क्यों तू सोया आ मेरे घर में ।।ध्रुवपद।।
उठ शीघ्र अपना रास्ता पकड़ले,
ले शस्त्र वरना मेरे से लड़ले-२ ।
रत्न कुमार उठ के, बोला खूब डट के, क्यों० ।।१।।
थी नींद कच्ची तूने उठाया,
सोने का आनन्द मेरा गंवाया-२।
अब घी धोकर जल में, मालिश कर पदतल में, क्यों० ।।२।।
राक्षस के दिल में विस्मय हुआ है,
लाया है घी और मलने लगा है-२।
सोया रतनकुमार, पुण्यों की बहार, क्यों ।।३।।
करवाके मालिश थोड़ी-सी देर फिर,
कहने लगा मांग वरदान खोल दिल-२ ।
देना है जो वरदान, ले ले राज्य है महान क्यों० ।।४।।
सुनते ही रत्नसार चक्कर में पड़ गया,
अब क्या करूं मेरा व्रत आके अड़ गया-२ ।
लेकिन तोड़ूंगा नहीं, मन को मोड़ूंगा सही, क्यों० ।।५।।

तर्ज—रहमत के बादल छाये

नहिं लेता राज्य मैं, कुछ और मांग ले भाई ! ।।ध्रुवपद।।
मैंने इसका त्याग किया है, पास सुगुरु के नियम लिया है ।
न तजूंगा दृढ़ता ठाई, नहिं० ।।१।।
सुनकर दैत्य क्रोध में आया, पकड़ रत्न को खूब घुमाया ।
फिर आंखें लाल दिखाई, नहिं० ।।२।।
बोला राज्य ग्रहण कर वरना, आज समझ ले अपना मरना ।
मत फर्क जान इक राई, नहिं० ।।३।।

मरना उत्तम है व्रत रखकर, क्या जीने में व्रत खंडित कर।
रतन ने साफ सुनाई, नहिं० ॥४॥

तर्ज—सारी दुनियां में

बेधड़क रत्न का यह उच्चरना हुआ,
खेल राक्षस का फौरन बदलना हुआ ॥ध्रुवपद॥
रूप सुंदर बना करके आया तुरत,
शीश पैरों में धर यों सुनाया तुरत।
माफ कर दुःख का जो वितरना हुआ-बेधड़क० ॥१॥
अयि रतनसार ! दुनियां में तू धन्य है,
आज तेरे-सा मानव नहीं अन्य है।
दोनो इन्द्रों का काफी झगड़ना हुआ, बेधड़क० ॥२॥
हेतु झगड़े का था मध्यवर्ती विमान,
युद्ध से जब हुए इन्द्र दोनों हैरान।
तीसरे इन्द्र का तब उतरना हुआ, बेधड़क० ॥३॥
है सुधर्मेन्द्र के सर्व दक्षिण विमान,
है ईशानेन्द्र के त्यों ही उत्तर विमान।
मध्य दोनों का यों न्याय करना हुआ, बेधड़क ॥४॥

तर्ज—मेरा रंग दे तिरंगी चोला

लालच का काम करारा, सुरपति[1] ने प्रगट पुकारा ॥ध्रुवपद॥
देखो एक विमान के खातिर, लड़-लड़ हारे उभय सुरेश्वर।
दिल से सब न्याय विसारा, लालच० ॥१॥
रतनसार सुकुमार अजब है, दिल उसके संतोष गजब है।
नहिं लेता राज्य उदारा, लालच० ॥२॥
शंकाशील हुआ मन मेरा, किया परीक्षण आकर तेरा।
धन-धन ! तू नरसरदारा, लालच० ॥३॥
यों कह सौंपा शुकका पिंजर, मांग-मांग वर बोला सुरवर।
सुन बोला यों सुकुमारा, लालच० ॥४॥

---

१. सनत्कुमारेन्द्र।

तर्ज—तन नहीं छूता कोई

दर्श सीमंधर प्रभु के चाहता हूं देववर !
कर महर करवाइए! वर मैं नहीं चाहता दिगर ॥ध्रुवपद॥
देव ने तत्काल लाकर, दर्श करवाये सुखद।
मर्म सच्चे धर्म का, प्रभु ने बताया कर महर, दर्श० ॥१॥
असंयम जीवन-मरन की, चाह करना पाप है।
संयमी जीवन-मरन में, धर्म होता है प्रवर, दर्श० ॥२॥
धर्म होता है न धन से, त्याग से होता सदा।
त्याग कुछ करलो तुम्हें, तरना है भवजल से अगर, दर्श० ॥३॥
रत्न ने श्रावक धरम, धारण किया भगवान से।
आ गया ससुराल में फिर आ गया अपने शहर, दर्श० ॥४॥
सुख सभी संसार के, वह भोगता माध्यस्थ्य से।
पाल श्रावकधर्म आखिर, पा गया पदवी अमर, दर्श० ॥५॥

तर्ज—राधेश्याम

फिर नरतन पा संयम लेकर, पायेगा पद अजर-अमर।
अब इसके संतोषी जीवन पर, थोड़ी-सी डाल नजर।
संतोषी बन जाओ भव्यों ! गुरु-कृपया 'धन मुनि' गाता।
दो हजार चार संवत, सावन वदी चौदस सुखसाता[1] ॥१॥

---

१. वार्डन रोड (बम्बई)।

मणि तेईसहवां सत्य का चमत्कार

सत्य के प्रभाव से रत्नों से भरी पेटियां देखकर भी राजा नहीं समझ सका एवं चोर को नहीं पकड़ सका। आखिर भेद खुलने पर उसे प्रधानमंत्री बनाया। चोरी छूटी एवं व्रतधारी चोर स्वर्गगामी हुआ। कहानी सत्य की महिमा बढ़ाने वाली है।

तर्ज—आ जाओ एक बार

धारोजी ! धारोजी धर प्यार, सत्य सुख कारी है ।।ध्रुवपद।।

सत्य दुर्गुणों का क्षय करता, दुर्व्यसनी भी इससे तरता।
वरता जय-जयकार, सत्य० ।।१।।

नगर वसंत परम सुखकारी, शत्रुदमन नृप मंत्री भारी।
मतिसागर सुविचार, सत्य० ।।२।।

धनदत्त सेठ तनय मणिशेखर, बना बुरी संगति से तस्कर।
बोला जनक विचार, सत्य० ।।३।।

नगर सेठ हम आज नगर में, फिर यह चोरी अपने घर में।
है अपयशदातार, सत्य० ।।४।।

तर्ज—रहमत के बादल छाए

समझाया सेठ ने, लेकिन सुत राह न आया ।।ध्रुवपद।।

जो भी हुक्म करो कर सकता, किन्तु न चोरी से मुड़ सकता।
सुन सेठ महादुख पाया, समझाया०।।१।।

मंत्रीश्वर की सेवा करना, प्रतिदिन मेरी शिक्षा स्मरना !
कह यों परलोक सिधाया, समझाया०।।२।।

तात कथन से सेवा करता, किन्तु न चोरी से वह टलता।
हा हा रव पुर छाया, समझाया० ।।३।।

मंत्री ने काफी समझाया, लेकिन वह तो समझ न पाया।
तब पंथ अपर अपनाया, समझाया०॥४॥

तर्ज—पिया घर आजा !

भाग्य-योग से नगरी में, ग्रामानुग्राम विचरते,
गुरुराज आए-आए, गुरुराज आए ॥ध्रुवपद॥
साथ नृपति के मंत्री वंदन आया है, आया है।
मौका लख मणिशेखर को भी लाया है, लाया है।
कर दर्शन सब बैठे हैं,
उपदेश सुनने गुरु का, मन हुलसाए-आए, गुरुराज०॥१॥
नश्वर भोग-विलास सुगुरु ने गाये हैं, गाये हैं।
हिंसादिक भव भ्रमण-हेतु दिखलाए हैं, दिखलाए हैं।
फिर चोरी पर उतर गए,
चोरी के दुर्गुण काफी कहकर सुनाए-आए, गुरुराज०॥२॥
कहा सचिव ने चोरी का अब त्याग कर, त्याग कर !
और कहो सो कर लूं, यह मत कहना फिर, कहना फिर।
अच्छा ! झूठ छोड़ दे तू,
त्याग किया है, मंत्री मन सुख पाए-आए, गुरुराज ॥३॥
रात समय वह चोरी प्रतिदिन कर रहा, कर रहा।
नगर सेठ की पदवी दिन में धर रहा, धर रहा।
समाचार सब चोरी के,
पुरवासियों ने जाकर, नृप को सुनाए-आए गुरुराज० ॥४॥

तर्ज—अखियां मिला के

बोला है नरवर, मैं खुद फिर कर, खबर करूंगा ॥ध्रुवपद॥
जाओ तुम सुख से सोओ, न करो दिल चिन्ता तिलभर।
आए सब खुश हो इत प्रच्छन्न[1] बन, निशि चला नरेश्वर, बोला०॥१॥
मणिशेखर चोरी करने, निकला दो साथ अनुचर।
जाता है राजमहल में आ मिला, रास्ते में नरवर, बोला०॥२॥

---

१. रूप बदल कर।

रोके हैं फौरन पूछा, जाते हो कहां ? कौन तुम ?
जाते है चोरी करने, चोर हैं सुन भाई ! सब हम, बोला०॥३॥

तर्ज—और कहीं पर जाओ !

कहां करो गे चोरी, भैया ! बतलाओ !
सच्ची बात सुनाओ शंका मत लाओ ! ॥ध्रुवपद॥
राजमहल में जाते हैं मिल, मणिशेखर यों बोला डटकर ।
पागल समझ कहा नृप ने, जल्दी जाओ, कहां ॥१॥
तीनों राजमहल में आए, रखवाले सब सोए पाए ।
चमत्कार यह सच्चाई का दरसाओ ! कहां०॥२॥

तर्ज—चले आना हमारे अंगना

मंत्र बोल करके, जल ढोल कर के,
ताले तोड़े हैं एक छिन में ।।ध्रुवपद॥
खोले हैं द्वार झट आए हैं अंदर,
पाया खजाने में काफी जवाहर—२।
अद्भुत रत्नों से भरी, तीन पेटियां पड़ीं-ताले०॥१॥
दो पेटियां दो चरों ने उठाई,
आते समय फिर मिला नृप सिपाही—२।
पूछा कौन हो कहो ! तीनों चोर हैं अहो ! ताले०॥२॥
गए थे कहां ? चोरी करने कहां पर ?
राजा के घर, लाए क्या ? पेटियां भर—२।
क्या हो तीनों वे ही तुम? हां जी ! बिलकुल वे ही हम, ताले०॥३॥
ले जाओ जल्दी न करो हैरान तुम,
बस ! दौड़ आए हैं तीनों ही एक दम—२।
रख दी पेटियां उदार, सोया सेठ का कुमार, ताले०॥४॥

दोहा

घूमा सारे शहर में, बनकर नृपति चकोर ।
आखिर आया महल में, मिला न कोई चोर ॥१॥

तर्ज—कलदार रुपइया चांदी का

अब रात गयी रवि उदय हुआ,
मिल कोषाध्यक्षक आए हैं ।।ध्रुवपद।।
यह रंग देख सब दंग हुए, दिल पैदा लोभ तरंग हुए ।
मिल पेटी एक उड़ाई है, फिर नृप-सम्मुख चिल्लाए हैं, अब० ।।१।।
सुन राजा ने हो चकित कहा, अरे ! चोरों ने तो गजब किया ।
पाकर के भी न पकड़ पाया, दे चकमा हाय ! सिधाए हैं, अब० ।।२।।
सब लोग हंसेंगे दे ताली, कैसे होगी पुर-रखवाली ।
इतने में मंत्रीश्वर आया, सब समाचार बतलाए हैं, अब० ।।३।।
बोला मंत्री मत फिक्र धरें, पुर-जनता को आह्वान करें !
बोलेगा चोर न झूठ जरा, महाराज अचंभा पाये हैं, अब० ।।४।।

तर्ज—बाबा लंगोटी वाला

पड़हा फिरवाया पुरजन, खुश-खुश हो आ रहे हैं ।।ध्रुवपद।।
मणिशेखर भी सज-धजकर, पहुंचा है गाड़ी चढ़कर ।
इत नृप से मुजरा करने, पुर वासी जा रहे हैं, पड़हा० ।।१।।
महाराजा पूछ रहा है, कहिए व्यापार क्या है ?
यत्किंचित नगर-निवासी, मुख से बतला रहे हैं, पड़हा० ।।२।।
पुर वासी प्राय गए हैं, मणिशेखर पेश हुए हैं ।
सैनों से महाराज को, मंत्री समझा रहे हैं, पड़हा० ।।३।।
महिपति ने प्रश्न किया है, श्रेष्ठिन् ! व्यापार क्या है ?
करता हूं चोरी स्वामिन् ! मणिशेखर गा रहे हैं, पड़हा० ।।४।।

दोहा

नृप ने पूछा वर्ष में, चोरी इक-दो-चार ।
करते हो या और कम? नहीं-नहीं ! बहुवार ।।१।।

तर्ज—तन नहीं छूता कोई

कल भी मैंने आप का, फाड़ा प्रभो ! भंडार है ।
जवाहर की पेटियां दो, सही लाया सार है ।।ध्रुवपद।।
चौंक कर महाराज बोले, क्या तुम्हीं थे रात जो ।

जाते-आते थे मिन्ने, जी हां ! न संशय तार है, कल० ॥१॥
जो भी चाहें दंड दें, अब हूं मैं हाजिर आपके।
हो गया खुश देख इसका, सत्य नर सरदार हैं, कल० ॥२॥
कहा जाओ आज तो घर, कल बुलाऊंगा तुम्हें।
आ गए घर सेठ, नृप के रोष का न शुमार है, कल० ॥३॥
बुला कोषाध्यक्षकों से, प्रश्न राजा ने किया।
गयी कितनी पेटियां ? थीं तीन दुःख अपार है, कल० ॥४॥

तर्ज—सुना दे—३ किसना !

निकाली, निकाली, निकाली तलवार!
यह सुनते ही राजा ने, निकाली तलवार ॥ध्रुवपद॥
सच बोलो ! बोला डटकर, वरना अब उड़ता है सिर-२।
डर के मारे हो गयी है, दो की तुरत पुकार, यह० ॥१॥
करवा कर मुंह को काला, सबको दिया देश निकाला-२।
मणिशेखर को इज्जत से बुलाया धर प्यार, यह० ॥२॥
चोरी का त्याग करो अब, मेरा वच शीश धरो अब—२!
राजन् ! हूं असमर्थ, हो गया साफ-साफ इन्कार-यह० ॥३॥
सच्चाई से खुश होकर, मंत्रीपद सौंपा सत्वर—२।
अब चोरी नहिं कर सकता, रहता है काम अपार, यह० ॥४॥
कालांतर सद्गुरु आए, मंत्री-नृप वंदन धाए—२।
गृही-धर्म समझाया गुरु ने, परिषद में सुखकार यह० ॥५॥

तर्ज—राधेश्याम

मणिशेखर ने चोरी छोड़ी, बारह व्रत धारे हैं फिर।
शुद्ध पाल कर स्वर्ग सिधाया, जन्मांतर लेगा शिवपुर।
सुनकर सत्य धर्म की महिमा, झूठ वचन का कर लो नेम।
सद्गुरु-कृपया 'धन मुनि'' कहता, पाओगे तुम अविचल क्षेम

मणि चौबीसवां — पतित का उत्थान

अभिमान वश लब्धि बल से नन्दिषेण मुनि ने सोनइयों की वृष्टि की। वेश्या ने उसे मोहित किया। गृहस्थ बनते समय देवी के कहने से उसने प्रतिदिन दस मनुष्यों को समझाने का नियम लिया। बारह वर्षों के बाद वह पतित मुनि पुनः संयमी बनकर मुक्ति को प्राप्त हुआ। यह इसी नियम का प्रभाव था।

तर्ज—कलदार रुपइया चांदी का

अभिमान डुबाने वाला है, और नियम तिराने वाला है ।।ध्रुवपद।।
जिसे मान ने गिरा दिया, अहो! उसे नियम ने पार किया।
यहां वर्णन इक रस वाला है-अभिमान० ।।१।।
राजगृह शहर मनोहर है, नीतिप्रिय श्रेणिक नरवर है।
सुत नंदिषेण रतिवाला है, अभिमान० ।।२।।

तर्ज—जमाना रंग बदलता हैं

पधारे वर्धमान भगवान-२।
महाराजादिक वन्दन आए, पाए सुख असमान, पधारे० ।।ध्रुवपद।।
है पानी का बुद-बुदा, यह जीना क्षण वार।
क्यों इसके विश्वास पर बैठे हो धर्म विसार।
शीश पर काल खड़ा शरतान, पधारे० ।।१।।
मानव तन ही मोक्ष की, है केवल एक राह।
धर्म करो भवि प्राणियो! न रहो बेपरवाह।
सुअवसर फिर-फिर मिल सकता न, पधारे० ।।२।।
जनता ने काफी लिए, प्रभु से प्रत्याख्यान।
नन्दिषेण सज्जित हुआ, संयम हित सुविधान।
हुआ है देवो का फरमान, पधारे० ।।३।।

तर्ज—तुमको लाखों धिक्कार

मत ले! संयम भार—२।
करले जरा विचार-मत ले! ०॥ध्रुवपद॥

भोगावली कर्म है ज्यादा, संयम में आएगा बाधा।
किन्तु न रुका कुमार, मत ले०! ॥१॥

पूछ पिता से ले ली दीक्षा, किया घोर तप अजब तितिक्षा।
बना लब्धिभंडार-मत ले! ० ॥२॥

एकाकी प्रतिमाधर मुनिवर, भिक्षा लेने फिर रहा घर-घर।
आया वेश्या द्वार-मत ले!० ॥३॥

खबर नहीं थी ऊपर आया, पूछा,' तब वेश्या ने गाया।
धन हो तो तैयार मत ले! ॥४॥

तर्ज—तू है प्रान पियारो म्हारो

वेश्या की सुन वानी मुनि के, मन आया अभिमान-मान।
जाना इसने रंक मुझे बस! तृण तोड़ा धर ध्यान-ध्यान ॥ध्रुवपद॥

सोनइयों की वृष्टि हुई है. सादे बारह कोटि सही है।
मुनि ने किया प्रयान-यान वेश्या० ॥१॥

चमत्कार लख द्वार लगा कर, बोली वेश्या शीश झुकाकर।
तुम हो जीवन-प्रान, वेश्या० ॥२॥

गुनह हुआ माफी बकसाओ! दयादृष्टि धर अन्दर आओ!
विलसो सौख्य सुजान-जान, वेश्या० ॥३॥

तर्ज—राधेश्याम

वरना यह धन-माल उठालो! मैं न रखूंगी इक पाई।
बड़े तपस्वी मुनि को ठगने, युक्ति अजब यों दिखलाई॥
बुरा नतीजा अहंकार का, आखिर भ्रष्ट हो गया है।
तज संयम बनकर संसारी, वेश्या के घर रह गया है॥१॥

दोहा

देवी के उपदेश से, लिया अभिग्रह धार।
दस जन प्रतिबोधे विना, भोजन का परिहार०॥१॥

तर्ज—अखियां मिलाके

नियम की ताकत, अजब लियाकत, अब तुम देखो ! ॥ध्रुवपद॥
करता सुख भोग मुनि वह, वेश्या से नित मन माना।
कर उद्यम दस-दस को समझा रहा, पहले प्रण ठाना-नियम०॥१॥
वीते हैं वर्ष बारह, अथ एक दिन नौ समझाए।
दसवां सोनार मिला है, ज्ञान के हद हेतु लगाए, नियम०॥२॥
लेकिन नहिं समझा सोनी, मुख से यों कहता फिर-फिर।
पंडितजी खा रहे खुद वेगुन, जग को ज्ञान सुनाकर,नियम०॥३॥
भैया ! अब्रह्मचर्य में, कहता तू पाप महा है।
वेश्या के साथ हो फिर मुग्ध, क्यों ललचा रहा है, नियम०॥४॥

तर्ज—पिया घर आजा

आ इत वेश्या बोली है, होता है खाना ठंडा,
पिया ! झट आजा-आजा, पिया ! ॥ध्रुवपद॥
गर्म-गर्म खाने में आनन्द आता है, आता है।
समझा देना इसको फिर कहां जाता है, जाता है।
चल प्यारी ! मैं आता हूं, आकर परोसा उसने,
भोजन सु ताजा-आजा,पिया ! ॥१॥
किन्तु पिया तो समझाने में जुड़ गया, जुड़ गया।
पड़ा-पड़ा वह खाना विलकुल ठर गया, ठर गया।
फिर से गर्म बनाया है, आयी बुलाने प्रियतम,
बोला तू जा-जा ! आ जा, पिया ! ॥२॥

तर्ज—रहमत के वादल छाए

अव ही में आ रहा, इस सोनी को समझा के॥ ध्रुवपद॥
नव तो समझ गए हैं प्यारी ! इसकी भी अव है तैयारी।
कहा वेश्या ने अकुला के, अव०॥१॥

जड़मति है इसको परिहर दो, दसवां नंबर खुद का धर दो!
झट खालो ! खाना आके, अब०॥२॥
यों कहते ही समझ गया है, बस ! उठ करके विदा हुआ है ।
रही वेश्या मन बिलखाके, अब०॥३॥
आकर प्रभु-पद शीश झुकाया, संयम लेकर शिवपद पाया ।
कर्मों के वृंद खपा के, अब०॥४॥

तर्ज—राधेश्याम

एक नियम ने देखो भव्यो ! डूबे मुनि को तार दिया ।
सुन यह वर्णन नियम धरो तुम ! 'धन मुनि' ने उपदेश किया ॥
दो हजार चार शुभ संवत, भाद्र कृष्ण छठ तिथि आई ।
वार्डन रोड बंबई में, भक्तों की श्रद्धा मन भाई ॥१॥

मणि पचीसवां — भवितव्यता

रावण ने अपनी मौत पूछी, ज्योतिषी ने लक्ष्मण के हाथ से कही। रावण ने विवाद किया। परीक्षार्थ पंडित ने एक राज कुंवर एवं राज कन्या की सतरहवें दिन शादी बतलाई। रावण ने दैविक प्रयोग से उसे टालना चाहा लेकिन शादी होकर ही रही।

तर्ज—टूट गया इक तारा

रेखा न टरे टारी, करम की रेखा न टरे टारी।
यत्न करोड़ों कोई करे पर, भावी का बल भारी, रेखा ॥ध्रुवपद॥
लंका नगरी रावण राजा, था जिसका बलवाहन ताजा।
डरती दुनिया सारी, रेखा०॥१॥
अद्भुत एक ज्योतिषी आया, मृत्यु-संबंधी प्रश्न उठाया।
बोला द्विज सुविचारी, रेखा०॥२॥
राम-सुलक्ष्मण दशरथ नंदन, मारेंगे प्रभु ! तुमको इक दिन।
(सुन) बोला अहंकारी, रेखा०॥३॥

तर्ज—हीरा मिसरी का

राजा दशरथ का, करवा दूंगा नाश, राजा०॥ध्रुवपद॥
कैसे राम-लखन जन्मेंगे? कैसे मेरे प्राण हरेंगे?
सुन द्विज ने किया प्रकाश, राजा०॥१॥
प्रभु ! भावी का बल है बंका, अगर आपको हो कुछ शंका।
तो कर लें जरा प्रयास, राजा०॥२॥

दोहा

चन्द्र स्थल-पति की सुता, रत्नस्थलपति-पुत्र।
सतरहवें दिन व्याहेंगे, फर्क न तिल भर अत्र॥१॥

तर्ज—राधेश्याम

लंकेश्वर ने राजसुता, तत्काल वहीं मंगवाई है ।
पेटी में कर बंद अहो ! देवी से सीख सुनाई है ॥
इसे वदन में रखकर गंगा-सागर के संगम में जा ।
सतरह दिन तक बसो वहीं, बस ! देवी जाकर बसी वहां ॥१॥
इधर नाग तक्षक के द्वारा, डसवाया नृप नंदन को ।
काफी यत्न किया पर होश, न आ पाया नृपनंदन को ॥
रखा सुलाकर पेटी में, आखिर जा गंगा के अंदर ।
चौकीदार चार बैठे हैं, फिर-फिर वे ले रहे खबर ॥२॥

तर्ज—पिया घर आ जा !

लगे एक दिन वातों में, पानी का वेग अचानक,
गंगा में आया-आया, गंगा में आया ॥ ध्रुवपद ॥
बहता नृप सुत उस संगम पर आ गया, आ गया ।
देवी का दिल इधर अधिक अकुला गया, अकुला गया ।
दिन सतरहवां भूल गयी, सागर में क्रीड़ा करने,
जाना जंचाया आया, गंगा में०॥१॥
मुंह से पेटी बाहर तुरत निकाल कर, निकाल कर ।
रहना बेटी पीछे खूब संभाल कर, संभाल कर ।
दे यों सीख सिधाई है, कन्या भी फिरने निकली,
हर्ष सवाया-आया, गंगा में०॥२॥

तर्ज—चले आना हमारे अंगना

जल के तीर फिरती, देखी पेटी तरती,
पाई कन्या अचंभा मन में ॥ ध्रुवपद ॥
पेटी निकाली हैं पानी से खींचकर,
मुर्दा पड़ा उसमें आंखों को मींचकर—२।
मुद्री धोकर जल में, जल पिलाया पल में, पाई०॥३॥
पानी पिलाते ही पाया वो भान है,
दोनों के आपस में निकली पिछान है—२।
मन में हो गए मगन, लगी प्रेम की लगन, पाई० ॥२॥

है अपने शादी करने का आज दिन,
करलें अपन खुद करेगा क्या ब्राह्मण—२।
कर ली शादी छिन में, दोनों फूले तन में, पाई० ॥३॥
पति युक्त कन्या पेटी में जम गयी,
रखकर वदन में सुरी जल में रम गयी—२।
आया आठ दसवां दिन, पहुंची रावण के सदन, पाई० ॥४॥

तर्ज—अखियां मिला के

खोली है पेटी, जोड़ी है बैठी, चौंका दशानन ॥ ध्रुवपद ॥
विस्मित मुख अर र र! करके, पूछा है हाल सारा।
कन्या और देवी ने दरबार में, सच्चा उचारा, खोली० ॥ १॥
सन्नाटा छाया आखिर, दोनों को छोड़ दिया है।
फिर भी दशरथ का करने नाश, काफी यत्न किया है, खोली० ॥२॥
लेकिन भवितव्यता तो, टलने नहिं पाई तिलभर।
लक्ष्मण के द्वारा मारा ही गया, लंका का ईश्वर, खोली० ॥३॥
सुनकर यह वर्णन भाई! कर्मों से डरते रहना!
प्रभुवर का धरते रहना ध्यान, यह 'धन मुनि' का कहना[1], खोली० ॥४॥

---

१. वि० सं० २००४ आसोज मास वार्डन रोड (बंबई)।

मणि छब्बीसवां

हिम्मती चंदन

राज्य को हार कर चंदन राजा रानी-पुत्रों सहित भागा। कनकपुर में ज्यों-त्यों आजीविका चलाने लगा। रानी को व्यापारी ले भागा, पुत्र नदी के दोनों तटों पर रह गए। राजा नदी में बहता हुआ आगे निकला एवं शील रक्षा करके चंपाधीश बना। बारह वर्ष बाद वही व्यापारी चंपा आ गया एवं रानी और पुत्र राजा से मिले। इस कथा से धैर्य तथा धर्म रक्षा की प्रेरणा मिलती है।

तर्ज—धर्म पर डट जाना

हिम्मती बन जाना, सुन चंदन की बात
साहसी बन जाना, सुन चंदन की बात ॥ध्रुवपद॥
भले ही आएं कष्ट अपार, हाथ में ले धीरज तलवार।
सज्ज हो भिड़ जाना, सुन० ॥१॥
धर्म में रहना सदा अडोल, कदाचित् जाय मेरु भी डोल।
न दिल को डोलाना, सुन० ॥२॥
कुसुमपुर चन्दन वसुधाधार, रानी मलयागिरी उदार।
पुत्र-युग मनमाना, सुन० ॥३॥
बड़ा था सायर छोटा नीर, कर रहे राज्य फिरी तकदीर।
युद्ध अरि ने ठाना, सुन० ॥४॥

तर्ज—अय बाबुजी

हार जाने की नौबत में आया रे, चंदन नरेश।
पुत्र-नारी ले चुपके पलाया रे, चंदन नरेश ॥ध्रुवपद॥
जल्दी में कुछ भी नहीं लेने पाया,
बदल करके निज वेष जीवन बचाया।
आ कनकपुर में दासत्व ठाया रे, चंदन नरेश० ॥१॥
लड़के तो बछड़े चराने लगे हैं,

दिन घास के घर में जाने लगे हैं।
है अजब पाप कर्मों की माया रे, चंदन नरेश० ॥२॥
बड़ा एक कपड़े का व्यापारी आया,
मलया ने लकड़ी का भारा बनाया।
सेठ के कैंप में आ सुनाया रे, चंदन नरेश० ॥३॥

तर्ज—मेरा रंग दे तिरंगी चोला

ले लो ! लकड़ी का भारा-२, रानी ने प्रगट पुकारा ॥ध्रुवपद॥
व्यापारी ने मीठी बानी, सुन अन्दर बुलवाई रानी।
लख रूप हुआ सविकारा, ले लो ! ० ॥१॥
ली है लकड़ी आना प्रतिदिन, कह यों दुगुने दाम दिए गिन।
रानी मन हर्ष अपारा, ले लो ! ० ॥२॥
जाती रोज लकड़ियां लेकर, एक दिन पापी उसे पकड़कर।
दे गया कूच-नगारा, ले लो० ॥३॥
इत चंदन प्यारी नहिं पाया, मां-मां! कर सुत-युग चिल्लाया।
ढूंढ़ लिया वन सारा, ले लो ! ० ॥४॥

तर्ज—हरियाणे आजा तू

पर खबर न पाई तार रे, तीनों ही चल निकले।
गिरि-गह्वर रहे निहार रे, तीनों ही चल निकले ॥ध्रुवपद॥
नदी रास्ते में भारी एक देखकर,
पुत्र सायर को राजा ने कंध धर,
ला रक्खा जल के पार रे, तीनों० ॥१॥
लघु को लेने नरेश फिर आ रहा,
पाप बिच ही में नाटक रचा रहा।
बढ़ा पानी बिना शुमार रे, तीनों० ॥२॥
सिर पर राजा के आखिर में फिर गया,
हा ! हा ! चेता भी नरवर बिसर गयां।
अदृश्य हुआ तत्काल रे, तीनों० ॥३॥

तर्ज—कर्मन की गति भारी

अब कौन करे रखवारी, शिशु दोनों हुए दुखारी।
है कर्म बड़े बलधारी, शिशु दोनों हुए दुखारी ॥ध्रुवप

सारी रात बहुत चिल्लाए, शान्ति प्रात समय कुछ पाए ।
एक-एक की शक्ल निहारी, शिशु० ॥१॥
भाग्य-योग सौदागर आया, ले बच्चों को साथ सिधाया ।
दुख मात-पिता का भारी, शिशु० ॥२॥
काटे बारह वर्ष वहां पर, मात-पिता को भूले आखिर ।
परदेश चले धृति-धारी, शिशु० ॥३॥

तर्ज—सारी दुनिया में दिन

राजा पानी में बहता हुआ आ रहा,
मन्त्र नवकार तल्लीन हो गा रहा ॥ध्रुवपद॥
है न मालूम पियारी कहां पर गई,
नीर-सायर कहां हैं खबर ना रही ।
किन्तु कायर पना दिल नहीं ला रहा, राजा० ॥१॥
आ पहुंचा किनारे था आयुष्य-बल,
चल पड़ा भूप बाहर सलिल से निकल ।
देख चंपा पुरी चित्त हुलसा रहा, राजा० ॥२॥
राह में सुन्दरी एक आकर मिली,
रूप से मुग्ध हो भूप को ले चली ।
भोग की प्रार्थना सुन पलक ना रहा, राजा० ॥३॥
सोचता है नरेश्वर धरम सार है,
चूक जाऊंगा तो जन्म बेकार है ।
बस! छुड़ाकर के पल्ला चला जा रहा, राजा० ॥४॥

तर्ज—टूट गया एक तारा

धर्म है एक सहारा जग में, धर्म है एक सहारा ।
अपने धरम में जो दृढ़ रहता,
पाता सुख अविकारा ॥ध्रुवपद॥
धर्म अडिग रख चन्दन धाया, चंपापुरी के बाहर आया ।
इत मर गया नरसरदारा, धर्म० ॥१॥
दिव्य प्रगट सचिवों ने किए हैं, सब चंदन के निकट गए हैं ।
बन गया वसुधा धारा, धर्म० ॥२॥

यद्यपि करता राज्य सुहाया, पर स्त्री-सुत का दुःख सवाया।
अब आती है सुख की धारा, धर्म० ॥३॥

तर्ज—कोरड़ा छन्द

फिरते-फिरते सायर-नीर वहीं पर आए हैं,
जोध-जवान देखकर नृप ने स्थान दिलाए हैं ॥ध्रुवपद॥
खुश हो दोनों भाई फौजी नौकर बन गए,
अक्लमन्द थे क्रमशः काफी आगे बढ़ गए।
किन्तु न एक-दूसरे को पहचान पाये हैं, फिरते० ॥१॥
इत रानी मलयागिरी विपदा में पड़ गई,
सोच रही है लालच से कैसी दशा हुई।
पापी ने अथ विषय-भोग के शब्द सुनाए हैं, फिरते ॥२॥
बोली रानी कभी न ऐसा कर्म करूंगी मैं,
बलप्रयोग किया तो जिह्वा खींच मरूंगी मैं,
व्यापारी ने सुन यों मन के लड्डू खाए हैं, फिरते० ॥३॥

तर्ज—राधेश्याम

उत्तावल में है न मजा, नहिं फलता एक दिवस में आम।
धीरे-धीरे पिघल जाएगी, होगी इच्छा पूर्ण तमाम।
सोच समझ यों रखीं दासियां, धरती रानी प्रभु का ध्यान।
बारह साल समाप्त हो गए, अब संकट का है अवसान ॥१॥
फिरता-फिरता वह व्यापारी, साथ माल ले बिना शुमार।
चंपा नगरी में चल आया, अजब लगाया है बाजार॥
कर नजरांणा महाराज से, मांगे रक्षा हेतु जवान।
इन्हीं भाइयों पर भावीवश, आया राजा का फरमान ॥२॥

तर्ज—रहमत के बादल छाए

दोनों ही आ गए, बाजार में गस्त लगाने ॥ध्रुवपद॥
लाए साथ अनेक सिपाही, गस्त लगाते है मनभाई।
इत मध्यरात के टाने, दोनों० ॥१॥
कहने लगे सिपाही मिलकर, बात कहो कोई श्रुति सुखकर।
अब नींद लगी है आने, दोनों० ॥२॥

सायर बोला नगर कुसुमपुर,चन्दन नृप रानी मलयागिर।
सुत सायर-नीर कहाने, दोनों० ॥३॥
राज्य गया निकले भय खाकर,मां को कोई भगा उड़ाकर।
न सके हम पता लगाने, दोनों० ॥४॥

तर्ज—म्हारो धणा मोल रो माणकियो

रानी सुन तम्बू में बात, तुरत ही आकर मिल गई रे।
मिल गई, मिल गई, मिल गई रे, हां! आकर रे ॥ध्रुवपद॥
रे बेटो! अम्मा यह हाजिर, कहां तुम्हारा बाप ?
सायर-नीर पड़े पैरों में, हुआ माता-पुत्र मिलाप।
हृदय की कलियां खिल गई रे, रानी० ॥१॥
सायर-नीर सुभट दोनों ही, ले माता को साथ।
उसी वक्त अपने घर आये, करते दुख की बात।
बात में रात निकल गई रे, रानी० ॥२॥
व्यापारी आ राज सभा में,करने लगा विलाप।
नारी को ले गए सिपाही, न्याय करो मां-बाप !
अनीति बिना हद बढ़ गई रे, रानी० ॥३॥
गुस्से हो नृप ने बुलवाया, तीनों को तत्काल।
पूछा क्यों लाये ? है माता, लालच वश एक बार।
जाल में इसके पड़ गई रे, रानी० ॥४॥

तर्ज—जब तुम ही चले परदेश

सुनते-सुनते ही बात, नगर का नाथ, लगा है रोने।
पहचाने पुत्र सलौने ॥ध्रुवपद॥
बोला मैं बाप तुम्हारा हूं, जो हुआ नदी से न्यारा हूं।
सारे काम हो गए जो थे होने, पहचाने० ॥१॥
रानी राजा के साथ मिली, दिल छायी सबके रंग रली।
अब होश उड़ गए लगे सेठजी टोहने, पहचाने० ॥२॥
नृप ने पापी को कैद किया,रानी ने कह-सुन छुड़ा दिया।
अथ बीज धर्म के लगे सभी मिल बोनें, पहचाने० ॥३॥
समयांतर सद्गुरु आए हैं, ले संयम स्वर्ग सिधाए हैं।
अब श्रोताजन उठो ! न दूंगा सोने, पहचाने० ॥४॥

तर्ज—हीरा मिसरी का

कीमत हिम्मत से, होती है संसार।
कीमत हिम्मत से यह है वर्णन का सार, कीमत ॥ध्रुवपद॥
चंदन राजा मलया रानी, रहे धैर्य धर बन कर ज्ञानी।
तो फिर लगी बहार, कीमत० ॥१॥
दुख पड़ने पर जो घबराते, धर्म-कर्म सारे छिटकाते।
नहिं उनका उद्धार, कीमत० ॥२॥
सद्गुरुओं की महर-लहर में, गाता 'धन' बम्बई शहर में[1]।
हिम्मत से बेड़ा पार, कीमत० ॥३॥

---

१. वि० सं० २००४ आसोज सुदी-११ दरिया महल (बम्बई)।

मणि सत्ताईसवां   चंपक सेठ

लोभी वृद्धदत्त ने जंगल में गर्भवती दासी को मार दिया। फिर भी उसका गर्भ चंपक जीवित रह गया। उसे मारने का फिर प्रयत्न किया तो वह उसका दामाद बन गया। तीसरी बार मारने का प्रयास करने पर स्वयं मारा गया एवं चम्पक घर का स्वामी ही बन बैठा। कथा का सार यही है कि दूसरे का बुरा करने से अपना ही बुरा होता है।

तर्ज—रावन सुनो सुमति हिय धार

मरते हैं कुत्ते की मौत, बुराई पर की करने वाले।
पर की करने वाले, पाप की गठड़ी भरने वाले ॥ध्रुवपद॥
जीना है दिन चार, काल का है न जरा इतबार।
संत जन करते प्रकट पुकार,
तार जग को खुद तरने वाले, मरते० ॥१॥
फिर भी पापी जीव, द्रोह में होकर अन्ध अतीव।
लगाते हैं नरकों की नींव,
हिताहित अपना विसरने वाले, मरते० ॥२॥
धनपुर साहूकार, वृद्धदत्त[1] कृपणों का सरदार।
घर में धन था बिना शुमार,
न लेकिन उसको धरने वाले[2], मरते० ॥३॥

तर्ज—सारी दुनिया में दिन हिन्द में

एक दिन रात को सेज में सो रहा,
फिक्र लक्ष्मी का मन में अमित हो रहा ॥ध्रुवपद॥

---

१. दूसरा भाई साधुदत्त था।
२. पुत्र नहीं थे।

कौन खाएगा? इतना है यह मेरा धन,
कौन पहनेगा ये मेरे भूषण-वसन।
कौन घर को संभालेगा यों रो रहा, एक० ॥१॥
आयी आवाज इतने ही में एक दम,
भोगने वाला धन को गया है जनम।
चौंक चारों तरफ सेठ है टोह रहा, एक० ॥२॥
कौन है तू बता दे मुझे हो प्रगट,
देवता ने कहा है तुरत आ निकट।
बोझ धन का बिना काम क्यों ढो रहा, एक० ॥३॥

तर्ज—माढ

सुन ले ! मेरी वानी रे,
धन की ममता त्याग, बन जा अन्तर्ज्ञानी रे ॥ध्रुवपद॥
सेठ त्रिविक्रम है अतिभारी, कंपिलपुर में ख्यात।
है उसकी दासी के उदर में, तेरे घर का नाथ, सुन ले ! ॥१॥
क्या दासीसुत गृहपति होगा[1], हां हां ! मान निशंक।
अगर मार दूं ? मिट नहिं सकते,होनहार के अंक, सुन ले! ॥२॥

तर्ज—धर्म पर डट जाना

न फिर भी है माना, लोभी हुआ रवाना ॥ध्रुवपद॥
कयाणा ले कंपिलपुर आया, उसी के घर निज कैंप लगाया,
वहीं खाया खाना, लोभी० ॥१॥
दासी करती थी सब काम, सेठ धन देता उसे प्रकाम।
बिका अथ किरयाना, लोभी० ॥२॥
लगा है लोभी सेठ सिधाने, त्रिविक्रम लगा मुदित हो गाने।
काम कुछ फरमाना, लोभी० ॥३॥
दीजिए पुष्प श्री को साथ, भेज दी श्रेष्ठी था अज्ञात।
वृद्ध मन हुलसाना, लोभी० ॥४॥
गाड़ियां आगे सभी चलाई, अकेली दासी साथ बिठाई[2]।
हुआ वन का आना, लोभी० ॥५॥

---

१. पुष्प श्री।
२. अपने रथ में।

तर्ज—अगियां मिला के

अवसर लखकर, रथ से पटक कर, छाती पे बैठा ॥ध्रुवपद॥

काफी चिल्लायी लेकिन, न मिला है सुनने वाला ।
पापी ने गला घोंट कर, दासी का जीवन हर डाला, अवसर० ॥१॥

हा ! हा! फिर लात पेट पर, निर्दय ने एक मारी ।
लगते ही लात गिर गया गर्भ, हुआ है अनरथ भारी, अवसर० ॥२॥

करने से दुष्ट कर्म यह, पापी पागल-सा होकर ।
बच्चे का कर न सका है, ख्याल, भागा रथ पै चढ़कर, अवसर० ॥३॥

आकर के कहा सभी से, दासी तो भाग गयी है ।
पहुंचा घर कालांतर से सेठ के, एक सुता[1] हुई है, अवसर० ॥४॥

तर्ज—दुनिया में बाबा

देखो रे भैया ! किस्मत का अद्भुत तमाशा ॥ध्रुवपद॥

माता का तन इधर पड़ा है, ,कच्चा बच्चा इधर पड़ा है ।
नहिं जीवन की आशा, देखो० ॥१॥

बुढ़िया एक राह से आई, दृश्य देख मुख से चिल्लाई ।
विधि का देख विलासा, देखो० ॥२॥

अरे कौन है यह हत्यारा, जिसने यह दुष्कृत कर डाला ।
कर यों चिंतन खासा, देखो० ॥३॥

तर्ज—देवो देवो जी डगर

लाई-लाई जी उठाकर, बुढ़िया शिशु को लाई ।
पायी-पायी जी परम सुख, लख शिशु की पुण्याई ॥ध्रुवपद॥

इतने संकट में आकर भी, जान न जाने पाई ।
प्रबल पुण्य-संचय का फल है, ऐसी प्रभु ने गायी, लाई० ॥१॥

चम्पक नाम दिया वृद्धा ने, पिछली बात सुनाई ।
पढ़-लिख हुआ विचक्षण चम्पक, करने लगा कमायी, लाई० ॥२॥

तर्ज—आजादी का दीवाना

कंचन पुर में मित्र के घर, चम्पक आया है ।
था शादी का मौका, सेठ वहीं पर पाया है ॥ध्रुवपद॥

---

१. तिलोत्तमा नाम था ।

देख तेज चम्पक का दिल में, लगा सोचने सेठ।
पुत्री के लायक यह लड़का, योग्य कहाया है, कंचन० ॥१॥
पूछे हैं कुल जाति और माता-पिता के नाम।
सुना हुआ चंपक ने सारा, हाल सुनाया है, कंचन० ॥२॥
सुनते ही उस सेठ के तो, उड़ गये हैं होश।
हा! हा! पापी जी गया, गुस्सा न समाया है, कंचन० ॥३॥
सत्तर जैसे ही अस्सी, क्या है डर पाप का।
बस मीठी-मीठी बातें कर मुख से यों गाया है, कंचन० ॥४॥
इच्छा हो तो कर लें हम, व्यापार हो शामिल।
हां कहते ही चिठ्ठी देकर, यों समझाया है, कंचन० ॥५॥

दोहा

जाकर देना पत्र यह, साधुदत्त के हाथ।
कर लेगा वह आप से, सब व्यापारिक बात ॥१॥

तर्ज—खूने जिगर को पीते हैं

चम्पक मन हर्ष सवाया रे, आया घर सेठ के।
पर साधुदत्त नहिं पाया रे, आया घर सेठ के ॥ध्रुवपद॥
तिलोत्तमा थी अन्दर, दे दिया पत्र उसके कर।
पढ़ते ही विस्मय छाया रे, आया घर सेठ के० ॥१॥
तुम इसको जल्दी हनना, न विलंब जरा भी करना।
हद इसने मुझे सताया रे, आया घर सेठ के० ॥२॥
लख तनका सुन्दरपन, ललचाया कन्या का मन।
जाली खत तुरत बनाया रे, आया घर सेठ के० ॥३॥
मां के भेंट किया है, मां ने देवर को दिया है।
पढ़ उसने साफ सुनाया रे, आया घर सेठ के ॥४॥

तर्ज—नरम बनो जी !

दे देना जी दे देना, कन्या इसको दे देना।
अन्तर्मन से है कहना, कन्या इसको दे देना ॥ध्रुवपद॥
काम पड़ा मेरे सिर सख्त, नहिं आ सकता हूं इस वक्त।
कन्या के लायक यह वर, भाग्य योग से आया कर।
इससे लाभ कमा लेना, कन्या० ॥१॥

बस ! तत्क्षण सुमुहूर्त निहार, कर दी शादी न लगी बार।
खुशखबरी फिर भिजवाई, पापी ने मूर्छा पाई।
कठिन हो गया दुख सहना, कन्या० ॥२॥
हाहाकार किया पा होश, घर आया करता अफसोस।
गुप्त कर रहा स्त्री से बात, शीघ्र करो ! चंपक की घात।
है खतरनाक जीवित रहना, कन्या० ॥३॥

तर्ज—अय बाबु जी !

भेद पुत्री ने तत्काल पाया रे, आगे सुनो !
कंत को जा तुरत ही जताया रे, आगे सुनो ! ॥ध्रुवपद॥
पिया ! आज से तुम यहां पर न खाना,
निश्चित हुआ है तुम्हें विप खिलाना।
चौंक अन्यत्र खाना जंचाया रे, आगे सुनो ! ॥१॥
श्रेष्ठी ने पूछा मरा क्यों न अब तक ?
कैसे मरे नाथ ! पीता न जल तक।
नौकरों पर हुक्म अब लगाया रे, आगे सुनो ! ॥२॥
दामाद को मार दो तुम किसी दिन,
कहना किसी से न दूंगा तुम्हें धन।
हाथ मौका चरों के न आया रे, आगे सुनो ! ॥३॥

तर्ज—जब तुम ही चले परदेश

अब है एक दिन की बात, हुई मध्य रात।
हृदय हुलसाया, नाटक से चंपक आया ॥ध्रुवपद॥
चौकी पर खटिया ढाली थी, आ सोया चंपक खाली थी।
हत्या करने किंकरगण ललचाया, नाटक० ॥१॥
लेकिन विन पूछे ठीक नहीं, जा पूछा श्रेष्ठी से तब ही।
जल्दी मारो ! खुश हो उसने गाया, नाटक० ॥२॥
थे खटिया में काफी खटमल, चंपक नहिं सो पाया एक पल।
अतः कहीं अन्यत्र गया सुख पाया, नाटक० ॥३॥
इत किंकरगण मिल धाया है, पर चंपक नजर न आया है।
पता लगाने काफी कष्ट उठाया, नाटक० ॥४॥

तर्ज—राधेश्याम

इधर सेठ मन फूल रहा है, आज बनेगा मेरा काम।
उठकर बाहर आया खटिया, खाली देखी हर्ष प्रकाम।
लगा सोचने नौकर होंगे, गये कूप में धमकाने।
वस्त्र ओढ़ सो गया वहीं इत आए अनुचर हुलसाने।।१।।
सुप्त पुरुष को समझा चंपक, तुरत चलायी है तलवार!
वृद्धदत्त दो टूक हो गया, मुख से कर न सका चुंकार।
अन्धेरे में खबर न पायी, कुंएं में धमका आए।
समाचार सुन साधुदत्त भी, अकस्मात परभव पाये।।२।।
वृद्धदत्त मर नरक सिधाया, धन-संपत् चंपक पाया।
मत करना तुम कभी बुराई, सुन यह वर्णन मनभाया।
दो हजार चार शुभ संवत्, मिगसर सित पूनम का दिन।
'चैमूर'[1] बंबई में गुरुकृपया, 'धनमुनि' का आनंदित मन।।३।।

---

[1] वि० सं० २००४ मृगशिर सुदी।

मणि अट्ठाईसवां — अनूठा रत्न

दो हजार रुपये लेकर वनिया समुद्र के किनारे पर पहुंचा और पांच सौ रुपये देकर एक चुभकी लगवाई। लेकिन केवल कूड़ा कर्कट आया। दूसरी तीसरी बार भी रुपये व्यर्थ गए। चौथी बार में एक कंकर निकला। वनिए ने सवा लाख में बेचा, फिर पूछने से पता लगा कि वह नौ करोड़ का था। मनुष्य जन्म रत्न के समान है।

तर्ज—हीरा मिसरी का

रत्न अनूठा है, मानव का अवतार।
रत्न अनूठा है, कीमत का नहिं पार ॥ध्रुवपद॥
दो हजार रुपये सह लेकर, पहुंचा वनिया सागर तट पर।
वनने धन सरदार, रत्न० ॥१॥
वहां हो रही भाग्य—परीक्षा, दे दी इसे किसी ने शिक्षा।
किया तुरत व्यापार, रत्न० ॥२॥
नकद पांच-सौ दे मन चाही, सागर में चुभकी लगवाई।
आया मण इक भार, रत्न० ॥३॥
कौड़े और कौड़ियां आयीं, शंख और सीपे विन चाही।
किन्तु न रत्न उदार, रत्न० ॥४॥
वनिये के तन-मन अकुलाये, हाय ! पांच-सौ व्यर्थ गवांये।
इत बोले लोक पुकार, रत्न० ॥५॥

तर्ज—सुना दे-३ किसना !

लगा दे, लगा दे, लगा दे वनिया !
एक दांव और तू लगा दे वनिया ! ॥ध्रुवपद॥
अब के धन-माल मिलेगा, दुख दोहग दूर टलेगा-२।
पांच सौ का मोह मिटा दे वनिया ! एक० ॥१॥

साहस धर दांव लगाया, फिर कूड़ा-कर्कट आया-२।
लोग बोले हिम्मत वढ़ा दे वनिया ! एक० ॥२॥

तर्ज—दुनिया में बाबा !

सबके के कहने से, बनिये ने दांव लगाया।
सबके कहने से, तीसरा दांव लगाया ॥ध्रुवपद॥
'पन्द्रह सौ का हो गया पानी, बनिये की सुध-बुध विसरानी।
लोगों ने समझाया, सबके० ॥१॥
चौथा दांव लगाया आखिर, आया कचरा बड़ी पोटभर।
अब बनिया चिल्लाया, सबके० ॥२॥
खोज लगाते पाया आखिर, चमकीला इक नन्हा कंकर।
लेकर वणिक सिधाया, सबके० ॥३॥

तर्ज—रहमत के बादल छाए।

जौहरी की दुकान पर, बनिया अब रोता आया ॥ध्रुवपद॥
जौहरी को वह सौंप दिया है ? इस कंकर की कीमत क्या है ?
फिर ऐसा प्रश्न उठाया, जौहरी० ॥१॥
जौहरी ने लेकर के कंकर, बंद किया पेटी में धर कर।
घर ला साथ खिलाया, जौहरी० ॥२॥
फिर दुकान पर दोनों आए, पूछा अब कीमत बतलाएं।
अजि मांगो ! जो मन भाया, जौहरी० ॥३॥
क्या मांगु ? दिल भर के भाई! सुन बनिये की मति चकराई।
लालच दिल में न समाया, जौहरी० ॥४॥
दो के चार करूं या अठ दस, पन्द्रह-वीस-पचीस करूं बस !
लक्षावधि दिल दौड़ाया, जौहरी० ॥५॥

तर्ज—दिल्ली चलो

मांग लूंगा, मांग लूंगा, मांग लूंगा मैं,
देना होगा जौहरी जी ! जो मांग लूंगा मैं ॥ ध्रुवपद ॥
एक छिन में दे दूंगा यों जौहरी ने कही,
मुखड़ा तेरा वैरी है तू मांग ले सही।
सवा लाख से कम जौहरी जी ! एक न लूंगा मैं, देना० ॥१॥

बस ! जौहरी ने सवा लाख गिन फौरन दे दिए,
लगा पूछने बनिया अब कीमत बतलाइए !
नौ करोड़ का कम-से-कम भी माल कहूंगा मैं, देना० ॥२॥
सवा लाख ले बनिया अपने मन्दिर आ गया।
इसी रत्न से जौहरी माल अपार कमा गया।
इस उपनय पर अब जरा-सा ध्यान दूंगा मैं, देना० ॥३॥

तर्ज—राधेश्याम

सागर है संसार वणिक सम, चेतन यह कहलाया है।
धार्मिक करणी दांव पिछानो, नरतन रत्न सुहाया है ॥१॥
जौहरी सम है सद्गुरु, जो दिलचाहा द्रव्य' दिलाते हैं।
जिनकी जितनी ताकत है, वे उतना ही ले जाते हैं ॥२॥
'धन मुनि' ने गुरुकृपया रचकर, रत्न अनूठा गाया है।
दो हजार चार संवत, वदि पौष चौथ दिन आया है ॥३॥

मणि उनतीसवां — चार लड़के

लखी वनजारे के पूछने पर सेठ ने आयु १२ वर्ष की है, धन दो हजार का है एवं बेटा डेढ़ है—ऐसे कहा। वनजारा नहीं समझ सका। तव सेठ ने उपरोक्त तीनों वातों का गूढ़ रहस्य समझाया। भेद पाकर वनजारे ने सेठ के साथ लेन-देन का काम शुरू किया। कथा चमत्कारी एवं ज्ञानप्रद है।

तर्ज—रहमत के वादल छाए

बेटे अब कौन से, कहलाओगे तुम भाई! ॥ ध्रुवपद ॥
बेटे चार कहूंगा सुनकर, वन जाना अच्छे गुन चुन कर।
गुरु शिक्षा है मन भाई, वेटे० ॥१॥
था धर्मिष्ठ सेठ एक पुर में, लाखों की माया थी घर में।
सुत चार फर्क नहिं राई, बेटे०॥२॥

तर्ज—पिया घर आजा!

सेठ हाट पर वैठा है, मिलने लखी वनजारा,
एक रोज आया-आया, एक रोज आया ॥ ध्रुवपद ॥
इज्जत दे विठलाया आसन ऊंचा है, ऊंचा है।
वनजारे ने प्रश्न उम्र का पूछा है, पूछा है।
मैं हूं बारह वर्षों का, सुनकर सुविस्मित हो फिर,
प्रश्न उठाया-आया, एक रोज ॥१॥
सठे! आपके पास संपदा कितनी है, कितनी है?
अंदाजन दो सहस्र रुपयों जितनी है, जितनी है।
गप्पी समझा पूछा फिर, कितने हैं वेटे? उसने,
डेढ़ वताया-आया, एक रोज ॥२॥
रुक न सका सुनकर वनजारा वोला है, वोला है,
सेठ आपने झूठ खूव ही तोला है, तोला है।

अरे झूठ मैं नहिं कहता,
लेकिन न तूने मेरा, अभिप्राय पाया-पाया, एक रोज ॥३॥
पैर पकड़ कर लगा पूछने वनजारा, वनजारा।
माफ करो! मैं बोल गया मुख अविचारा, अविचारा।
मर्म आप सब समझाएं!
समझ न पाया, मैं तो मन अकुलाया-आया, एक रोज ॥४॥

तर्ज—राधेश्याम

सुन रे वनजारा वतलाऊं, घर का मर्म तुझे सारा।
पिछले सत्तर व्यर्थ गए, बारह में धर्म किया प्यारा ॥१॥
इसीलिए बारह वर्षों की, मैंने आयुः वतलाई।
दो हजार का दान' हुआ, पूंजी उतनी इससे गाई ॥२॥
अब वेटों का मर्म समझ! पहले को जाकर जल्दी ला।
वनजारे ने कहा कुंवर जी! चलिए श्रेष्ठी रहे बुला ॥३॥

तर्ज—दिल्ली चलो-३

काम क्या है, काम क्या है, काम क्या है रे?
वतला दे मेरा वहां पर, काम क्या है रे ॥ध्रुवपद॥
सेठ के सिर पर क्या कोई भींत गिर गयी,
अगर गिर गयी हो तो नौकर हैं सभी वहीं।
मैं इस वक्त न आता ऐसे साफ कहा है रे, वतला दे! ॥१॥
विस्मित हो वनजारे ने आ विन्दु लगाया है,
दूसरे को फिर वही संदेश सुनाया है।
यार-दोस्त बैठे थे उसने हास्य किया है रे, वतला दे! ॥२॥
भैया! क्या मेरे पिता के निकल गए हैं प्राण?
निकल गए हों तो जला दो जाकर के श्मशान।
मैं नहिं आता रंग यहां पर लग रहा है रे, वतला दे! ॥३॥

तर्ज—श्री महावीर प्रभु के चरणों में

सुनकर स्तब्ध हुआ वनजारा, मुड़कर वापस आया है।
आकर के विंदा गोल लगाया है ॥ध्रुवपद॥

तीसरा बुलाया, लेने को वही सिधाया,
आता हूं मुख से गाया।
लेकिन कारणवश आ नहिं पाया है, सुन० ॥१॥
लिखकर आठाने, चौथे को गया बुलाने,
आया श्रेष्ठी हुलसाने।
एका लिख फौरन जोड़ लगाया है, सुन० ॥२॥
अंतर पहचाना, श्रेष्ठी को सच्चा जाना,
व्यापार किया मन माना।
प्रभुतात[1] तुल्य सुत जगत कहाया है, सुन० ॥३॥

तर्ज—आजादी का दीवाना था।

चार रकम के प्राणी, इस दुनिया में पाए हैं।
किस दर्जे में कौन से, अब देखें आए हैं ॥ध्रुवपद॥
जो निन्दा करते हैं प्रभु की, वे पहले लड़के!
करते मजाकें शास्त्रों की, वे अपर लखाए हैं, चार० ॥१॥
तीसरे श्रावक न आज्ञा पालने पाते।
चौथे मुनि प्रभु-आज्ञा में, तल्लीन कहाए हैं, चार० ॥२॥
चौथे पुत्र बनेंगे उनकी, होगी वाह-वाह।
तर जाएंगे तीसरे, प्रभु वचन सुहाए हैं, चार० ॥३॥
लेकिन पहले-दूसरे, मत बनना कोई भी।
'धन' ने सुगुरु-कृपा से, शिक्षा वचन सुनाए हैं[2], चार० ॥४॥

---

१. अब दृष्टांत का मिलान कीजिए!
२. वि० सं० २००४ पोष वदी।

मणि तीसवां — सोवे सो खोवे

चिन्तामणि का भूखा धनसार क्षत्रिय समुद्र को उलीचने लगा। लोगों ने बहुत समझाया लेकिन इसने अपना काम चालू रखा। प्रसन्न होकर देव ने चिन्ता रत्न दे दिया। धर्मशाला में सो रहा था, उस समय चोरों ने इनकी चद्दर के कोने में कंकर बांधकर रत्न निकाल लिया। क्षत्रिय रत्न के लिए जीवन भर रोता रहा।

तर्ज—कलदार रुपइया चांदी का

मत सोओ जल्दी जाग उठो! चोरों की पलटन आती है।
चोरों की पलटन आती है, गाफिल का माल चुराती है ॥ध्रुवपद॥
जो सोता है वह खोता है, फिर हाथ मसलकर रोता है।
पर गयी चीज नहिं पाती है, चोरों० ॥१॥
धनसार नाम एक क्षत्रिय है, निर्धन है किन्तु धन प्रिय है।
बिन धन के मति अकुलाती है, चोरों० ॥२॥
किस ही ने कहा समंदर को, जो उलिचे भर-भर गागर को।
उसे चिंतामणि मिल जाती है, चोरों० ॥३॥

तर्ज—दुनिया में बाबा

दुनिया में बाबा! लोभ का काम करारा।
दुनिया में बाबा! तृष्णा का काम करारा ॥ध्रुवपद॥
सुनते ही धनसार चला है, आकर के परिवार मिला है।
सबने किया नकारा, दुनिया० ॥१॥
किन्तु किसी का कहा न माना, इसने हठ अपना ही ठाना।
ले लिया जलधि किनारा, दुनिया० ॥२॥
फैंक रहा जल बर्तन भर-भर, सहता कष्ट अमित साहस धर।
किन्तु न रत्न निहारा, दुनिया० ॥३॥

ऐसे रत्न न मिलता भाई ! समझाते यों लोक-लुगाई।
पर इसने दृढ़ प्रणधारा[1], दुनिया० ॥४॥

तर्ज—रहमत के बादल छाए

सुर वर ने दे दिया, लख दृढ़ता रत्न सुहाया ॥ध्रुवपद॥
फिर शिक्षा दी खो मत देना ! सावधान हरदम तू रहना।
खुश होकर घर दिशि धाया, सुरवर० ॥१॥
सोया धर्मशाला में आकर, चद्दर में मणि रखा छिपाकर।
चोरों ने ध्यान लगाया, सुरवर० ॥२॥
रत्न निकाल धर दिया कंकर, इसको खबर पड़ी नहिं तिलभर।
उठ सुवह शीघ्र घर आया, सुरवर० ॥३॥

तर्ज—राधेश्याम

घर वाले मिल पूछ रहे हैं, क्या चिन्तामणि ले आया ?
हां हां जी ! हठ ठान गया था, तो मणि लेकर ही आया।
अरे ! कहां है चिन्तामणि, तू कंकर ले आया होगा।
अभी खोल दिखला देगा, जो सच्चा मणि लाया होगा ॥१॥
वस ! इसके क्या देरी थी, झट गांठ खोल दिखलाया है।
जव कंकर देखा तो सबने, हंस-हंस पेट दुखाया है।
इसके तो आ गयी अंधेरी, हा ! हा ! रत्न लिया किसने ?
किसके पास पुकार करूं, यह कंकर वांध दिया किसने ? ॥२॥
आंखें भर-भर रोता है, लेकिन चिन्तामणि नहिं पाता।
है सागर संसार मनुजभव, चिन्तामणि सम कहलाता।
कामादिक हैं चोर अरे 'धन!' मोह नींद में जो सोता।
नरतन चिन्तारत्न गवांकर, जन्म-जन्म में वह रोता[2] ॥३॥

---

१. छः महीनों तक पानी फेंकता रहा।
२. संवत २००४ पौष वदी।

मणि इकतीसवां — सच्चा मित्र

मंत्री ने तीन मित्र बनाए लेकिन विपत्ति के समय नित्यमित्र-पर्वमित्र दोनों बदल गए। प्रणाम मित्र ने सहायक बनकर रक्षा की। नित्यमित्र शरीर है, पर्वमित्र परिवार है और प्रणाम मित्र धर्म है। संकट में मात्र धर्म ही रक्षा करनेवाला है।

तर्ज—टूट गया इक तारा

सच्चा मित्र पियारा, धरम है सच्चा मित्र पियारा।
इसकी शरन में जो भी आता, देता उसी को सहारा ॥ ध्रुवपद ॥
तन रह जाता धन रह जाता, परिजनगण भी साथ न आता।
पर यह नहिं होता न्यारा, सच्चा० ॥१॥
उग्रसेन भूपति सागर पुर, सुमति सचिव विमला स्त्री सुखकर।
नित्य मित्र इक धारा, सच्चा० ॥२॥
समयांतर फिर मित्र बनाया, पर्वमित्र वह था मन भाया।
रखता प्रेम अपारा, सच्चा० ॥३॥
मित्र तृतीय प्रणाम मनोहर, जब भी आता मिलता नमकर।
यों कुछ वक्त गुजारा, सच्चा० ॥४॥

तर्ज—रहमत के बादल छाए

राजा ने क्रोधकर, पद से मंत्रीश हटाया ॥ ध्रुवपद ॥
कारागृह की हुई तैयारी, मंत्री के मन चिन्ता भारी।
सहचर को हाल सुनाया, राजा० ॥१॥
भैया! वक्त पड़ा है आकर, ज्यों-त्यों रख तू मुझे बचाकर।
सुन उसने मुंह फिराया, राजा० ॥२॥
दोस्त अपर भी बदल गया है, साथी मित्र तृतीय हुआ है।
मंदिर में उसको लाया, राजा० ॥३॥
बाद वेष भी बदल दिया है, सार्थवाह के साथ किया है।
वन साथी स्वयं सिधाया, राजा० ॥४॥

तर्ज—हीरा मिसरी का

वाघ दो आए हैं, करते दौड़ा-दौड़ ॥ध्रुवपद॥

उसी दोस्त ने दूर हटाए, फल किंपाक राह में आए।

लिए सचिव ने तोड़, वाघ० ॥१॥

हाथों से वापस गिरवाए, डाकू इधर लूटने आए।

की रक्षा कर जोर, वाघ० ॥२॥

यों जंगल से पार लंघाया, प्रवर सिद्धपुर पाटण आया।

नाच उठा मन मोर, वाघ० ॥३॥

तर्ज—जब तुम ही चले परदेश

उपनय का करो मिलान, जरा धर ध्यान,

ठान होशियारी, है धर्म बड़ा उपकारी ॥ध्रुवपद॥

संसार शहर कहलाना है, मंत्रीश्वर चेतन माना है।

उग्रसेन महराज कर्म वलधारी, है० ॥१॥

है नित्यमित्र तन सहचारी, अथ पर्वमित्र है परिवारी।

मित्र तृतीय प्रणाम धर्म जयकारी, है० ॥२॥

देवालय स्वर्ग सुहाता है, सार्थेश सुगुरु कहलाता है।

वेष वदलना है संयम सुखकारी, है० ॥३॥

है राग-द्वेष दो वाघ सवल, भौतिक सुख फल किंपाक प्रवल।

हैं चोर-लुटेरे कुगुरु महाभयकारी, है० ॥४॥

तर्ज—राधेश्याम

कोप कर्म नृप करता है तव, मुख कोई न दिखाता है।

उस वेला में धर्म मित्र आ, मैत्रीभाव दिखाता है ॥१॥

चुपके-सी इस चेतन को, सुर-मन्दिर में विठलाता है।

फिर नरतन दे सुगुरु-चरण में, चरण इसे दिलवाता है ॥२॥

राग-द्वेषमय वाघ-युगल, जव इसको खाने आता है।

रक्षा करता फिर भोगों से, दिल इसका पलटाता है ॥३॥

कुगुरु लुटेरों से रक्षा कर, सिद्ध नगर पहुंचाता है।

सच्चा मित्र इसी कारण से, सत्य धर्म कहलाता है ॥४॥

मर्म धर्म का जो वतलाता, वह सद्गुरु सुखदाता है।

'थाने' में[1] गुरुदेव-कृपा से, 'धनमुनि' ज्ञान सुनाता है ॥५॥

---

१. वि० सं० २००४ पौष सुदी थाना (वंवई)।

मणि बत्तीसवां — मंत्रों का राजा

लोह खुरा चोर अंजन से अदृश्य बनकर राजा के साथ भोजन करने लगा। अभय ने युक्ति से पकड़ा, राजा ने उसे शूली चढ़ाया। सुदर्शन सेठ ने णमो अरिहंताणं का जाप दिया। वह मर कर देवता बना। राजा ने सेठ को पकड़ने सिपाही भेजे। देवमाया से चमत्कार हुआ। राजा-मंत्री ने सेठ से क्षमा मांगी।

तर्ज—हीरा मिसरी का

राजा मंत्रों का, है महामंत्र नवकार, राजा।
स्मरने से जय-जयकार, राजा ॥ ध्रुवपद ॥

जिसने इसका ध्यान लगाया, उसका दोहग दूर पलाया !
हो गया बेड़ा पार, राजा० ॥१॥

राजगृह श्रेणिक महाराजा, मंत्री अभय अक्ल-बल ताजा !
सचिवों का सरदार, राजा० ॥२॥

करता था नृप एक दिन भोजन, चोर लोह खुर आया खुशमन !
रूप अदृश्य विचार, राजा० ॥३॥

बैठा देख रसीला खाना, भूखा था खाया मनमाना
फिर कर गया विहार, राजा० ॥४॥

तर्ज—अय बाबुजी !

भूख राजा की मिटने न पाई जी, अचरज हुआ।
चीज तिगुनी से कम तो न खाई जी, अचरज हुआ ॥ ध्रुवपद ॥

भूखा रहा भूप दिल में हो ताज्जुब,
खाने लगा ज्योंहि संध्या समय तब।
आ डटा साथ में चोर भाई जी, अचरज० ॥१॥

खाना सरस मौज से खा लिया है,
राजा तो भूखा का भूखा रहा है।
रात को नींद बिल्कुल न आई जी, अचरज० ॥२॥

क्या हो गई आज ! तन में बिमारी,
मिटती नहीं भूख रहती है जारी ।
वात सारी अभय को सुनाई जी, अचरज० ॥३॥
चिकित्सक बड़े से बड़े हैं बुलाए,
पता रोग का किन्तु ! कोई न पाए ।
बुद्धि मन्त्री ने काफी घुमाई जी, अचरज० ॥४॥

तर्ज—तन नहीं छूता कोई

चोर भाई अब सदा, आकर वहां खाने लगा ।
भूप दुर्बल हो रहा है, वक्त यों जाने लगा ॥ध्रुवपद॥
इस तरह निकले कई दिन, कर रहे चिंता सभी !
मौत मेरी आ गई, यों नृपति फरमाने लगा, चोर० ॥१॥
सोचकर बोला सचिव, यह हो न हो कोई चोर है ।
अब पकड़ने के मुतल्लिक, अक्ल दौड़ाने लगा, चोर०॥२॥
कर दिए हैं बन्द सारे, द्वार भोजन के समय ।
फिर किया है धूम्र अब तो, चोर घबराने लगा, चोर०॥३॥
धूम्र से आंसू चले, डाला हुआ अंजन वहा ।
उड़ गया अदृश्यपन, सबके नजर आने लगा, चोर०॥४॥

तर्ज—सुना दे—२

चढा दो, चढा दो, चढा दो शूली पर !
अरे ! अभी इस चोर को, चढ़ा दो शूली पर ! ॥ध्रुवपद॥
राजा का था फरमाना, जल भी मत इसे पिलाना-२ ।
कृत पापों का फल यहीं, दिखला दो शूली पर ! अब ॥१॥
शूली तत्काल चढ़ाया, प्यासा हो वह चिल्लाया-२ ।
कोई आकर जल मुझे, पिला दो शूली पर ! अब ॥२॥

तर्ज—श्री महावीर प्रभु के चरणों में

इतने ही में फिरता-फिरता, सेठ सुदर्शन आया है ।
आते ही श्री नवकार सुनाया है ॥ध्रुवपद॥
लाता हूं पानी, तू सुमर मन्त्र गुणखानी,
यों कह गया श्रावक ज्ञानी ।
गल सूखा तस्कर दिल अकुलाया है, इतने० ॥१॥

अरिहंताणं, भूला वह अरिहंताणं,
लगा करने आणं ताणं
है सेठ वचन सुप्रमाणं
सद्भावों से मर सुरपद पाया है, इतने० ॥२॥
जल लेकर आया, लौकिक उपकार दिखाया,
लेकिन जीवित नहिं पाया।
जाकर किस ही ने नृप सुलगाया[1] है, इतने० ॥३॥

तर्ज—वन जोगी मन भटकाई ना

हो सज्ज सिपाही धाए हैं, श्रेष्ठी पर वारंट लाए हैं ॥ध्रुवपद॥
आकर महलों में पैर धरे, थे चार सिपाही त्यार खड़े।
वेचारे डरकर दौड़ पड़े,
फिर आठ त्यों सोलह आए हैं, हो सज्ज० ॥१॥
अधिकाधिक ज्यों-ज्यों आये हैं, यहां दूने-दूने पाए हैं।
नृप मन्त्री भी घवराए हैं,
भट दैविक से दरसाए हैं, हो सज्ज० ॥२॥
मन्त्री श्रेष्ठी के पैर पड़ा, हो प्रकट देव भी हुआ खड़ा।
सुनिए प्रभु ! मैं हूं चोर बड़ा,
उपकारी सेठ सुहाये हैं, हो सज्ज० ॥३॥

तर्ज—राधेश्याम

श्री नवकार सुनाकर, श्रेष्ठी ने मेरा उद्धार किया !
यों कहकर कर नमस्कार, सुरवर ने तुरत विहार किया।
क्षमा मांगकर श्रेष्ठी से, नृप मंत्रिसहित मन्दिर आया।
भांडुप[2] में सदगुरुकृपया, 'धनमुनि' ने यह वर्णन गाया ॥१॥

---

१. किसी ने शिकायत की कि सेठ ने चोर को पानी पिलाया था। अतः सेठ को पकड़ने के लिए राजा ने दो सिपाही भेजे। सेठ कमरे में सामायिक कर रहा था।

२. वि० सं० २००४ पोष सुदी।

मणि तेंतीसवां   भले की भलाई

सुमति ५०० रुपये लेकर प्रदेश गया। कुमति ने उसे कूप में डाला। वह भूत को भगाकर राजा का दामाद बना। कुमति ने कंजरों को सुलगाया, सुमति ने १८ करोड़ धन दिखलाया। भेद पाकर कुमति कुएं में जा बैठा। भूत ने उसे पछाड़ कर मारा, भले की भलाई एवं बुरे की बुराई रही।

तर्ज—धर्म पर डट जाना

बुराई मत करना, जीना है दिन चार।
भलाई आचरना, जीना है दिन चार ॥ध्रुवपद॥
बुराई करते हैं जो पराई, उन्हीं की होती अन्त बुराई।
हेतु एक दिल धरना, जीना० ॥१॥
वणिकसुत सुमति[1] चला परदेश, पंथ में कुमति मिला सुविशेष!
हुआ सह संचरना, जीना० ॥२॥
कुमति बोला यदि हो इतवार, मुझे दे दे रुपयों का भार।
पास में रख वरना, जीना० ॥३॥

तर्ज—वन जोगी मन भटकाई ना

विश्वास सुमति को आया है, रुपयों का भार दिलाया है ॥ध्रुवपद॥
रुपयों पर उसका मन विगड़ा, इतने में कुआं नजर चढ़ा।
है प्यास कुमति ने वचन झरा, जल लेने सुमति सिधाया है,
विश्वास० ॥१॥
पापी ने धक्का तुरत दिया, भद्रक ने प्रभु का नाम लिया।
बच गया प्रवल था आयु अहा! धन[1] लेकर कुमति पलाया है,
विश्वास० ॥२॥

---
१. पांच-सौ रुपये लेकर।

आ पुर में द्रव्य गवांया है[1], इस भूत कूप पर आया है।
प्रगटा इस अहि मनभाया है, आनन्द भूत ने गाया है, विश्वास० ॥३॥

तर्ज—पल-पल छिन-छिन

भैया ! मेरे हाथ आजकल, मौज अनूठी आयी है।
कुइन पुरपति-सुत के तन में, जगह मनोहर पायी है ॥ध्रुवपद॥
मान्त्रिक काफी आते हैं पर, सबकी मति चकराई है।
हाथ किसी के में नहिं आता, यह मेरी अधिकाई हैं, भैया! ॥१॥
बोला अहिवर अक्षयवट[2] की, धूई क्या न लगाई है?
अगर लगावे तो तेरी, हो जाए तुरत विदाई है, भैया ! ॥२॥

तर्ज—राधेश्याम

कहा भूत ने तेरे बिल पर, तेल उबाल अठारह मन।
यदि कोई डाले वह पाये, कोटि अठारह सुवरण धन।
लेकिन अपनी बातें भैया ! है न जानता कोई नर।
यों कह दोनों गए सुमित ने, सुना सुखद सारा व्यतिकर ॥१॥

तर्ज—श्री महावीर प्रभु के चरणों में

लेकर अक्षयवट के पत्ते, सुमति शहर में आया है।
पड़हे ने ऐसा भेद बताया है ॥ध्रुवपद॥
जो भूत भगाये, वह अर्धराज्य को पाए,
नृप-जामाता कहलाए।
आ तुरत सुमति ने भूत भगाया है, लेकर० ॥१॥
वर कन्या ब्याही, राजा की पदवी पाई,
प्रगटी पिछली पुण्याई।
अवलोक कुमति को तुरत बुलाया है, लेकर० ॥२॥

दोहा

पूछा तब कहने लगा, रचकर झूठी बात।
चोरों ने लूटा मुझे, बिल्कुल बना अनाथ ॥१॥

---

1. जुआ खेलकर।
2. जो इस कुएं के निकट ही है।

तर्ज—हीरा मिसरी का

पास में रख लिया है, बन कर के दिलदार[1] ॥ध्रुवपद॥
साथ सुमति के दुर्मति फिरता, लेकिन देख संपदा जलता।
बुरा बुरा संसार, पास० ॥१॥
कंजर-गण को लोभ दिखाया, फिरने एक दिन राजा आया।
सुमति सहित धर प्यार, पास० ॥२॥
दादा एक बना एक ताऊ, बना एक चाचा एक माऊ।
लिपटे बांह पसार, पास० ॥३॥
बोले तू यहां मौजें करता, फिक्र हमारा दिल नहिं धरता।
लख चौंका भूपाल, पास० ॥४॥

तर्ज—तन नहीं छूता कोई

पूछता है सुमति से, अतिरुष्ट वसुधा धार है।
सत्य बोलो क्या तुम्हारा, नीच यह परिवार है ॥ध्रुवपद॥
जातिकुल उत्तम हमारे, देख लें शक हो अगर।
निकट वड़ तरु के अठारह, कोटि वर दीनार है, पूछता० ॥१॥
जांच करने के लिए, भूपाल जंगल में गया।
तेल डाला सांप भागा, मिल गया धन सार है, पूछता० ॥२॥
पूछने से कंजरों को, पाप का फूटा घड़ा।
कहा नृप ने मार दो! यह कुमति दुष्ट अपार है, पूछता० ॥३॥
सुमति ने कर खूब कोशिश, फिर बचाया कुमति को।
किन्तु लेकर[2] भेद उसने, किया तुरत विहार है, पूछता० ॥४॥

तर्ज—आजा ३ मेरे

बैठा-बैठा, बैठा कुमति जा कूप में, धन लोभ अपारा।
अहि-भूत का भी हो गया, आगमन उदारा ॥ध्रुवपद॥
क्या हाल है भैया! लगा है पूछने अहिवर-२।
मुझको किसी पापिष्ठ ने, आ घर से निकाला, अहि० ॥१॥
कहने लगा व्यंतर, यही मेरे में बीती है-२।
छिप रहा था कूप में, कोई उस दिन हत्यारा, अहि० ॥२॥

---

१. की हुई बुराई को भूलकर।
२. पूछने पर सुमति ने भूत-सांप वाला सारा भेद बता दिया।

बातें कई फिर भी, हमें इस वक्त करनी हैं-२ ।
देखूं जरा-सा भूत कह यों, उठकर सिधारा, अहि० ॥३॥

तर्ज — ज्ञानी गुरु अगने गंभार जो

अरे भाई! दुश्मन तैयार है, व्यंतर ने की यों पुकार रे ॥ध्रुवपद॥
उस दिन इसी ने सुनकर के बातें,
कर डाला हमको बेकार रे, अरे भाई ! ॥१॥
बैठा है आज भी छिपकर के कूप में,
लेने हमारे समाचार रे, अरे भाई ! ॥२॥
कह यों कुमति को फौरन पकड़कर,
मारा है भूत ने पछाड़ रे, अरे भाई ! ॥३॥
दुर्ध्यान से मर पहुंचा नरक में,
पापों का बांध सिर भार रे, अरे भाई ! ॥४॥
सानन्द जीवन जी कर सुमति ने,
संयम लेकर लिया उद्धार रे, अरे भाई ! ॥५॥
व्याख्यान सुन यह न करो बुराई,
'धन' की है सीख सुखकार रे', अरे भाई ! ॥६॥

मणि चोंतीसवां परीक्षक

दो जौहरी वंधु पत्नियों के अनवनाव के कारण अलग-अलग रहने लगे। वड़ा भाई मरने के वाद भाभी को घर में रत्नग्रंथि मिली। पुत्र के हाथ देवर को दिखलाई। उसने असली रत्न कहे। काफी अर्से वाद मंगवाई, भतीजे ने उसे खोल कर देखा एवं फैंक दिया। कारण—कांच के टुकड़े थे। समझ लेने के वाद कुगुरु कुधर्म को तत्काल छोड़ देना चाहिए—यही कथा का सार है।

तर्ज—दुनिया में वावा

करके सुपरीक्षा दिल में, सुगुरु को वसा लो !
करके सुपरीक्षा, पल्ला कुगुरु से छुड़ा लो! ।।ध्रुवपद।।
चोरासी में भटका प्रानी, मिली मनुज की देह सुहानी।
अव कुछ लाभ कमा लो! करके० ।।१।।
काचखंड मणि-तुल्य पिछाने, फैंक दिये लेकिन जव जाने।
शिशु का हेतु निहालो ! करके० ।।२।।
धनपुर में दो जौहरी भाई, थी आपस में प्रीति सवाई।
अव ध्यान स्त्रियों पर डालो! करके० ।।३।।

तर्ज—अय वावु जी !

संप से साथ रहने न पाई जी, दोनों जनी।
रोज करने लगी हैं लड़ाई जी, दोनों जनी, ! ।।ध्रुवपद।।
उभय वंधु आखिर अलग हो गए हैं, आकर अलग ही घरों में रहे हैं।
आग झगड़े की ऐसे बुझाई जी, दोनों जनी० ।।१।।
भाई अचानक वड़ा मर गया है, भाभी के दिल दुःख वेहद हुआ है।
शांति देवर ने आकर दिलाई जी, दोनों जनी० ।।२।।
संभालते घर रतन ग्रन्थि पाई, उसे देख भाभी न फूली समाई।
पुत्र के साथ भेजी वधाई जी, दोनों जनी० ।।३।।

तर्ज — हीरा मिसरी का

दौड़ता आया है, बच्चा काके के पास ॥ध्रुवपद॥
अधिक दौड़ से हांफ गया है, काका बोला बेटा ! क्या है ?
मणि-ग्रंथि मिली है खास, दौड़ता० ॥१॥
देखें कैसी ग्रंथि मिली है, लो-लो ! शिशु की जीभ चली है।
मणि में अमित प्रकाश, दौड़ता० ॥२॥
ला-ला बेटा ! जल्दी ला तू, गांठ खोलकर मुझे दिखा तू।
बस दिखलाई सोल्लास, दौड़ता० ॥३॥

तर्ज—कलदार रुपइया चांदी का

जा बेटा ! कह दे माता से, ये रत्न अमोलक भारी हैं ॥ध्रुवपद॥
ग्राहक आने से बेचेंगे, मनचाही कीमत हम लेंगे।
रख देना जहां अलमारी है, ये रत्न० ॥१॥
खुश-खुश हो बच्चा आया है, आ सारा हाल सुनाया है।
मणि रक्खे की होशियारी है, ये रत्न० ॥२॥
लड़का पढ़-लिख तैयार हुआ, मणिकार तजुर्बाकार हुआ।
जग नाम परीक्षक जारी है, ये रत्न० ॥३॥

तर्ज—रहमत के बादल छाये

बेटा ! वे रत्न ला ! मनचाहा ग्राहक आया।
बेटा ! वे रत्न ला ! यों काके ने फरमाया ॥ ध्रुवपद ॥
चौंक परीक्षक ने सुविचारा, ग्राहक तो नहिं नजर निहारा।
क्यों रत्नपुंज मंगवाया ? बेटा ! ॥१॥
होगा खैर ! सोच यों धाया, रत्नग्रंथि ले मोद मनाया।
देखी तो विस्मय छाया, बेटा ! ॥२॥

तर्ज—नरम बनो जी नरम बनो !

फेंक दिये जी फेंक दिए, रत्न सभी वे फेंक दिए ॥ध्रुवपद॥
माता मन में चमकी है, अरे रे ! कहकर धमकी है।
अक्ल गयी क्या तेरी गाम, फेंक दिए मणि मूल्य प्रकाम।
मैंने कितने यत्न किए, रत्न० ॥१॥

माता रत्न नहीं थे ये, कांच-खंड सबही थे ये ।
बेटा! बदल दिए होंगे, काके ने ले लिए होंगे ।
नहिं-नहि ! कर में भी न लिए, रत्न० ॥२॥
दौड़ हाट पर आया है, काके ने समझाया है ।
बेटा! तू तो बालक था, घर अपना अति नाजुक था ।
इसी हेतु से रत्न कहे, रत्न० ॥३॥

तर्ज—राधेश्याम

गौर करो अब भव्य जनो ! जब खंड कांच के जान लिए ।
देर नहीं की बच्चे ने, तत्काल सभी वे फेंक दिए ।
कांचखंड सम कुगुरु जनों को, ज्ञानी बन तुम फेंको जी !
'धन मुनि' कहता सुगुरुचरण में, सविनय मस्तक टेको' जी ! ॥१॥

१. वि० सं० २००४ पौष सुदी घाटकोपर (बंबई) ।

मणि पैंतीसवां स्वप्न की माया

रोटी की आशा पर बैठे भिखारी ने बंगला, बच्चों का खेल, सेठ का आगमन, क्रीड़ा, पय: पान, भोजन एवं सेठानी के साथ झूले में झूलना देखा। फिर खा-पीकर कुएं पर सोया और देखे हुए दृश्य स्वप्न में देखना-देखता झूले पर बैठकर ज्यों ही आगे सरका कि कुएं में गिर गया। मोह माया में फंसने वाला नरक कूप में गिरता है—इस कथा से यह समझो !

तर्ज—किस फिक्र में बैठे हो

सपने की माया ने, कुएं में धमकाया।
सुन लेना जागृत हो, वर्णन है मनभाया ॥ध्रुवपद॥
श्रेष्ठी के बंगले पर, एक रंक खड़ा आकर।
बेचारा भूखा था, खाने को ललचाया, सपने० ॥१॥
बंगला अति भारी है, छवि मोहनगारी है।
विस्मित हो देख रहा, कुछ भी न समझ पाया, सपने० ॥२॥
आरक्षक टहल रहे, लघु बच्चे खेल रहे।
आगंतुक इधर कई, बैठे श्रेष्ठी आया, सपने० ॥३॥
आते ही सब उठकर, सम्मुख जा स्वागत कर।
फिर जय-जय की ध्वनि से, विरुदा कर यों गाया, सपने० ॥४॥

तर्ज—पल-पल छिन-छिन

सेठ ! आज तो हम सारे मिल, आशा लेकर आये हैं।
आशा पूरण आप करेंगे, ऐसे मन हुलसाये हैं ॥ध्रुवपद॥
आप बड़े भारी हैं दानी, लोगों से सुन पाये हैं।
कुछ रुपयेहम को भी दें[1]! सुन श्रेष्ठी गर्मी लाये हैं, सेठ० ॥१॥

---

१. समाज सुधार के लिए।

अरे ! सभी तुम लुच्चे हो, कहकर यों झट कढ़वाये हैं।
इधर नौकरों ने आ करके, कोट-बूट खुलवाये हैं, सेठ० ॥२॥
पय के प्याले सेठानी ने, लाकर तुरत पिलाये हैं।
यार-दोस्त मिल आये, घंटे ढाई खेल गंवाये हैं, सेठ० ॥३॥

तर्ज—थोड़ी-थोड़ी धीरज राखो हो तपसण जी !

अब खाने का टाइम आया, सेठानी ने थाल सजाया ॥ध्रुवपद॥
नौकर आया एक बुलाने, भूख नहीं चलूं कैसे खाने ?
कहता ऐसे सेठ सिधाया, अब० ॥१॥
आकर बैठा है गद्दी पर, भूख न भूख न कहता फिर-फिर ।
स्त्री ने कर मनुहार खिलाया, अब० ॥२॥
खा-पी सेठ और सेठानी, बैठे झूले पर मनमानी ।
बात कर रहे हर्ष सवाया, अब० ॥३॥
घर वालों के खा लेने पर, शेष बचा भोजन कुछ पाकर ।
क्षुधित भिखारी ने सुख पाया, अब० ॥४॥

तर्ज—अखियां मिला के

खुश मन खाकर रंक कुएं पर, जाकर सोया ॥ध्रुवपद॥
मिलते ही आंख सपना, आना एक शुरू हुआ है।
लक्षाधिप सेठ का पद मानो ! मुझको मिल गया है, खुश०॥१॥
बंगले की छवि है भारी, बच्चे वहां खेल रहे हैं।
गाड़ी तैयार खड़ी, चौतर्फ संतरी टहल रहे हैं, खुश० ॥२॥
देखा था खेल जो-जो, वह सब सपने में आया ।
खाकर के खाना झूले बैठकर, मन मोद मनाया, खुश० ॥३॥

तर्ज—रहमत के बादल छाये

सेठानी आ गयी, इतने में प्रेम दिखाती ॥ध्रुवपद॥
आ झूले पर बैठ गयी है, कमी जगह की फील हुई है ।
बोली वह रंग रचाती, सेठानी० ॥१॥
सरको कुछ तुम है संकड़ाई, सरक गया वह भोला भाई ।
फिर सरको-सरको गाती, सेठानी० ॥२॥

तर्ज—हीरा जिगरी का

पड़ गया कुएं में, आखिर मूढ़ गंवार ॥ध्रुवपद॥
न रहा बंगला न रही वाड़ी, न रहा झूला न रही प्यारी ।
कर रहा हाहाकार, पड़ गया० ॥१॥
आ किस ही ने काढ़ा बाहर, अब देखो तुम जरा गौरकर ।
है स्वप्न-तुल्य संसार, पड़ गया० ॥२॥
जो माया से मोह करोगे, नरककूप में तुरत गिरोगे ।
दुख का जहां न पार, पड़ गया० ॥३॥
गुरुकृपया यह वर्णन गाया, शहर बम्बई में मन भाया ।
'धन मुनि' ने धर प्यार, पड़ गया० ॥४॥

मणि छत्तीसवां

तीन फल

जंगल में पहरा लगाते तीन मित्रों ने क्रमशः तीन फल खाये—राजफल, रत्नफल और काराफल। पहला राजा बना, दूसरे की आंखों से मोती और मुख से हीरे गिरने लगे तथा तीसरा कैद में जा गिरा। राजफल के समान साधुपना है, रत्नफल के तुल्य श्रावकपना है और काराफल के सदृश कामभोग है।

तर्ज—दिल्ली चलो

क्या बनोगे, क्या बनोगे, क्या बनोगे जी ?
राजा-सेठ बनोगे या कैदी बनोगे जी ? ।।ध्रुवपद।।

जैसे कर्म करोगे वैसा ही पद पाओगे,
बोओगे तुम बीज वैसा ही फल खाओगे।
तीन किस्म के फल हैं, किसका ग्रहण करोगे जी ? राजा० ।।१।।

तीन मित्र धन के लिए परदेश सिधाये हैं,
अस्त हो गया सूर्य वृक्ष तल आसन लाये हैं।
पूछ रहे अब कौन-कौन कब पहरा दोगे जी ? राजा० ।।२।।

कहा निपुण ने सबसे पहले चौकी दूंगा मैं,
सुंदर बोला मध्य रात में खबर करूंगा मैं।
कहा वरुण ने जब तुम दोनों निद्रा लोगे जी, राजा० ।।३ ।।

तर्ज—रहमत के बादल छाये

दोनों ही सो गये, करता है निपुण रखवारी ।।ध्रुवपद।।

रात प्रहर अंदाज गई है, तरु से यों आवाज हुई है।
आऊं यदि बने आहारी, दोनों० ।।१।।

है तू कौन ? राजफल हूं मैं, भक्षक को नृप पदवी दूं मैं।
पर हूं कडुआ अति भारी, दोनों० ।।२।।

आ भैया ! चुपके-सी आ तू, खा लूंगा मत देर लगा तू ।
आ गिरा है फल गुणकारी, दोनों० ॥३॥

तर्ज—दुनिया में बाबा

चाकू से छीला, मुंह में तुरत फिर डाला ॥ध्रुवपद॥
निंब न कड़ुआ उसके आगे, कटुक गडूची कटुता त्यागे ।
लेकिन वच संभाला, चाकू० ॥१॥
खाया फल सारा का सारा, आया अथ सुंदर का वारा ।
सज्जन हुआ तत्काला, चाकू० ॥२॥
लाठी लेकर घूम रहा है, आऊंगा यों शब्द हुआ है ।
मैं न टलूंगा टाला, चाकू० ॥३॥
नाम रत्नफल मैं कहलाता, बिल्कुल फीका स्वाद धराता ।
हूं लेकिन गुनवाला, चाकू० ॥४॥

तर्ज—चले आना हमारे अंगना

मुझे चीर करके, खा ले ! प्यार धर के,
तुझे कर दूंगा भारी धनवान॥ध्रुवपद॥
रोने से मोती झरेंगे नयन से,
हंसने से हीरे गिरेंगे वदन से-२ ।
सुंदर बोला सुविचार, आजा कर लूंगा आहार ।
मुझे कर दे तू भारी धनवान-२ ।
तुझे चीर करके, खाऊं प्यार धर के, मुझे०॥१॥
कहते ही रत्नफल नभ तल से आ गया,
निःस्वाद था किन्तु सुंदर तो खा गया-२ ।
छोटा मित्र उठकर, प्रहरी बन गया इधर, मुझे० ॥२॥

तर्ज—राधेश्याम

इतने में आवाज आ गयी, अरे वरुण मैं आता हूं ।
कारागृह की पीड़ा देता, काराफल कहलाता हूं ॥
यों कहकर मिसरी-सा मीठा, परम रसीला फल आया ।
खुशबूदार निहार अनूठा, वरुणकुंवर विस्मय पाया ॥१॥

तर्ज—जब तुम ही चले परदेश

किया थोड़ी देर विचार, वदन में वार, वरुण के आया ।
फल लेकर फौरन खाया ।। ध्रुवपद ।।
क्या फल से कारा मिलती है, यह बात सही अनमिलती है ।
मन ही मन में ऐसा घड़ा लगाया, फल० ।।१।।
सब ही उठ सुवह सिधाए हैं, चलकर एक पुर में आए हैं ।
बुढ़िया के घर ठहरे हर्ष सवाया, फल० ।।२।।
सुंदर हंस हीरा लाया है, दोनों ने विस्मय पाया है ।
पूछा उसने सच्चा हाल सुनाया, फल० ।।३।।

तर्ज—पिया घर आजा

आटा, घी, गुड़ लेने को, लेकर निपुण वह हीरा,
नगरी में आया-आया, नगरी में आया ।।ध्रुवपद।।
उसी रोज उस पुर का राजा मर गया-मर गया,
राज-छत्र आशीष निपुण के खुल गया-खुल गया ।
गज गुल-गुल हय-हिंसारव[1],
चामर लगे हैं चलने, राजा वनाया, आया, नगरी० ।।१।।
राह वहुत देखी पर निपुण न आया है, आया है,
ले फिर हीरा वरुण कुमार सिधाया है, सिधाया है ।
एक हाट पर आकर के,
सामान लेकर हीरा, उसने बंटाया-आया, नगरी० ।।२।।
दुकानदार ने कोटवाल से कह दिया-कह दिया,
कोटवाल ने तस्कर जान पकड़ लिया-पकड़ लिया ।
कारागृह में रक्खा है,
दिल में वरुण के भारी, आश्चर्य छाया-आया, नगरी० ।।३।।

तर्ज—आजादी का दीवाना

राह देख कर हार गया पर, वरुण न आया है ।
सुंदर ने सामान जुटाकर खाना खाया है ।।ध्रुवपद।।

---

१. गौ के स्तनों से दूध की धारा छूटी ।

खा-पीकर सुंदर बुढ़िया से, लगा गप्प करने।
हीरे लख बुढ़िया के दिल में, लालच छाया है, राह०॥१॥
रात समय कर आग्रह घर में, सुंदर को रक्खा।
निद्रा में ले हीरे कुएं में धमकाया है, राह० ॥२॥
घोड़े का असवार एक नर, नभ उड़ता आया।
लख सुंदर को संकट में, दिल करुणा लाया है, राह०॥३॥

तर्ज—फल खिला दे रे बाबा

घोड़े चढ़ जा रे बाबा, बाहिर आजा, मत कर देरी ॥ध्रुवपद॥
अजब-गजब है घोड़ा मेरा, कष्ट हरेगा तेरा।
चढ़ चाहे उड़जा रे बाबा! बाहिर० ॥१॥
चढ़कर राजसभा में आया, रोका पंथ न पाया।
घोड़ा गरजा रे बाबा ! बाहिर० ॥२॥
धूमधाम कर सभी भगाए, लोग अचंभा पाए।
नृप ने बरजा रे बाबा ! बाहिर० ॥३॥

तर्ज—हीरा मिसरी का

दोनों मित्र मिले, हो रहा जय-जय कार ॥ध्रुवपद॥
नृप ने बेहद प्रेम दिखाया, नगरसेठ का पद बकसाया।
खूब किया सत्कार, दोनों० ॥१॥
किंतु वरुण का पता न तिल भर, फिक्रकर रहे दोनों सहचर।
आया इधर तलार, दोनों० ॥२॥
साथ वरुण था चौंका नरवर, कहा पूछने पर सब व्यतिकर।
विस्मय हुआ अपार, दोनों० ॥३॥
राजा ने फौरन छुड़वाया, उपनय को इस तरह मिलाया।
विज्ञों ने सुविचार, दोनों० ॥४॥

तर्ज—राधेश्याम

तीन मित्र सम इस दुनिया में, तीन तरह के जीव कहे।
तरुतल वास समान मनुज भव, भावी के वस प्राप्त हुए।
पहले फल सम दुष्कर-संयम, जो भाई अपनाते हैं।
सविधि पाल लेते हैं, वे शिव सौख्य अनूठा पाते हैं ॥१॥

फल द्वितीय समान अणुव्रत, जो भविजन आदरते हैं।
देव-सुखों में झिलकर क्रमशः, वे भी शिवसुख वरते हैं।
बुढ़िया सम पाखंडी यदि, भ्रम कुएं में धमका देते।
ज्ञान रूप घोड़े से सद्गुरु-खेचर उन्हें बचा लेते ॥२॥
फल तृतीय सम काम-भोग हैं, रसलंपट जो खाते हैं।
नरक-निगोदमयी कैदों में, वे नर संकट पाते हैं।
सुनकर यह वर्णन भवि लोगों ! भोगों से दिल दूर करो!
सद्गुरु-कृपया 'धन मुनि' कहता[1], भवसागर से पार तरो! ॥३॥

१. वि० सं० २००४ घाटकोपर (बंबई)।

मणि सैंतीसवां — विचिकित्सा

बाप की कही हुई विधि के अनुसार कच्चे सूत का छींका एवं अग्निकुंड तैयार करके श्रेष्ठि पुत्र आकाशगामिनी विद्या साधने लगा। लेकिन शंका होने से साध न सका। चोर आया और मंत्र पढ़कर आकाश में उड़ गया। इधर सेठ का बेटा चोर के रूप में पकड़ा गया। फिर चोर ने छुड़ाया। तत्व यह है कि करनी के फलों में शंका मत करो !

तर्ज—फिक्र में बैठे हो ?

करनी के फलों में तुम, शंका न कभी करना।
बेशक फल मिलते हैं, प्रभु का यह उच्चरना ॥ध्रुवपद॥
फलती न कदा नारी, त्योंही खेती-बाड़ी।
लेकिन इस करनी का, निःसंशय है फलना, करनी०॥१॥
पुर एक मनोहर था, श्रेष्ठी वहां सागर था।
नानाविध यत्नों से, हुआ सुत का अवतरना, करनी०॥२॥
अंतिम लख के अवसर, लड़के को बुलवा कर।
कर प्यार कहा रे सुत ! तू ध्यान जरा धरना! करनी०॥३॥

तर्ज—हैदराबाद चलो !

अंदरूनी बातअब मैं, तुझको बतला रहा हूं।
तुझको बतला रहा हूं, परभव में जा रहा हूं ॥ध्रुवपद॥
कुलक्रम से चलती आयी, थी मेरे पास छिपाई।
विद्या आकाशगामिनी, तुझको सिखला रहा हूं, दिल की० ॥१॥

तर्ज—राधेश्याम

गहरे जंगल में जाकर, फिर अग्निकुंड तू सुलगाना।
लेकर कच्चा सूत पुत्र ! तू छींका उसका लटकाना।

बाद यथाविधि जाप मंत्र का, करके छींके पर धर पैर।
बन के विद्यावान खुशी से, करना नभमंडल की सैर ॥१॥

तर्ज—धर्म पर डट जाना

सीख यों देकर के, तजे सेठ ने प्रान।
मंत्रविधि कह करके, तजे सेठ ने प्रान ॥ध्रुवपद॥
कुंवर भीषण जंगल में आया, साथ सामान सभी वह लाया।
हर्ष मन में धरके, तजे० ॥१॥
सूत[1] का छींका एक बनाया, अग्नि का कुंड तुरत सुलगाया।
सकल विधि आचरके, तजे० ॥२॥
मंत्र का पूरण जाप किया है, पग छींके पर एक दिया है।
फिर सोचा डरके, तजे० ॥३॥

तर्ज—दिल्ली चलो !

क्या करूंगा, क्या करूंगा, क्या करूंगा मैं।
कच्चा छींका टूट गया तो क्या करूंगा मैं ॥ध्रुवपद॥
प्रज्वलता यह अग्निकुंड कितना विकराल है,
अगर गिर गया तो फिर जीने का न सवाल है।
विद्या के बदले घर से भी अलग पड़ूंगा मैं, कच्चा०॥१॥
लगा सोचने फिर विद्या है बाप की कही,
अगर टूट यह जाता तो वे कहते ही नहीं।
सिद्ध करूंगा विद्या अब तो नहीं डरूंगा मैं, कच्चा०॥२॥
छींके पर जा पैर धरा फिर शंका आ गई,
श्रेष्ठि-पुत्र की बुद्धि ऐसे डगमगा गई।
शंका के फल भी अब संमुख ला धरूंगा मैं, कच्चा० ॥३

तर्ज—सारी दुनिया में दिन

एक तस्कर का इतने में आना हुआ,
काफी धन-माल का साथ लाना हुआ ॥ध्रुवपद॥
देख पूछा अरे भाई! क्या कर रहा है?

---

१. कच्चे सूत का।

पैर छींके पै धर फिर उतर क्यों रहा ?
सिद्धि विद्या की करता हूं गाना हुआ, एक० ॥१॥
बोल किसने बताई है विद्या तुझे,
तातजी ने कृपा कर बताई मुझे ।
जाप कर चोर का पग बढ़ाना हुआ, एक० ॥२॥
हो गयी सिद्ध विद्या तुरत उड़ गया,
श्रेष्ठिनन्दन खड़ा देखता ही रहा,
राजपुरुषों का तस्कर बनाना हुआ, एक० ॥३॥

तर्ज—आजादी का दीवाना था

हथकड़ियां पहना कर, राजसभा में लाए हैं,
शंका के फल प्रगट देख लो कैसे पाये हैं ॥ध्रुवपद॥
पूछा है महिपति ने, इसने किया नकारा है ।
शूलि चढ़ा दो फौरन ऐसे, शब्द सुनाए हैं, हथकड़ियां० ॥१॥
शिला दिखाकर चोर बोला, छोड़ दो इसे !
वरना सब को मार दूंगा, यों धमकाए हैं, हथकड़ियां० ॥२॥

तर्ज—राधेश्याम

छोड़ दिया है सेठ-पुत्र को, उदासीन घर आया है ।
इस वर्णन में शंका के फल क्या हैं, यह दिखलाया है ।
सुन कर इसको करनी के, फल में शंका न कभी लाना !
'घाटकोपर'' में 'धन मुनि' की शिक्षा धारण कर तर जाना ॥१॥

मणि अड़तीसवां सत्संग का फल

जूता चुराने की नीयत से चोर मुनिजी के व्याख्यान में बैठा था। मुनिजी ने दो सखियों का दृष्टांत सुनाकर कुछ नियम करने के लिए कहा। चोर ने ऊंट-हाथी घोड़े आदि न खाने का नियम लिया। फलस्वरूप प्राण बचे और श्रावक धर्म की प्राप्ति हुई। इस कथा में सत्संग की महिमा वर्णित है।

तर्ज—कलदार रुपइया चांदी का

हैं सब शास्त्रों का सार यही, सत्संग तिराने वाला है।
सत्संग तिराने वाला है, शिव महल दिखाने वाला है ।।ध्रुवपद।।
सत्संगति में जो आएगा, कुछ तो वह लेकर जाएगा।
एक वर्णन परम रसाला है, सत्संग० ।।१।।
व्याख्यान संत जी वांच रहे, श्रोताजन तन-मन राच रहे।
आ खड़ा चोर मतवाला है, सत्संग० ।।२।।
जूतों पर ध्यान लगाया है, लेने को दिल ललचाया है।
मुनि ने एक हेतु निकाला है, सत्संग० ।।३।।

तर्ज—रहमत के बादल छाए

सखियां दो स्कूल में, पढ़ती थीं प्रेम सवाया ।।ध्रुवपद।।
क्रमशः दोनों यौवन पाई, शादी कर पति के घर आई।
पहली का धन विललाया, सखियां० ।।१।।
छोटी के घर योगी आया, खुश हो पारसमणि बकसाया।
उस मणि ने रंग लगाया, सखियां० ।।२।।
प्रथम सखी मिलने घर आयी, दुख की सारी बात सुनाई।
अपरा ने धैर्य ! बंधाया सखियां० ।।३।।

तर्ज—धर्म पर डट जाना

लोह ले आ जाना, कर दूंगी दुख दूर।
न मन में शर्माना, कर दूंगी दुख दूर ।।ध्रुवपद।।

लोह की कुड़छी लेकर आयी, साथ पारस के तुरत भिड़ायी ।
पर लोह न बदलाना, कर० ॥१॥
पति से बात कही घबराकर, भिड़ाया उसने जंग हटाकर ।
सोना चमकाना, कर० ॥२॥
सुनकर वर्णन यह सुखकार, ज्ञान लो! मन का काट उतार ।
नियम फिर अपनाना, कर० ॥३॥

तर्ज—जमाना रंग बदलता है

नियम से होता है कल्यान, नियम से होता है निर्वान ॥ध्रुवपद॥
चोरी करना भूलकर, सुनने लगा बखान ।
नियम लोग सब कर रहे, निज-निज शक्ति प्रमान ।
करूं क्या ? कर रहा चोर बयान, नियम० ॥१॥
यथा शक्ति कर नियम तू, गुरु बोले सुविचार ।
ऊंट बैल गज अश्व का, न करूंगा आहार ।
नियम ले आया खुश असमान, नियम० ॥२॥
उत्सव का लख के समय, चोरों ने एक बार ।
मंदिर माता का तुरत, फाड़ा है धर प्यार ।
मिले वहां भूषण मूल्य महान, नियम० ॥३॥

तर्ज—अखियां मिला के

भूषण लेकर बांट बराबर, बांधी गठड़ियां हो० ॥ध्रुवपद॥
चीनी के हाथी घोड़े काफी इत नजर चढ़े हैं ।
लालायित होकर खाने के लिए, मन मोद भरे हैं, भूषण० ॥१॥
इतने में एक चोर को, व्रत का हो आया सुमरिन ।
अरे! मैं तो नहि खाता मेरे नेम है, बस! छोड़े फौरन, भूषण० ॥२॥
मूरख है तू तो कह यों, तीनों ने सारे खाये ।
खाते ही सोए, उन पर जंग था, धन ले न पाये[1], भूषण० ॥३॥

तर्ज—हीरा मिसरी का

विस्मय पाया है, अब तो चौथा चोर ।
विस्मय पाया है, देख नियम का जोर ॥ध्रुवपद॥

---

१. मर गये ।

सारा धन ले निज घर आया, जाकर गुरु से हाल सुनाया ।
दिल लगी धर्म की दौड़, विस्मय०॥१॥
गुरु ने धर्म-मर्म समझाया, धन सारा वापस लौटाया ।
श्रावक बना चकोर, विस्मय०॥२॥
जन्मांतर शिव शर्म वरेगा, 'धन मुनि' जो सत्संग करेगा ।
वह बनेगा त्रिभुवन-मोड़', विस्मय०॥३॥

मणि उनचालीसवां — अद्‌भुत परीक्षा

एक ठग से राजा ने लाख-लाख रुपयों में चार अंधे खरीदे। एक ने मोती के अन्दर खून का अंश कहा, दूसरे ने घोड़े की मां का वियोग बतलाया, तीसरे ने रानी को दासी-पुत्री और चौथे ने राजा को तेली का पुत्र कहा। दर्शक विस्मित हुए। तत्त्व यह है कि दुनिया में ऐसे-ऐसे परीक्षक तो मिल जाते हैं लेकिन धर्म को परखने वाले विरले ही हैं।

तर्ज—दुनिया में बाबा

विरले हैं जग में, धर्म परखने वाले।
विरले हैं जग में, तत्त्व परखने वाले ।।ध्रुवपद।।
सोना-चांदी परख रहे कई, हीरे-पन्ने निरख रहे कई।
मोती परखने वाले, विरले०।।१।।
अश्व परखने वाले हैं कई, मनुज परखने वाले हैं कई।
अजब तरकने वाले, विरले०।।२।।

तर्ज—जिया बेकरार है

शहर एक गुलजार है, सभी तरह श्रीकार है।
एक रोज वहां जुड़ रहा, राजा का दरबार है ।।ध्रुवपद।।
चलती थी शहरों की बातें, राजा ने फरमाया हो-२।
अपने पुर की कमी कहो! सुन एक विज्ञ ने गाया हो-२, शहर०।।१।।
सभी किस्म का माल न खपता, यदि खपने लग जाए हो-२।
तो यह देश-विदेशों में प्रभु! महानगर कहलाए हो-२, शहर०।।२।।
कहा नृपति ने सुन लो! जो भी चीज न यहां बिकेगी हो-२।
मुंह मांगी कीमत देकर, सरकार उसे ले लेगी हो-२, शहर०।।३।।

तर्ज—ओ चंदे! देश पिया के जा!

एक दिन एक ठग ने आ-२।
करने ठगाई चौरास्ते में, ऐसा जाल रचा ।।ध्रुवपद।।

अंधे बाबे चार बिठाये, एक-एक के दाम लगाए।
रुपये लाख अहा! एक०॥१॥
माल देखने ग्राहक आते,सुनकर कीमत सब फिर जाते।
ग्राहक है न मिला, एक०॥२॥
राजसभा में ठग चल आया,बोला माल न विकने पाया।
मैं तो निराश हुआ, एक०॥३॥

तर्ज—मेरे प्रभु आओ!

क्या है बतला दे! लाके दिखला दे! इतना क्यों घबराया।
इतना क्यों घबराया, भैया! इतना क्यों अकुलाया,
यों राजा ने गाया, क्या है ॥ध्रुवपद॥
अंधे उसने खड़े किए, ताज्जुब सारे लोग हुए-२।
कीमत रुपये लाख कहे नृप ने तुरत खरीद लिए-२, क्या है०॥१॥
ठग ने अपना पंथ लिया, नृप ने इनको स्थान दिया-२।
एक रोज गुन पूछे फिर, बोले अंधे खुश होकर-२, क्या है०॥२॥
मोती-अश्व परीक्षक हैं, नारी-नर के वीक्षक हैं-२।
सुन विस्मित महिपाल हुआ,अद्भुत मोती एक दिया-२ क्या है०॥३॥

(पहला अंधा बोला)

तर्ज—किस फिक्र में बैठे हो?

सागर के किनारे पर, भारी एक युद्ध हुआ।
लाखों ही सुभट कटे, लोही दगचाल बहा ॥ध्रुवपद॥
ले मांस को गीध उड़ा, सहसा इत मेघ पड़ा।
मुख सीप के विन्दु गिरा, लोही कुछ साथ रहा, सागर०॥१॥
वह चमक रहा अंदर, लाली जो आती नजर।
बस, फोड़ा जल निकला, सबने वाह-वाह! कहा, सागर०॥२॥

तर्ज—मेरा रंग दे तिरंगी चोला

इतने में घोड़ा आया, परखाने नृप हुलसाया ॥ध्रुवपद॥
तुरत परीक्षक उठकर आया, देख-भाल कर स्पष्ट सुनाया।

इसे मां ने स्नेह दिखाया[1], इतने० ॥१॥
नृप ने सौदागर बुलवाया, पूछा व्यतिकर सच्चा पाया।
लग्न सबके विस्मय छाया, इतने० ॥२॥

तर्ज—हीरा मिसरी का

परीक्षा रानी की, अब करिए धर प्यार, परीक्षा।
यों बोला वसुधाधार, परीक्षा० ॥ध्रुवपद॥
गया तीसरा पा नृप शासन, स्नान कर रही रानी उस छिन।
बोली बिना विचार, परीक्षा० ॥१॥
यह नालायक कौन आ रहा, बस वापस आ स्पष्ट गा रहा।
जहां जुड़ा दरबार, परीक्षा० ॥२॥
है रानी दासी की लड़की, दी राजा ने जाकर धमकी।
प्रगटा सत्य उदार, परीक्षा० ॥३॥
बेशक हूं दासी की जाई, पुण्यों से रानी कहलाई।
अब जो चाहें तैयार, परीक्षा० ॥४॥

तर्ज—पिया घर आजा

देख तजुर्वा तीनों का, खुश-खुश हुआ है मन में,
नगरी का राजा-राजा, नगरी का राजा ॥ध्रुवपद॥
पक्का खाना कच्चे से करवाया है-करवाया है[2],
कहा चौथे ने नृप तेली का जाया है-जाया है।
लोग अचंभा पाए हैं,
राजा ने पूछा इसका, कारण बता जा! राजा, नगरी० ॥१॥
जो राजा का होता भैया! बीज तू-बीज तू,
तो देता जागीरी करके रीझ तू-रीझ तू।
हाथी घोड़े रत्नादिक,
देकर के करता अथवा, सत्कार ताजा, राजा, नगरी० ॥२॥

---

१. जन्म के बाद इसकी मां जल्दी ही मर गयी थी अतः इसे मां का दूध नहीं मिला।

२. खिचड़े में तेल देना शुरू किया।

तर्ज—तू है प्राण पियारो

किंतु तेल में रह गया सीमित, दे न सका कुछ दान-दान।
इसी हेतु से जानी मैंने, तेली की सन्तान-तान, रोटी में ।।ध्रुवपद।।
प्रश्न किया माता से नृप ने, किसका सुत हूं ? हंस कहा उसने।
राजा का गुणवान-वान, रोटी में० ।।१।।
शीश उड़ा दूंगा सच कह तू, लाज-शर्म में अब मत रह तू।
बस ! दे दिए सत्य बयान-यान, रोटी में० ।।२।।
बेटा ! अक्ल निकल गयी मेरी[1], दे दे माफी ! मां हूं तेरी।
शरमाया महाराज-राज, रोटी में० ।।३।।
चारों को धन-मान दिया है, अपने पुर में स्थान दिया है।
अब समझो ! कर ज्ञान-ज्ञान, रोटी में० ।।४।।

तर्ज—राधेश्याम

ऐसे-ऐसे मानव जग में, अजब परीक्षा करते हैं।
अगली-पिछली बात अक्ल से, कह कह कर जय-जय वरते हैं।।
धर्म परीक्षा किए बिना, लेकिन होता कल्याण नहीं।
सब शास्त्रों का सार यही है 'धन मुनि' का फरमान सही[2] ।।१।।

---

१. तेली से प्रेम लग गया था।
२. वि० सं० २००४।

मणि चालीसवां — अन्याय का पैसा

दिल्ली पति के यहां राजपूत ने नौकरी की। बादशाह ने बारह वर्ष के बाद अपनी जेब से एक रुपया दिया। साथियों के साथ चार अनार भेजे, उनके चार लाख आए। चारों बेटे ब्याहे गए। दूसरी बार में बादशाह ने खजाने में से एक रुपया दिया ठाकुर कठिनाई से घर पहुंचे। पहला रुपया परिश्रम का था और दूसरा प्रजा से छीना हुआ।

तर्ज—रहमत के बादल

पैसा अन्याय का, ज्यादा टिकने नहिं पाता।
पैसा अन्याय का, आता है त्यों ही जाता ॥ध्रुवपद॥
द्रव्य पसीने का फलदाई, होता है समझो तुम भाई।
यों नीतिशास्त्र बतलाता, पैसा० ॥१॥
राजपूत इक दिल्ली आया, बादशाह की सेवा[1] पाया।
वर वस्त्र पहन अन्न खाता, पैसा० ॥२॥
बारह साल पूर्णता पाये, जाते देश बंधुजन आए।
पूछा क्या चलना चाहता, पैसा० ॥३॥

तर्ज—हीरा मिसरी का

मैं नहिं कर सकता, पूछे बिना प्रयान ॥ध्रुवपद॥
अरे! अगर आने नहिं पाता, भेज चीज जो भी मन चाहता।
बस! रुक गई जबान, मैं नहिं० ॥१॥
कल उत्तर दूंगा यों कहकर, बादशाह से मिला है ठाकुर।
घर वेतन का ध्यान, मैं नहिं० ॥२॥
नगदी रुपया एक मिला है, राजपूत का हिया हिला है।
दुःख हुआ असमान, मैं नहिं० ॥३॥

---

१. रोटी-कपड़े के अतिरिक्त इच्छानुसार नौकरी दे देना इस शर्त पर।

तर्ज—जब तुम ही चले परदेश

फिर भी ले रुपया एक, रखी निज टेक, न अक्षर गाया।
पर मन में गुस्सा आया ॥ध्रुवपद॥
हा! हा! हद मैंने पाप किए, फल प्रगट नजर से देख लिए।
बीत गया युग रुपया एक कमाया, पर० ॥१॥
क्या भेजूं अब इस रुपए का, क्या माल मिले एक रुपये का।
बहुत सोचकर चार अनारें लाया, पर० ॥२॥
लिख पत्र दिया जब आऊंगा, धनमाल साथ तब लाऊंगा।
ले लेना जो कुछ भी है भिजवाया, पर० ॥३॥
दाड़िम त्यों पत्र दे दिए हैं, उन सबने खुश हो ले लिए हैं।
विदा हुए शुभ समय हर्ष मन छाया, पर० ॥४॥

तर्ज—धर्म पर डट जाना

शहर एक आया है, कर रहे सब विश्राम ॥ध्रुवपद॥
धर्मशाला में पाया स्थान, हो रहा नृपति वहां हैरान।
दाह-ज्वर छाया है, कर रहे० ॥१॥
अगर रस दाड़िम का मिल जाय, रोग चौथाई अभी मिट जाय।
वैद्य ने गाया है, कर रहे० ॥२॥
कहीं से लाओ अभी अनार, लगे चाहे रुपए लाख उदार।
भृत्यगण धाया है, कह रहे० ॥३॥
लाख में एक अनार लिया है, औषध रस के साथ दिया है।
शांति नृप पाया है, कर रहे० ॥४॥

तर्ज—कलदार रुपइया चांदी का

कुछ लाभ देखकर राजा ने, फल चारों ही मंगवाए हैं।
फल चारों ही मंगवाए हैं, रुपये नगदी दिलवाये हैं[१] ॥ध्रुवपद॥
घर आकर पत्र सहित रुपये, ठाकुर के घर जा तुरत दिए।
फौरन ही महल झुकाये हैं, फल० ॥१॥
चारों ही लड़के ब्याहे हैं, पर ठाकुर तो नहीं आए हैं।
तब ऐसे पत्र लिखाये हैं, फल० ॥२॥

---

१. चार लाख।

धन काफी है अब आ जाएं ! बहुओं को दर्शन दिखलायें !
पढ़ ठाकुर विस्मय पाये हैं, फल० ॥३॥
जाना है नृप से साफ कहा, तब खोल खजाना एक रुपया ।
पकड़ाया ठाकुर धाये हैं, फल० ॥४॥

दोहे

उदासीन-से हो चले, लेकर रुपया एक ।
रास्ते में पूरा हुआ, रहने न सकी टेक ॥१॥
भूखे-प्यासे भटकते, आए अपने ग्राम ।
बहुत देर से ढूंढकर, पहुंचे आखिर धाम ॥२॥

तर्ज—रहमत के बादल छाये

मन में चकरा गए, लख घर का रंग निराला ॥ध्रुवपद॥
समाचार मित्रों से पाये, चार लाख सुन वापिस धाये ।
मालिक[1] का वदन निहाला, मन में० ॥१॥
लाख चार क्यों पहला लाया, अपर कहीं क्यों टिकने पाया ।
उड़ता ही नजर निहाला, मन में० ॥२॥
उत्तर पहला कर मजदूरी लाया, लोह कूटकर स्वेद बहाया[2] ।
था अपर खजाने वाला, मन में० ॥३॥
धन मेहनत का बरकत करता, माल मुफ्त का यों ही उड़ता ।
है तब यही सुविशाला, मन में० ॥४॥

---

१. बादशाह ।

२. मनोहर छन्द

वेष बदलाय के लुहार की दुकान जाय,
रात समैं रोज कष्ट बेहद उठाया है ।
प्रहर-प्रहर निज हाथन से लोहा कूट,
कंचन-सी काया जातें पसीना बहाया है ।
वासर बत्तीस ऐसे करके प्रयास पूर्ण,
तार भी न झूठ एक रुपया कमाया है ।
भनै 'धन' शाह कहै वोही है रुपैया वह,
याही हेत चार लाख मूल्य में विकाया है ॥१॥

तर्ज—राधेश्याम

समझ गए ठाकुर घर आए, मन में दृढ़ प्रण धार लिया।
वेहक का पैसा नहिं लूंगा, ऐसे मन मजबूत किया।।
सुन यह वर्णन समझो भव्यों ! न्याय-नीति को अपनाओ !
माटुंगा में 'धन मुनि' कहता, भवसागर से तर जाओ ! ।।१।।

वि० सं० २००४ फाल्गुन मास माटुंगा (बंबई)।

मणि इकतालीसवां — वैर का बदला

मंगल राजा चार वार निमंत्रण देकर भी कारण वश पारना न कराने से सेनका तापस क्रुद्ध हुआ। मर कर मंगल राजा श्रेणिक बना एवं सेनका उसका पुत्र कोणिक बना। पिता को कैद करके वह स्वयं गद्दी पर बैठा। आखिर राजा को आत्महत्या करके मरना पड़ा। महज गलती से भी कितना बड़ा वैर बंध गया, अस्तु !

तर्ज—अय बाबुजी !

वैर न कभी किसी से बसाना रे, कहते गुरु।
चार दिन का है नरतन ठिकाना रे, कहते गुरु ॥ध्रुवपद॥
होते वखत सहज है वैर होना,
(पर) बदला चुकाने में पड़ता है रोना।
है मुझे इस विषय पर सुनाना रे, कहते०॥१॥

तर्ज—हरिगीत

नरेश्वर जितशत्रु, नगर बसंत मंगल नंद था।
सेनका मंत्रीश-सुत कद्रूप था अतिमंद था॥
खेलते शिशु साथ मिल, इससे मजाकें सर्वदा।
मंगल कुमार विशेष करता, क्रुद्ध हो यह एकदा॥१॥

तर्ज—अखियां मिला के

घर से निकल कर, जाके कहीं पर, बनगया तापस हो-२ ॥ध्रुवपद॥
काफी खोजा है लेकिन, बिल्कुल नहिं पता मिला है।
मंगल महाराज बना है, तात इत परलोक चला है, घर से०॥१॥
वर्षों के बाद सेनका, करता तप घोर आया[1]।

---

१. मास-मास खमण तप करता हुआ।

पुरवासी लोगों ने पहचान कर, नृप को जताया, घर से०॥२॥
पूछा राजा ने भैया ! किस कारण ली है दीक्षा ?
स्वामिन्! अपमान देखकर खेल में, न रही तितिक्षा, घर से०॥३॥
नृप ने की क्षमायाचना, फिर बोला पैर पकड़कर ।
करना तू मेरे घर पर पारणा, माना है ऋषिवर, घर से०॥४॥

तर्ज—म्हारी रस सेलडियां

आया जी आया, आया है तापस करने पारना ॥ध्रुवपद॥
लेकिन उस दिन महाराज के, प्रगटी विकट विमारी ।
वैद्यों और हकीमों की वहां, भीड़ लगी थी जी भारी, आया०॥१॥
घुसने न दिया अन्दर ऋषि को, फिर जा दिया निमंत्रण ।
गया सेनका युद्ध-त्यारियां, वहां हो रही उस क्षण जी, आया०॥२॥
मास तीसरे जन्मोत्सव था, चौथे मां का मरणा ।
चार मास का भूखा तापस, हृदय क्रोध अनुसरणा जी, आया०॥३॥
पापी राजा न्योत-न्योत कर, चाहता मुझे फिराना ।
दुखदाई होऊं जन्मान्तर, ऐसा किया नियाना जी, आया०॥४॥

तर्ज—पिया घर आजा !

मंगल राजा मर करके, सम्राट् बना है श्रेणिक,
सुयश सवाया, छाया सुयश सवाया ॥ध्रुवपद॥
प्रमुख रानियां सती चेलना नन्दा है, नन्दा है[1]
अभय सुनंदा का सुत बुद्धि अमंदा है-अमंदा है ।
हुई चेलना गर्भवती[2],
पति का कलेजा खाऊं, दोहद उपाया, जग में०॥१॥
अभय सचिव ने दोहद पूरा करवाया-करवाया[3],

---

१. और भी अनेक रानियां थीं ।

२. ·········सेनका तापस का जीव गर्भ में आया ।

३. राजा श्रेणिक को सीधा सुलाकर पेट पर रक्तयुक्त मांस बांध दिया। जहां से राजा दीख सके ऐसे ऊंचे स्थान में चेलना को बिठाकर राजा का मांस काट-काटकर उसे दिया । उसने सोले बनाकर मदिरा के साथ खाया और अपना दोहद पूरा किया। मांस काटते समय राजा काफी कृत्रिम आक्रन्दन करता रहा एवं मूच्छित-सा हो गया ।

साथ जन्म के रानी ने शिशु गिरवाया-गिरवाया।
कुर्कट अंगुलि कुरड़ गया,
इस ही से राजकुंवर वह, कुणिक[1] कहाया, जग में० ॥२॥
श्रेणिक को हैरान खूब ही करता था-करता था,
बात-बात में आ-आकर वह लड़ता था-लड़ता था।
पूछा प्रभु[2] से राजा ने,
सारा ही पिछला किस्सा, प्रभु ने सुनाया, जग में० ॥३॥

तर्ज—धर्म पर डट जाना

शत्रु बन आया है, लेगा तेरे प्रान, शत्रु ॥ध्रुवपद॥
वैर का बदला देना होगा, कैद का दुख भी सहना होगा।
भूप घबराया है, लेगा० ॥१॥
कुणिक के मन में प्रगटा पाप, वर्ष सत्तर का हो गया बाप।
मृत्यु नहिं पाया है, लेगा० ॥२॥
न जाने कब यह बाप मरेगा, कब फिर मुझको राज्य मिलेगा।
अधिक अकुलाया है, लेगा० ॥३॥

तर्ज—म्हारा सतगुरु

मिलकर दसों भाइयों से कोणिक[3] ने, जुल्म किया है जी।
जुल्म किया है जी, पिता को पकड़ लिया है जी ॥ध्रुवपद॥
पूर्व वैर वश मना रहा है, मन में खुशी अपार।
बाप कैद में पड़ा बिलखता, उसका है न विचार, मिलकर० ॥१॥
साथ पिता के मिलने पर भी, ! लगा दिया प्रतिबंध।
मात्र चेलना मिल सकती थी, अजब कर्म के फंद, मिलकर० ॥२॥
भोजन पर भी थी निगरानी, गुप-चुप रानी आप।
यदा-कदा जाकर कुछ देती, था बेहद संताप, मिलकर० ॥३॥

---

१. अशोकवाटिका में उकरड़ी पर डलवा दिया। वहां प्रकाश हो गया अतः कुणिक का दूसरा नाम अशोक चन्द हुआ।
२. महावीर भगवान् से।
३. काली-सुकाली-महाकाली आदि।

तर्ज—राधेश्याम

पड़ा कैद में श्रेणिक राजा, कोणिक मगधाधीश हुआ।
धूम धाम से दसों भाइयों ने मिलकर अभिषेक किया ॥१॥
माताजी के दर्शन करने, बड़े रोब से आया है।
मुंह फिराया माता ने, कोणिक ने प्रश्न उठाया है[1] ॥२॥
माता इस सुख की वेला में, खिन्न भाव क्यों लाई है।
माता ने श्रेणिक राजा की, सारी बात सुनाई है ॥३॥
'पहले तुझको दिया कलेजा, बाद जन्म के संभाला।
लोही-रस्सी चूस-चूसकर, बड़ी मुश्किली से पाला ॥४॥
उस उपकारी पूज्य पिता को, पापी तूने कैद किया।
उसी दुःख से बिलख रही हूं, मान रही हूं विफल जिया ॥५॥

तर्ज—रहमत के बादल छाये

सुनते ही दौड़कर, नृप कुणिक कैद में आया।
सुनते ही दौड़कर, उर पितृ-प्रेम प्रगटाया, सुनते ॥ध्रुवपद॥
नृप ने जाना हनने आया, विष खा जीवन दीप बुझाया।
कोणिक बेहद चिल्लाया[2], सुनते० ॥१॥
इस वर्णन पर खूब गौर कर, वैर-जहर से रहना डरकर।
'धन' ने उपदेश सुनाया, सुनते० ॥२॥
दो हजार चार शुभ संवति, फाल्गुन कृष्ण चौथ की है तिथि।
"माटुंगा" स्थान सुहाया, सुनते० ॥३॥

---

१. ग्रन्थों में यह कथा इस प्रकार भी मिलती है—पिता को कैद करने के बारह वर्ष बाद एक दिन कोणिक राजा भोजन कर रहा था एवं गोद में पुत्र उदायन बैठा था। अचानक बालक ने पेशाब किया, वह सारा थाली में गया। फिर भी पुत्र-प्रेम वश बालक को हिलाया तक नहीं और उसी थाली में स्वयं खाता रहा। बीच ही में हंसकर चेलना से पूछा—मां ! मेरे जैसा पुत्र प्रेमी पिता क्या और भी कोई हो सकता है ? माता ने कहा—कुलांगार ! तू क्या पुत्र प्रेमी है। सच्चा पुत्र प्रेमी तो तेरा पिता था, जिसने तेरे लिए अपना कलेजा दिया और जन्म के बाद तेरे लोही-रस्सी चूस-चूसकर तुझे बड़ी मुश्किल से पाला।

२. शोकाकुल होकर वहां नहीं रहा एवं अपनी राजधानी चंपा नगरी को बनाया।

मणि बयालीसवां   अन्याय के फल

अभय मंत्री ने बुद्धि बल से प्रद्योतन को भगा दिया। प्रद्योतन ने वेश्या द्वारा छलकर अभय को जन्म कैद किया। अभय ने समय-समय पर प्राप्त एक साथ चार वरदान मांगे, राजा को हार कर उसे मुक्त करना पड़ा। आखिर अभय राजा को पागल के रूप में पकड़ कर ले गया। अन्यायी की बेइज्जती ही होती है यह इस वर्णन का हार्द है।

तर्ज—तुम हो देवता मैं हूं पुजारी

सुख नहिं पाते अन्यायी, शास्त्रों ने साफ सुनायी।
दुख पाते हैं अन्यायी, शास्त्रों ने साफ सुनाई ।।ध्रुवपद।।
रावण ने बदनामी पायी, दुर्योधन ने जान गंवाई।
अपकीर्ति कंस की छाई, शास्त्रों ने० ।।१।।
मालवपति प्रद्योतन राजा, था जिसका बलवाहन ताजा।
की राजगृह पै चढ़ाई, शास्त्रों ने० ।।२।।
श्रेणिक नृप मन में घबराया, अभय कुंवर से हाल सुनाया।
सुन उसने अक्ल लड़ाई। शास्त्रों ने० ।।३।।
पुर बाहिर मोहरें गड़वाई, प्रद्योतन की सेना आई।
नगरी चौतर्फ घिरायी, शास्त्रों ने० ।।४।।
मंत्री ने एक चिट्ठी दी है, फौज तुम्हारी फूट गई है।
धन के लालच में आयी, शास्त्रों ने० ।।५।।
भूमि[1] खुदाकर निश्चय करना, पकड़े जाओगे तुम वरना।
हित जान बात जतलायी, शास्त्रों ने० ।।६।।

तर्ज—श्री महावीर प्रभु के चरणों में

मोहरें देख डरा प्रद्योतन, रातों रात पलाया है।
उज्जयनी आकर पता लगाया है ।।ध्रुवपद।।

---

१. अपने कैंप के निकट।

निकली है ठगाई, चालाकी अभय की पाई।
अति शर्म नृपति को आयी।
हो क्रुद्ध शहर में पड़ह बजाया है, मोहरें० ॥१॥
जा राजगृह पुर, मंत्रीश अभय को छलकर,
जो लाए यहां पकड़कर,
दिल चाही दूंगा उसको माया है, मोहरें० ॥२॥

तर्ज—तू है प्रान पियारो म्हारो

इक वेश्या ने पड़ह उठाया, हो मन में हुसियार-यार।
कपट-श्राविका बनकर आयी, राजगृह घर प्यार-प्यार०॥ध्रुवपद॥
साथ युवतियां दो वह लाई, सतियांजी के पास ठगाई।
की सामायिक धार-धार, इक० ॥१॥
दर्शन करने मंत्री आया, भक्ति देखकर प्रश्न उठाया।
था उत्तर तैयार-यार, इक० ॥२॥
ये मुझ पुत्र वधू मन भाई, भावी वश विधवापन पाई।
अब लेंगी संयम भार-भार, इक० ॥३॥
अभय प्रभावित हो घर लाया, खा-पी धार्मिक वाद चलाया।
प्रगट है प्रेम अपार-पार, इक० ॥४॥

तर्ज—आजादी का दीवाना

मंत्री को भी एक रोज, निज स्थान बुलाया है।
धर्म ठगाई समझ न पाया, फौरन आया है ॥ध्रुवपद॥
कर मनुहार कुमार अभय को, करवाया भोजन।
पानी में कुछ चीज पिला, बेहोश बनाया है, मंत्री० ॥१॥
तुरत पकड़ ला प्रद्योतन के, कर दिया हाजिर।
कैद हुआ मंत्री छुटकारा, कठिन कहाया है, मंत्री० ॥२॥
चार बार में प्रद्योतन से, चार लिये वरदान[1]।

---

१. चार वरदान के कारण
१. मित्र राजा के लड्डुओं में विष था, अभय ने बताया।
२. अनल गिरी हाथी पागल हुआ। विधि युक्त वीन बजवाकर वश किया।
३. आग लगने पर शिवादेवी के स्नान-जल से शांति करवाई।
४. मरी का रोग होने पर शांति प्रभु का जाप करवाया।

एक साथ चारों ही मांगें, नृप घबराया है, मंत्री० ॥३॥

उक्तंच— स्थितोऽनल गिरौ, मेढी भूतेत्वयि शिवाङ्कगः।
अहं विशाम्यग्नि भीरुरथ-दारुकृतां चिताम् ॥१॥

अर्थ—अनलगिरी हाथी के ऊपर शिवा रानी की गोद में बैठूंगा एवं, तुम्हें महावत बनाकर अग्नि भीरु रथ की लकड़ियों द्वारा रची हुई चिता में अग्नि स्नान करूंगा।

तर्ज—नरम बनो जी नरम बनो

छोड़ दिया जी छोड़ दिया, तुरत अभय को छोड़ दिया ॥ध्रुवपद॥
बोला मंत्री कर गर्जन, सुन रे राजा प्रद्योतन !
धर्म ठगाई रचवाकर, कैद किया है मुझे पकड़।
अब मैंने भी प्राण धार लिया, तुरत० ॥१॥
पकड़ तुझे ले जाऊंगा, सबको स्पष्ट जताऊंगा।
रहना हो करके होशियार, कह यों आया अपने द्वार।
नृप ने गौर न खास किया, तुरत० ॥२॥

तर्ज—बन जोगी मन भटकाई ना !

अथ वेष बदलकर आया है, दो साथ युवतियां लाया है ॥ध्रुवपद॥
नगरी में अच्छा स्थान लिया, बालाओं ने श्रृंगार किया।
डेरा गोखों पर डाल दिया, लख प्रद्योतन ललचाया है, अथ० ॥१॥
एक दूती गुप्त चलाई है, मिलने की बात कहाई है।
दी अष्टम दिन की साई है[1], फिर अद्‌भुत जाल बिछाया है, अथ०॥२॥
प्रद्योतन जैसा नर लाकर, उसे कृत्रिम पागल कर जाहिर।
ले जाने लगे डाक्टर के घर, अष्टम दिन नृपति फंसाया है, अथ०॥३॥

तर्ज—आजा-आजा-आजा

पकड़ा-पकड़ा, पकड़ा गया प्रद्योत, बना है विवश बेचारा।
दिन दूसरे बाजार के बिच में से निकारा ॥ध्रुवपद॥
चिल्ला रहा मैं हूं, सही महाराज प्रद्योतन-२।
ले जा रहा मुझको पकड़, यह छल का पिटारा, दिन० ॥१॥

---

१. आठवें दिन भाई गांव जाएगा अतः उस दिन हम आपसे मिल सकेंगी।

आकर मुझे कोई, बचाओ तुम अरे भाई-२ ।
पर जान कर पागल, किसी ने कुछ ना विचारा, दिन०।।२।।
लाकर किया हाजिर, भरे दरबार के अन्दर—२ ।
श्रेणिक ने आंखें लालकर पापी को निहारा, दिन०।।३।।

तर्ज—राधेश्याम

अरे नीच ! परधन परनारी, लालच के फल देख जरा ।
बना चोर के माफिक कैदी, हीन-दीन हो आज खड़ा।।
आगे पर अन्याय न करना, यों काफी फिटकारा है।
छोड़ दिया जिंदा घर आया, कर न सका चुंकारा है।।१।।
इस वर्णन को दिल में स्मर कर, दगाबाजियों से डरना !
परधन-परनारी पर भैया ! बुरी नजर तुम मत धरना !
दो हजार पांच शुभ संवत, गांव "बोरड़ी" में चौमास।
सद्गुरुओं की दयादृष्टि से 'धन मुनि' करता धर्म-प्रकाश ।।२।।

मणि तेंतालीसवां पक्की हांडी

सेठ की लड़की सुन्दरबाई माता की सोहबत से उच्छृंखल बन गई। दूर देशवर्ती एक सेठ के साथ ब्याह हुआ। सेठ ने एक गाड़ी हांडे-कुंडे फोड़कर सुन्दर को सैन में समझा लिया। बाप बेटी से मिलने गया। बेटी ने पति की दायीं आंख दिखाने के बाद बाप को घी परोसा। सेठ ने सेठानी को भी सुधार दो ऐसे कहा। दामाद ने खंडित हांड़ी देकर ससुर को समझाया कि पक्की हांड़ी के कान नहीं लगते।

तर्ज—तन नहीं छूता कोई

कान चढ़ सकते नहीं, हांडी के पक जाने के बाद।
है बदलना कठिन दृढ़ संस्कार पड़ जाने के बाद ।।ध्रुवपद।।
वृक्ष का पौधा जिधर चाहो उधर मुड़ जाएगा।
किन्तु मुड़ना है, कठिन वह वृक्ष बन जाने के बाद, कान०।।१।।
बदलना संस्कार का, लघु बालकों में है सहज।
किन्तु मुश्किल है बदलना, उम्र ढल जाने के बाद, कान०।।२।।

तर्ज—राधेश्याम

कंचन पुर में कनक सेठ की, थी कलह प्रिय सेठानी।
लड़ती थी सब ही से कुल की, लाज-शर्म भी बिसरानी।।
अपने पति को भी न शांति से, रोटी वह खाने देती।
लड़की एक हुई सुन्दर, जो लाड़-कोड़ में थी रहती।।१।।

तर्ज—आजा-आजा-आजा

माता-माता, की सोहबत से हुआ, लड़की का बिगाड़ा।
अब हो गया होना कठिन, आदत का सुधारा ।।ध्रुवपद।।
अंकुश नहीं गिनती, किसी का भी अजब लड़की-२।
परिवार सब सम दृष्टि से ही, उसने निहारा, अब०।।१।।

आई जवानी में, हुई वह ब्याह के लायक-२ ।
लेकिन किसी ने भी न उसका, सगपन स्वीकारा, अब० ॥२।
घर में बडी लडकी, रहे कब तक कहो भाई-२ ।
तल्लीन चिन्ता में हुआ है, श्रेष्ठी बेचारा, अब० ॥३॥

तर्ज—श्री महावीर चरण में

मर गई सेठानी, एक श्रेष्ठी के दिल चिन्ता छाई है।
शादी करने को मति ललचायी है ॥ध्रुवपद॥
संबन्ध जुडा है, आदत का भेद मिला है,
फिर भो सेठ न बदला है ।
हो गया ब्याह ले चला विदायी है, मर गई० ॥१॥
बरतनों की गाडी, चलती थी जरा अगाडी,
लगी होने खडबड जारी ।
श्रेष्ठी ने आंखें लाल बनाई है, मर गई० ॥२॥

तर्ज—अलबेला छैला !

ओ गाडी वाले ! चुपके-सी गाडी चला तू !
ओ गाडी वाले! खडबड को शीघ्र मिटा तू! ॥ध्रुवपद॥
लगा घूमने मेरा मस्तक, छा रहा गुस्सा पूर !
जो खडबड न मिटेगी तो मैं, कर दूंगा चकचूर रे, ओ० ॥१॥
शांति हुई थोडी-सी फिर से, खडबड शुरू हुई है ।
बस! गाडी पर श्रेष्ठी की अब, लाठियां बरस गयी हैं, अरे० ॥२॥

तर्ज—नरम बनोजी नरम बनो

फोड दिए जी फोड दिए, बरतन सारे फोड दिए ॥ध्रुवपद॥
सभी बाराती रोक रहे, श्रेष्ठी ने ये शब्द कहे ।
अजि! जो कोई करे खडबड, फोड डालना उसका सिर ।
मैंने ये सिद्धान्त किए, बरतन० ॥१॥
बरतन हों चाहे नारी, रहेंगे बन आज्ञाकारी ।
वरना हो जाएंगे ख्वार, सह नहिं सकता मैं चुंकार ।
खेल बहू ने देख लिए, बरतन० ॥२॥

सोचा यहां न है मां-बाप, अच्छा है रहना चुपचाप।
बस ! अब मन में समझ गई, सुन्दर बाई सुधर गई।
सुख में बासर बीत रहे, बरतन० ॥३॥

तर्ज—हीरा मिसरी का

एक दिन आया है, बेटी से मिलने बाप।
एक दिन आया है, यों करता फिक्र अमाप ॥ध्रुवपद॥
बेटी अपनी मां की नाई, करती होगी रोज लड़ाई।
होगा हद संताप, एक० ॥१॥
लेकिन शांति अजब ही पाया, भोजन में खिचड़ा है बनाया।
परसा हो चुपचाप, एक० ॥२॥
तेल डालना या घृत अन्दर, देख रही पति का मुख सुन्दर।
पति बैठा सम्मुख आप, एक० ॥३॥

तर्ज—मेरा रंग दे तिरंगी चोला

झट बायीं आंख दिखायी, घबराई सुन्दर बाई ॥ध्रुवपद॥
तेल डालना इसका मतलब, यह कैसे हो फिर देखा तब।
फिर बायीं दिखलायी, घबराई० ॥१॥
आखिर बोली है अकुलाई, साथ बाप के भी क्या बायीं ?
तब दक्षिण आंख चलायी, घबराई० ॥२॥
देख दाहिनी झट घी डाला, खेल बाप ने सकल निहाला।
नहिं बात समझ में आयी, घबराई० ॥३॥
खाना खाकर प्रश्न किया है, सत्य हाल सुन चकित हुआ है।
वाह-वाह! मुख गाई, घबराई० ॥४॥
सुन्दर की मां को भी सुधारो ! इतनी मेरी अर्ज स्वीकारो।
सुनकर के हंसा जमाई, घबराई० ॥५॥

तर्ज—तू है प्रान-पियारो म्हारो

फूटी हांडी देकर बोला, लगवा लाओ ! कान-कान ॥ध्रुवपद॥
पुर में काफी चक्र लगाए, लेकिन कान न लगने पाये।
आया हो हैरान-रान, फूटी० ॥१॥

बोला कान नहीं लग सकते, पक्की हांडी है सब कहते ।
तब यों किया बयान-यान, फूटी० ॥२॥
सास हो गयी पक्की हांडी, यह सुधरेगी मर के अगाड़ी ।
समझा ससुर सुजान-जान, फूटी० ॥३॥

तर्ज—राधेश्याम

सुन यह हेतु सज्जनों ! बच्चों में धार्मिक संस्कार भरो !
बदसोहबत से रोको, सत्संगति में उन्हें नियुक्त करो !
हास्यादिक न करो बच्चों से, खेल तजो बच्चो के साथ ।
इन कामों से बाल बिगड़ते, हैं 'धन-मुनि' की सच्ची बात' ॥१॥

मणि चवालीसवां — हीरे वाले मुनि

एक बहुश्रुत मुनि को हीरा मिला। उन्होंने उसे छिपाकर रख लिया। प्रवचन में परिग्रह का खंडन कुछ मंदा देखकर एक श्रावक ने तजवीज से उसे निकाल लिया। मुनि एक बार तो वज्राहत से हुए किन्तु फिर संभल कर व्याख्यान में परिग्रह को उड़ाने लगे। उस श्रावक ने कहा—धन्य है गुरुदेव! आज तो भारी अमृत बरसाया। मुनि ने कहा—तुम्हारी ही कृपा है। फिर सारा भेद खोल दिया।

तर्ज—आजादी का दीवाना था

हो बेधड़क कर सकते हैं, उपदेश वे ही नर।
अन्दर से जो खुद सच्चे है, उपदेश वे ही नर ॥ध्रुवपद॥
जिस किसी बाबत में, जिसके होती कमजोरी।
जीभ अटक जाती है आकर, उस ही स्थान पर, हो० ॥१॥
पंच महाव्रत धारी मुनिवर, जा रहे जंगल।
चमकीला हीरा चढ़ गया है, राह में नजर, हो० ॥२॥
लोभ दैत्य मुनि जी के दिल पर, हो गया सवार।
ले लिया हीरा किसी ने, पायी न खबर, हो० ॥३॥

तर्ज—चले आना हमारे अंगना

उपदेश करते, गामों गाम फिरते।
मुनि आये चौमासा करने, मणिपुर में चौमासा करने ॥ध्रुवपद॥
गुन के समन्दर थे ज्ञानी गजब थे,
व्याख्यान के ढंग उनके अजब थे-२।
श्रोता हो जाते थे दंग, ऐसा बरसाते थे रंग, मुनि० ॥१॥
हिंसा का खंडन करते थे जोर से,
मृषा और चोरी उड़ाते थे तोर से-२।

व्यभिचार के लिए, देते हेतु ला नये, मुनि० ॥२॥
आता परिग्रह का किन्तु वर्णन,
हो जाता उस वक्त मन्दा-सा प्रवचन-२ ।
खास देते नहिं जोर, श्रावक एक था चकोर, मुनि० ॥३॥
उसने किया है मन से विमर्शन,
रक्खा है बेशक मुनि ने कहीं धन-२ ।
करनी चाहिए खबर, मौका देख के प्रवर, मुनि० ॥४॥

तर्ज—आजा-आजा-आजा !

मौका-मौका, मौका मिला एक रोज, मुनि जंगल को सिधाये ।
कोई नहीं था दूसरा, श्रावक जी उमाहे ॥ध्रुवपद॥
देखी हैं चुपके-से, सभी चीजें मुनीश्वर की-२ ।
हीरा मिला जिसने ऋषीवर, डगमग बनाए, कोई० ॥१॥
रक्खा है हीरे को, तुरत अपने सदन लाकर-२ ।
शौच से निवृत्त हो, इत मुनिराज आये, कोई० ॥२॥
हीरा नहीं पाया, लगे संभालने जब वे-२ ।
संकल्प मन ही मन अनेकों, मुनि ने उठाए, कोई० ॥३॥

तर्ज—अय बाबुजी

अन्त में शांत बनकर बिचारा रे अच्छा हुआ ।
हट गया पापकर्मों का भारा रे, अच्छा हुआ! ॥ध्रुवपद॥
ली थी विरागी बनकर सुदीक्षा,
दी थी सुगुरु ने भी अनमोल शिक्षा ।
हाय! पत्थर से दिल क्यों बिगाड़ा रे । मैंने अहो! अन्त० ॥१॥
अनुताप इस पाप का हद किया है,
हो शुद्ध मन दंड भी ले लिया है ।
अब बहेगी अजब ज्ञान धारा रे, अच्छा हुआ ! ० ॥२॥

तर्ज—दिल्ली चलो !

देने लगे, देने लगे, देने लगे जी,
आज अनूठा ज्ञान संतजी देने लगे जी ॥ध्रुवपद॥

हिंसा झूठ चोरी अब्रह्म पाप हैं महान,
किन्तु परिग्रह इन सब ही का बाप है जहान।
इसके आगे नजर न आते सैन-सगेजी, आज० ॥१॥
इस ही के वश बड़े-बड़े जग हो रहे हैं जंग,
इस ही के वश सारी दुनिया हो रही है तंग।
बड़े-बड़े ऋषि-मुनियों को भी इसने ठगे जी, आज०॥२॥
रकम-रकम के हेतु त्यों दृष्टान्त दे रहे,
श्रोताओं के तन-मन मानो! स्तब्ध ही हुए।
चित्रतुल्य बन बैठे कोई भी न डिगे जी, आज० ॥३॥

तर्ज—तरकारी ले लो!

धन-धन हो गुरुजी! अच्छा बरसाया अमृत आज तो ॥ध्रुवपद॥
सुनते हैं व्याख्यान हमेशा, किन्तु आज-सा ज्ञान।
सुनने में कब ही नहिं आया, अजब किया फरमान हो, धन० ॥१॥
महा पाप का मूल परिग्रह, अजब आज बतलाया।
हीरे वाले श्रावक ने यों, उठ प्रवचन में गाया जी, धन० ॥२॥

तर्ज—नरम बनोजी नरम बनो!

महर हुई जी महर हुई, आज तुम्हारी महर हुई।
मुनिजी ने यों स्पष्ट कही, आज ॥ध्रुवपद॥
सारा हाल सुनाया है, जन-मन विस्मय छाया है।
शुद्ध पाल मुनि संयम भार कर गए अपना बेड़ा पार।
अब श्रोता समझो सब ही, आज० ॥१॥
अन्दर मत रखो दुर्गुन, चुन-चुन अपनाओ सद्गुन।
दो हजार पांच चौमास[1], 'धन मुनि' करता ज्ञान विलास।
जय तुलसी गण ईस! मही, आज० ॥२॥

---

१. आसोज वदी नवमी-बोरड़ी (महाराष्ट्र)।

मणि पैंतालीसवां — पाप का घड़ा

कनक के बेटे की शादी थी अजित सेठ ने अति आग्रह करके वर को पहनाने के लिए नौ लाख कंठा दिया। कनक ने बींद को नहीं पहनाया। पूछने पर कहा कि मैंने तो लिया ही नहीं। काफी विवाद बढ़ा, कनक ने अद्‌भुत जाल रचा लेकिन आखिर देवी के सामने पाप का घड़ा फूट ही गया।

तर्ज—रहमत के बादल छाए

भरते हो किस लिए, तुम घड़ा पाप का भाई!
भरते हो किस लिए, है चंचल यह प्रभुताई ॥ध्रुवपद॥
बेशक फूटेगा भरने पर, रह न सकेगा सुनो ध्यान धर।
है वर्णन इक सुखदाई, भरते० ॥१॥
सेठ मित्र दो रहते मणिपुर, अजित-कनक था प्रेम परस्पर।
सुत-शादी कनक के आई, भरते० ॥२॥
तुरत अजित के मंदिर आया, दिया निमंत्रण हर्ष सवाया।
लख आग्रह हां फरमाई, भरते० ॥३॥

तर्ज—तू है प्राण पियारो म्हांरो

ले जा! यह नवलखा कंठा, फिर बोला धर प्यार-प्यार।
शादी में सुत को पहनाना, अवसर देख उदार-दार ॥ध्रुवपद॥
कहा कनक ने बस कर भाई! कंठे से भी महर सवाई।
है तेरी सुखकार-कार, लेजा! ॥१॥
तू तो कोटीश्वर कहलाता, मैं ज्यों-त्यों घर-खर्च चलाता।
अब करके देख विचार, लेजा! ॥२॥
मणि एकाध कदा खो जावे, तो मेरे मुश्किल हो जावे।
फिर कौन करे तकरार-रार, लेजा! ॥३॥

तर्ज—राधेश्याम

लेकिन अजित सेठ ने, कंठे का हठ बेहद ठाना है।
की है काफी आनाकानी, लेकिन वह नहिं माना है ॥१॥
गए मुनीम-गुमाश्ते आखिर, वहां रहे हैं दो ही दो।
अच्छा मौका देख कनक ने, लिया नवलखा प्रमुदित हो ॥२॥
चढ़ी बरात हो गई शादी, अजित-पुत्र भी साथ गया।
वर के गल में किन्तु न कंठा, देखा आकर भेद दिया ॥३॥

तर्ज—और कहीं पर जाओ !

सीख हो गयी इधर कनक भी घर आया।
साथ वहू के माल-मता बेहद लाया ॥ध्रुवपद॥
काम ब्याह का निपट गया है, पर न मित्र के निकट गया है।
अजित सेठ ने चर के द्वारा बुलवाया, सीख० ॥१॥
भैया ! मिलने क्यों नहिं आया? काम-काज में आ नहिं पाया।
झूठा-सच्चा मिष यत्किंचित् अपनाया, सीख० ॥२॥

तर्ज—राणाजी आया बाव सूं चलाई

लड़के को कंठा क्यों न पहनाया ?
अजित सेठ ने हंसकर यों फरमाया ॥ध्रुवपद॥
कनक चौंक कर बोला फौरन,
कैसा कंठा ? भैया! यह क्या गाया ? लड़के० ॥१॥
(अजित) वही नवलखा जो बल-जवरन,
नाना कहते मैंने तुझे झलाया, लड़के० ॥२॥
(कनक) क्यों इल्जाम लगाता झूठा,
कर भी मैंने उसके नहीं लगाया, लड़के० ॥३॥
(अजित) रे रे कनका! जीवित मक्खी,
क्यों खाता है! यह क्या तुझे सुहाया, लड़के० ॥४॥
आपस में बस ! हो गयी लड़ाई,
पंचों को बुलवाकर हाल सुनाया, लड़के० ॥५॥
थे न गवाह पंच यों बोले,
अजितसेन ने झूठा दोष चढ़ाया, लड़के० ॥६॥

तर्ज—हीरा मिसरी का

अजित ने राजा से, की है तुरत पुकार ।।ध्रुवपद।।
नृप ने कनके को बुलवाकर, पूछा है कंठे का व्यतिकर।
किंतु हुआ इन्कार, अजित०।।१।।
मैंने तो कंठा न लिया है, इसने झूठा दोष दिया है।
जान मुझे नादार, अजित०।।२।।
कंठा नाथ ! कहां से लाऊं, जो सारा घर भी बिकवाऊं।
तो भी न पड़े पार, अजित०।।३।।
राजा बोला सच्चा है गर, धीज दिखा ! देवी के मंदिर !
इसने भरा हुंकार, अजित०।।४।।

तर्ज—कलदार रुपइया चांदी का

नगरी में पहड़ बजाया है, जनवृंद दौड़कर आया है ।।ध्रुवपद।।
बैठा है नृप सिंहासन पर, आया है अजित सुआशा धर।
कनके ने जाल बिछाया है, नगरी०।।१।।
छोटा-सा घट जल से भरके, कपड़े से उसको ढंक करके।
ले आया हर्ष सवाया है, नगरी०।।२।।
जन पूछ रहे घट क्यों लाया ? है कंठशोध इसने गाया।
प्रच्छक-गण समझ न पाया है, नगरी०।।३।।

तर्ज—पीर-पीर क्या करता रे !

कहा नृपति ने ढील न कर अब, करके दिखला धीज-धीज ।।ध्रुवपद।।
नीचे[1] हो तुझे निकलना है, झूठा होगा तो मरना है।
हर्गिज नहिं छोड़ेगी देवी, मारेगी कर खीझ, कहा०।।१।।
जलघड़ा अजित को पकड़ा कर, रखना भैया ! यों भरमाकर।
बोला मुझको आंच नहीं, है सांच सांच का बीज, कहा०।।२।।

तर्ज—चले आना हमारे अंगना

ऐसे दंभ करके, मन रंग भरके,
चल आया देवी के दरबार ।।ध्रुवपद।।

---

१. देवी की मूर्ति के नीचे होकर।

कंठा जो पास हो मैया ! तू मारना,
वरना दगा ठान मुझको उबारना-२।
कह यों दौड़ निकला, आया धीज दिखला, चल० ॥१॥
जनता अचंभित सारी हुई है,
कहती है मुक्त कंठ कनका सही है-२।
गया वादी घबरा, घड़ा हाथ से गिरा, चल० ॥२॥

तर्ज—नरम बनो जी नरम बनो !

फूट गया जी फूट गया, घड़ा पाप का फूट गया ॥ध्रुवपद॥
कंठा बाहर आया है, नृपमन गुस्सा छाया है।
अरे! देवी से भी दंभ किया, देश निकाला तुरत दिया !
किला कपट का टूट गया, घड़ा०॥१॥
इस वर्णन पर गौर करो ! कपट-क्रिया से दूर टरो !
दो हजार पाँच का[1] वर्ष, गांव बोरड़ी जन मन हर्ष।
'धन' ने चातुर्मास किया, घड़ा०॥२॥

---

१. आसोज मास।

मणि छियालीसवां — मतलबी मित्र

विमल को घर संभलाकर सुमति प्रदेश गया। विमल रात को भाभी से मिलता एवं धर्म चर्चा करता। लोगों ने शिकायत की। राजा ने जाकर उनका अनूठा धर्म प्रेम देखा। फिर खेमे ढेढ़ से मित्रता करके राजा ने उसे धोखा दिया। दोनों मित्रों ने राजा को फिटकारा। कथा का सार यह है कि मित्रता निष्पाप और सच्ची करनी चाहिए !

तर्ज—धर्म पर डट जाना

मतलबी मित्रों से, प्रेम न कभी लगाना।
मतलबी यारों से हृदय न कभी मिलाना ।।ध्रुवपद।।
मतलबी अपना काम बनाते, धोखा देते शर्म न लाते।
उनसे बच जाना, प्रेम० ।।१।।
कनकपुर कनकप्रभ महारान, मित्र दो सुमति-विमलमति जान।
प्रेम बेहद ठाना, प्रेम० ।।२।।
करते सामयिक मिल साथ, चलाते धार्मिक चर्चा, बात।
तत्त्व को पहचाना, प्रेम० ।।३।।

तर्ज—बन जोगी मन भटकाई ना

पहला परदेश सिधाया है, भाई को घर संभलाया है ।।ध्रुवपद।।
निशि समय विमलमति आता है, भाभी[1] का दिल बहलाता है।
सतियों की कथासुनाता है, पिशुनों ने नृप सुलगाया है, पहला० ।।१।।
हर रोज सुमति के घर जाता, न विमलमति शर्म जरा लाता।
करता है कुकर्म शहर गाता, राजा ने पता लगाया है, पहला० ।।२।।
जाता है यह तो बात सही, क्या करता है कुछ खबर नहीं।
आकर भृत्यों ने स्पष्ट कही, अथ राजा स्वयं सिधाया है, पहला० ।।३।।

---

१. कान्तिमति।

तर्ज—अखियां मिलाके

वेष बदलकर, भिक्षुक बनकर, भूप सिधाया ॥ध्रुवपद॥
उस दिन कुछ देर हो गई, आने में भाभी के घर।
पहुंचा दस बजे द्वार अब खोला है, भाभी ने उठकर, वेष० ॥१॥
आया है अंदर देवर, खुश-खुश हो भाभी ने फिर।
दरवाजा बंद किया, इत देख रहा है वसुधाधीश्वर, वेष० ॥२॥
घंटा भर दोनों ही ने, धार्मिक चर्चाएं की हैं।
आखिर निज मंदिर जाने के लिए, उठ आज्ञा ली है, वेष० ॥३॥

तर्ज—हीरा मिसरी का

यहीं पर सो जाओ, देवरजी ! धर प्यार ॥ध्रुवपद॥
मेरा सोना है अति भारी, क्या है बतलाओ गुनधारी।
बैठ गई हठ धार, यहीं० ॥१॥
शयन गोद में मैं हू करता, हाथ जिस्म पर फिर है फिरता।
पैर न हिलता[1] तार, यहीं० ॥२॥
नींद अगर्चे उड़ जाती है, तो न रात भर फिर आती है।
होता सिरदर्द अपार, यहीं० ॥३॥
सोचा नृप ने है व्यभिचारी, करता है दुष्कृत की त्यारी।
बस ! खींच खड़ा तलवार, यहीं० ॥४॥

तर्ज—कांटो लाग्यो रे देवरिया !

सोओ-सोओ हो देवरजी ! मेरी गोदी है तैयार।
गोदी है तैयार, मानो ! भाभी की मनुहार ॥ध्रुवपद॥
अतिआग्रह लख सोया देवर, भाभी हाथ फिरा रही तनपर।
(इत) नृपति खा रहा खार, मानो ! ॥१॥
इधर अचानक भाई आया, खोल द्वार यों मुख से गाया।
छाया हर्ष अपार, मानो ! ॥२॥
कहा गोद में प्यारे देवर, सोये हैं सुनिये प्राणेश्वर !
अब क्या करूं विचार, मानो ! ॥३॥

---

१. जिसकी गोद में सोता हूं उसका पैर हिलते ही मेरी नींद उड़ जाती है।

बस-बस ! पैर हिला देना मत, उसकी नींद उड़ा देना मत ।
रहना स्थिरता धार, मानो ! ॥४॥

तर्ज—तू है प्रान पियारो म्हारो

किंतु खुशी में कान्तिमती का, हिला जरा-सा अंग-अंग ॥ध्रुवपद॥
निद्रा उड़ी वदन हिलते ही, मिले परस्पर घर खुलते ही ।
प्रगटा प्रेम अभंग[1]-भंग किंतु ०॥१॥
इनकी देख सुनिर्मल नीति, इनकी देख सुपावन प्रीति ।
नृपति हो गया दंग-दंग, किंतु ॥२॥
प्रातः दोनों मित्र बुलाये, सभी रात के खेल सुनाये ।
फिर बोला तज व्यंग-व्यंग, किंतु० ॥३॥

तर्ज—आजादी का दीवाना था

करनी होगी अब तुम्हें, मित्राई मेरे से ॥ध्रुवपद॥
हम नहीं कर सकते, कर सकता है खेमा ढेढ़।
कहा बुलाकर उससे, कर मित्राई मेरे से, करनी० ॥१॥
उत्तर दूंगा कल तुम्हें, कह यों पूछा इनसे ।
अजि ! कहता है राजा, कर मित्राई मेरे से, करनी०॥२॥
दोस्तों ने दी स्वीकृति, फिर जा कहा नृप से ।
रखनी होगी जीवन भर, मित्राई मेरे से, करनी० ॥३॥

तर्ज—राधेश्याम

राजा ने स्वीकार किया, अब खेमा मित्र बना प्यारा ।
वक्त-कुवक्त न गिनता, नृप के जी में जी अपना डारा ॥१॥
रहता हरदम साथ भूप के, एक दिन[2] वन में हुआ विहार।
ज्योति दूर से नजर चढ़ी है, पहुंच गये दोनों तत्काल ॥२॥
वहां अप्सरा तुल्य सुंदरी, एक खड़ी दीपक लेकर।
रूप मुग्ध हो भूपति बोला चल-चल प्यारी ! मेरे घर॥३॥

---

१. स्त्री को उलाहना दिया कि तूने मेरे मित्र की नींद क्यों उड़ाई ! क्या हर्ज था हम सुबह मिल लेते ।

२. रात के समय ।

तर्ज—हो भाभी ! तेरे थोड़ा-थोड़ा

हो राजा ! मेरा कैसे बने तेरे घर आना ॥ध्रुवपद॥
डाकू है बाप, मुझे देकर के दीप जाता।
रखते ही इसको, अभी दीखेगा दौड़ आता।
होगा आते ही घोर घमासाना, हो राजा ! ॥१॥
होवे यदि कोई खड़ा, कर में यह दीप लेकर।
ले जाये फिर मुझे तू, चुपके-सी चढ़ घोड़े पर।
तो बने कदा तेरे घर आना, हो राजा ! ॥२॥
खेमे से नृप ने कहा, उसने स्वीकार किया।
कन्या के हाथ में से, हर्षित हो दीप लिया।
राजा कन्या ले हो गया रवाना, हो राजा ! ॥३॥
महलों में आया और, आते ही व्याह किया।
सुख में हो मग्न, मित्र खेमे को भूल गया।
इत आया है डाकुओं का राना, हो राजा ! ॥४॥

तर्ज—और कहीं पर जाओ।

लड़की नजर आई, डाकू चमकाना,
खींची है तलवार, हो गया दीवाना ॥ध्रुवपद॥
अरे कहां है कन्या मेरी ? कह दे वरना मृति है तेरी।
कहा खेमे ने सच्चा किस्सा मनमाना, लड़की० ॥१॥
खुश हो डाकू बोल रहा है, तू ने हद उपकार किया है।
पुत्री को महारानी का पद दिलवाना, लड़की ०॥२॥
विपुल ऋद्धि दे विदा किया है, आ मित्रों से हाल कहा है।
दगाबाज राजा का देखो दोस्ताना, लड़की० ॥३॥

तर्ज—राधेश्याम

दोनों मित्र सभा में आये, राजा ने सम्मान दिया।
खेमा नजर न आता कैसे, समयांतर यों प्रश्न किया ॥१॥
राजाजी का उतर गया मुख, पूछ रहे दोनों फिर-फिर।
मरण-शरण में पहुंच गया होगा, वह यों बोले नरवर ॥२॥

किस्सा सुनकर मित्रों ने, परिषद में काफी फिटकारा ।
शर्म न आई कर मित्राई, ऐसी आफत में डारा ॥३॥
फिर सारा ही हाल सुनाया, खेमे को बुलवाया है !
नृप ने माफी मांगी लेकिन, दोस्ताना छिटकाया है ॥४॥
इस वर्णन का सार यही है, स्वार्थ वृत्ति को परिहरना ।
प्रेम मतलबी मित्रों से, तुम भूल-चूक कर मत करना ! ॥५॥
अगर प्रेम करना ही हो तो, करना धार्मिक हो दिल साफ ।
दो मित्रों की स्मर निर्मलता, रहना बन करके निष्पाप ॥६॥
दो हजार पांच संवत, आसोज सुदी छठ मंगलगान ।
गांव बोरड़ी में गुरुकृपया, 'धन' ने जोड़ा यह व्याख्यान ॥७॥

मणि सैंतालीसवां विनय से विद्या

बाग से आम के फल चोरे गये। राजा श्रेणिक ने अभय से कहा। मंत्री ने नाटक का मिष बनाकर भाषण किया एवं आम चोरने वाला भंगी पकड़ा गया। राजा उसे मारने लगा। मंत्री ने कहा—विद्या तो ले लें! सविनय नीचे आसन पर बैठने से विद्या आई। फिर विद्या गुरु है—यों कहकर मंत्री ने भंगी को बचाया।

तर्ज—नरम बनो जी नरम बनो!

विनय करो जी विनय करो! सद्गुरुओं का विनय करो।
बन विनयी भव पार तरो! सद्गुरुओं ।।ध्रुवपद।।
ज्ञान विनय से आता है, अभिमान विनय से जाता है।
शास्त्रों का फरमान स्मरो! सद्गुरुओं ।।१।।
नृप[1] को विद्या नहिं आई, विनयी बनते ही पाई।
अविनय से तुम दूर टरो! सद्गुरुओं ।।२।।

तर्ज—हीरा मिसरी का

बाग में आये हैं, श्रेणिक नरसरदार ।।ध्रुवपद।।
बारह मासिक आम खड़े हैं,लेकिन फल नहिं नजर चढ़े हैं।
चौंके वसुधाधार, बाग में०।।१।।
माली लोग तुरत बुलवाये, सांच कहो फल किसने खाये?
वरना मरना त्यार, बाग में०।।२।।
(माली) स्वामिन्! हमने तो नहिं खाये, तस्कर भी न नजर में आये।
अथ बोला अभयकुमार, बाग में०।।३।।

तर्ज—आजादी का दीवाना था

विद्या के बल से आ किसी ने, फल उड़ाये हैं।
हां! हां! क्या करें माली बेचारे, पता न पाये हैं ।।ध्रुवपद।।

---

1. श्रेणिक राजा को।

आज तो फल ले गया, लेगा खजाना कल !
कैसे राज्य करेंगे, यों राजा घबराये हैं, विद्या० ॥१॥
फिक्र करो मत लेश पिताजी ! पता लगा लूंगा।
पुर में पड़ह बजाकर, ऐसे शब्द सुनाये हैं, विद्या०॥२॥

तर्ज—तरकारी ले लो !

पुरवासी लोगो ! नाटक में आना सब प्रेम से ॥ध्रुवपद॥
दूर देश से नट आये हैं, खेल करेंगे भारी।
है राजा की मर्जी देखे, पुर की जनता सारी जी, पुर०॥१॥
नहिं आयेगा वह पाएगा, अर्ध वर्ष की जेल ।
मची शहर में हलचल सुन, सब आए जन मनमेल जी, पुर०॥२॥

तर्ज—सारी दुनिया में दिन

रंगमंडप सजाया है मैदान में,
लोग बैठे सभी खेल के ध्यान में ॥ध्रुवपद॥
वक्त होते ही आया अभय भी वहां,
खेल चालू करो अब तुरत ही कहा।
है न नटराज नट ने कहा कान में, रंग०॥१॥
बात मंत्रीश सानंद कहने लगे,
एक लड़की[1] थी जिनके न कोई सगे।
मस्त थी किंतु अपनी सुकुल-कान में, रंग०॥२॥

तर्ज—राधेश्याम

क्रमशः यौवन वय में आई, वर वरने के योग्य हुई।
अपने जैसा ही इक लड़का, पाकर सगपन किया सही।
कहा लड़के ने शादी के दिन, सज्जित होकर आ जाना!
सत्यवती ने मान लिया है, दिल दोनों का हुलसाना ॥१॥

तर्ज—चले आना हमारे अंगना

सिनगार सजके, कुलदेव भजके,
कन्या आती है शादी करने—२ ॥ध्रुवपद॥

---

१. सत्यवती।

उद्यान के पास हो करके निकली,
बोले है माली ठहर जा! कहां चली-२
तेरा रूप है उदार, लेंगे भोगों की बहार, कन्या०॥१॥
अरे भाइयो ! ब्याह करने मैं जा रही,
मत ना सताओ ! मैं नरमी से गा रही-२
लेकिन माने है नहीं, रोक रक्खी है वहीं, कन्या०॥२॥
होते ही ब्याह शीघ्र वापस फिरूंगी,
हूं सत्यवचनी न हर्गिज टलूंगी-२।
ऐसे छूट के चली, टुकड़ी चोरों की मिली, कन्या०॥३॥

तर्ज—पिया घर आजा !

लूटो-लूटो-लूटो रे, अब ना लगाओ देरी,
धन-माल आया-आया, धन-माल आया ॥ध्रुवपद॥
बोले तस्कर गहने-कपड़े दे दे तू, दे दे तू !
फिर चाहे दिलचाहा रास्ता ले ले तू, ले ले तू !
अरे ब्याह हो जाने दो, ले लेना वापस आते,
सविनय सुनाया, आया०धन ॥१॥
भैया! मेरा रक्खो दिल विश्वास तुम, विश्वास तुम,
इस मौके पर न करो मुझे निराश तुम-निराश तुम।
दया ठानकर चोरों ने, छोड़ी है बेचारी ने,
कदम उठाया-आया०धन ॥२॥

तर्ज—मेरा रंग दे तिरंगी चोला

इतने में राक्षस आया, दिल कन्या का दहलाया ॥ध्रुवपद॥
खाऊं-खाऊं मुख से करता, बोला खून नयन से झरता।
भूखा हूं भक्ष्य न पाया,' इतने०॥१॥
अब निज इष्ट देव को स्मर ले! मरने की तैयारी कर ले!
सुन कन्या ने फरमाया, इतने०॥२॥

तर्ज—हो भाभी ! तमे थोड़ा-थोड़ा थावो वरनागी

हो भाई ! दिल थोड़ा-थोड़ा धैर्य अपनाओ ॥ध्रुवपद॥

तीन दिन से।

नहिं खाया तीन दिन से, व्यापी है भूख भारी।
व्याकुल हुई है काया, सच्ची है बात सारी।
फिर भी अर्जी पर गौर फरमाओ! हो भाई! ॥१॥
घंटा दो-तीन का ही, बाकी अब काम रहा।
होते ही शादी फौरन, आऊंगी वापस यहां।
सत्यवचनी हूं दया दिखलाओ! हो भाई० ॥२॥
ताकत सचावट के अंदर अपार भरी,
राक्षस ने छोड़ दी है, आ पति के पैर पड़ी।
बोली स्वामिन्! सनाथ अब बनाओ! हो भाई० ॥३॥

तर्ज—श्री महावीर चरण में

शादी होते ही कहा सत्यवती ने वापस जाना है।
जाकर के अपना वचन निभाना है॥ध्रुवपद॥
सब हाल सुनाया, बालम ने शीश हिलाया,
सत्या ने उसे समझाया।
ले आज्ञा फौरन हुई रवाना है, शादी० ॥१॥
प्रमुदित मन आकर, कहा भैया! मैं हूं हाजिर,
राक्षस ने विस्मित बनकर।
झुक चरणों में यों गाया गाना है, शादी० ॥२॥

दोहा

बहन! तुम्हारे सत्य ने, बदले मेरे ख्याल।
कह यों धन दे की विदा, चली सती तत्काल॥१॥
चमत्कार लख सत्य का, विस्मित हुई अपार।
आ बोली सानंद मन, अब चोरों के द्वार॥२॥

तर्ज—आजा-३

ले लो! ले लो! ले लो अरे तुम भाइयो! धन-माल उदारा!
मैं हो गई हाजिर निभाने, वचन पियारा॥ध्रुवपद॥
बानी सती की सुन, बने हैं, चोर तो चित्रित-२।
सबके दिलों का हो गया है, छिन में सुधारा, मैं हो गई० ॥१॥

कहने लगे जा-जा ! न लेंगे माल हम तेरा-२।
भगिनी बनाकर फिर दिया है, द्रव्य अपारा, मैं हो गई०॥२॥
मन मालियों का भी, बदल डाला सती ने जा-२।
सत्य से जय प्राप्त हो, निज पति को निहारा, मैं हो गई०॥३॥

तर्ज—राधेश्याम

सुनने वालो ! सत्य कहो अब, किसने दुष्कर कार किया ?
बात सुनाकर मंत्रीश्वर ने फौरन यही सवाल किया ॥१॥
व्यभिचारी नर बोल पड़े हैं, माली दुष्करकारी थे ।
राक्षस के गुनगान किए, जो भाई मांसाहारी थे ॥२॥
स्त्री-लुब्धों ने प्राणनाथ को, सब ही का सरदार किया ।
इतने ही में एक श्वपच ने, मुख से यों इजहार किया ॥३॥

तर्ज—रहमत के बादल छाये

उत्तम वे चोर थे, धन पाकर भी न लुभाये ॥ध्रुवपद॥
तत्क्षण राजसिपाही आये, पकड़ लिया भूषण[1] पहनाये ।
फिर निकट सचिव के लाये, उत्तम०॥१॥
खेल बंद करके मंत्रीश्वर, लाया उसे जहां थे नरवर ।
फिर डंडे भी लगवाये, उत्तम०॥२॥
बोल सत्य! क्या आम चुराये? जी हां ! मन शंका मत लाये !
मैंने सब आम चुराये, उत्तम०॥३॥

तर्ज—दिल्ली चलो

क्यों चुराये, क्यों चुराये, क्यों चुराये आम ?
लाल आंख कर नृप ने पूछा, क्यों चुराये आम ॥ध्रुवपद॥
गर्भवती घर नारी, मुझसे बोली एक दिन ।
आम के खातिर तरसता, है यह मेरा मन ।
किंतु नहीं था मौसम, मैंने कहीं न पाए आम ।
सच कहता हूं राजन् ! मैंने यों चुराये आम ॥१॥
स्त्री बोली हैं राज-बाग में, बारह मासिक आम ।

---

१. हथकड़ियां ।

सुनते ही मैं निकला फौरन, छोड़े काम तमाम ।
लेकिन चौकीदार खड़े थे, हाथ न आये आम । सच०।।२।।
बाहिर रहकर विद्यावल[1] से, तोड़े फल दो-तीन !
खाते ही परिवार सारा, हुआ आम में लीन ।
ला-ला कर फिर रोज बाग से, सबने खाये आम । सच०।।३।।

तर्ज—तुमको लाखों प्रणाम

फांसी दे दो ! अभी, राजा ने फरमाया । फांसी ।।ध्रुवपद।।
सुन बोला सचिवों को राजा, ले लें ! यह विद्या है ताजा ।
लाओ! नृप ने गाया, फांसी०।।१।।
भंगी ने विद्या बतलाई, लेकिन याद न होने पाई ।
काफी ध्यान लगाया, फांसी०।।२।।

तर्ज—दुनिया राम नाम नहिं जाण्यो

ऐसे विद्या कभी न आती, गुर का विनय कीजिये राजन् ।।ध्रुवपद।।
अभय वचन सुन भंगी को, सिंहासन पर बिठलाया है ।
बैठ गया खुद नीचे, फिर विद्या में ध्यान लगाया । विद्या०।।१।।
सिद्ध हो गयी विद्या फौरन, अब कुछ तत्व विचारो जी ।
ज्ञान दृष्टि से सुखद विनय की, ताकत अजब निहारो! विद्या०।।२।।

तर्ज—राधेश्याम

लगा मारने नृप भंगी को, मंत्रीश्वर ने छुड़ाया ।
यह तो प्रभु ! अब विद्या गुरु है, ऐसे कहकर समझाया ।।१।।
इस वर्णन के मक्खन पर, अब थोड़ा-सा तुम देना ध्यान ।
करना पड़ा विनय भंगी का, राजा को भी लेने ज्ञान ।।२।।
यह सांसारिक विद्या थी, तुम तर्फ धर्म के गौर करो !
सद्गुरुओं की विनय-भक्ति कर, ज्ञानी बन शिव राज्य वरो ! ।।३।।
दो हजार पांच शुभ संवत, सित नवमी वर आश्विन मास ।
गांव बोरड़ी ने गुरु-कृपया, 'धन मुनि' करता ज्ञान विलास ।।४।।

---

१. मेरे पास आकर्षणी विद्या थी ।

मणि अड़तालीसवां अभिमान की ताकत

भरत-बाहुबली ने १२ वर्ष तक घोर युद्ध किया। देवों ने पांच युद्ध स्थापित किए। बाहुबली विजयी बनकर दीक्षित हुए। छोटे भाइयों को वन्दना कैसे करुं, ऐसे सोचकर एक साल तक स्तम्भ की तरह खड़े रहे फिर भी केवल ज्ञान नहीं हुआ आखिर बहिनों ने समझाया। अभिमान छोड़ते ही मुनि केवली बनकर मोक्ष गए।

तर्ज—तू है प्रान पियारो म्हारो

आत्मिक ज्ञान रोकने वाला, है जग में अभिमान-मान।
बाहुबली का वर्णन सुन लो, भव्यजनों! धर ध्यान-ध्यान ॥ध्रुवपद॥
आदि प्रभु ने त्यागा जब घर, सौ पुत्रों को बांट-बांटकर।
सौंपा राज्य महान-हान, आत्मिक०॥१॥
बाद भरत ने द्वन्द्व मचाया, जग में विजय ध्वज फहराया।
फिर आया निज स्थान-स्थान, आत्मिक०॥२॥
चक्र न आयुध-घर में आया, बाहुबली को तब बुलाया।
भेजा दूत[१] सुजान-जान, आत्मिक०॥३॥

तर्ज—भोर रट ले रे भाई!

दूत आया रे भाई! दूत आया,
दल-बल[२] साथ प्रभूत आया रे भाई ॥ध्रुवपद॥
थाट बाहुबलि का विलोक के अजब,
खूब ही अचंभा पाया रे, भाई! दूत० ॥१॥
राजे-महराजे कई सेवा रहे कर,
दूत ने भी शीश झुकाया रे, भाई! दूत० ॥२॥

---

१. सुवेग नामक।
२. तक्ष शिला नगरी में।

पूछा वाहुवलि ने भाई का कुशल,
रोब से सुवेग ने वताया रे, भाई ! दूत०॥३॥
छा रहा है सुख में भी दुःख अपार,
किस कारण से दुःख यह छाया रे ? भाई! दूत०॥४॥

तर्ज—राणाजी आया वाव सूं चलाई

भाई से मिलने आप नहिं आये,
समझदार हो भारी गल्ती खाये ॥ध्रुवपद॥
घूम-घूमकर भरत क्षेत्र में,
भाई जी ने कितने कष्ट उठाये, भाई० ॥१॥
जीत-फतह कर मंदिर आये,
फिर भी हाजिर लघुबांधव नहिं पाये, भाई० ॥२॥
भाई-विन सव थाट अलोने,
भरत नरेश्वर यों मन में अकुलाये, भाई० ॥३॥
अव भी चलकर शीश झुकायें !
मिल भाई से कुल की शान वढ़ायें ! भाई० ॥४॥

तर्ज—अलवेला छैला

चुप रह जा भैया ! समझ रहा हूं मर्म सारा।
चुप रह जा भैया! जान रहा हूं तत्व सारा ॥ध्रुवपद॥
जाना था दिग्विजय हेतु तव, क्यों नहिं मुझे वुलाया।
यश का भूखा गया अकेला, फिर अव क्यों अकुलाया रे, चुप०॥१॥
अरे ! भरत को शर्म न आती, सहोदरों का राज।
लूट-लूट मन फूल रहा है, बन करके महाराज रे, चुप०॥२॥
मेरा राज्य हड़पने की भी इच्छा अव करता है।
लेकिन पिछले जीवन की, वातों को विस्मरता है रे, चुप० ॥३॥
हूं मैं वही भरत को जिसने, था नभ, में उच्छाला।
कई वार चीं-चीं करवाया, हूं वो ही मतवाला रे, चुप०॥४॥

तर्ज—राधेश्याम

वोला दूत व्यर्थ ही इतने, वोल रहे हो साहंकार।
क्या है पास तुम्हारे ताकत, अखिल भरत का वह सन्धार।

अगर आ गया गुस्से में, तो टूक-टूक उड़ जाओगे।
बात राज्य की दूर रही, पर पता न अपना पाओगे ॥१॥
अरे दूत बक-बक करके, क्यों? बिना मौत मरना चाहता।
अपनी जान बचा करके, तू जिन्दा क्यों न निकल जाता।
बाहुबली के गर्म वचन सुन, फौरन भटगण आया है।
दे गल हत्था उसे निकाला, हो वह क्रुद्ध पलाया है ॥२॥

तर्ज—रंगवा दे चुंदड़िया

चल आया अयोध्या-२
गुस्सा मन न समाया रे, चल ॥ध्रुवपद॥
मिर्च-मसाला खूब लगाया, किस्सा सारा खोल सुनाया।
सुन चक्री ने शीश हिलाया रे, मुख से यों फरमाया रे, चल० ॥१॥
भैया ! सच हैं बातें सारी, बाहुबली का बल है भारी।
लड़ने से दिल पलटाया रे, इत सेनापति[1] आया रे, चल० ॥२॥
बोला बाहुबली में क्या है ! दलबल अद्भुत अपने यहां है।
यों चक्री को भरमाया रे, लेकर कटक सिधाया रे, चल० ॥३॥

तर्ज—नरम बनो जी नरम बनो

चढ़ आया जी चढ़ आया, बाहुबली भी चढ़ आया ॥ध्रुवपद॥
बख्तर-टोप लगाये हैं, लड़ने सुभट लुभाये हैं।
होने लगी लड़ाई घोर, बरस रहे हैं शस्त्र सजोर।
गुस्सा सबके दिल छाया, बाहुबली० ॥१॥
बीत गये हैं बारह साल, आने न सका किन्तु निकाल।
तब देवों ने समझाए, युद्ध पांच[2] हैं रचवाये।
दिल दोनों का हुलसाया, बाहुबली० ॥२॥

तर्ज—राधेश्याम

दृष्टि युद्ध अब शुरू हुआ है, दोनों भाई खड़े।
नेत्रों को हिलाते बिल्कुल, एक-एक के साथ अड़े।

---

१. सुषेण।
(१) दृष्टि युद्ध (२) वागयुद्ध (३) बाहुयुद्ध (४) मुष्टियुद्ध (५) दंडयुद्ध।

आखिर चक्री के नेत्रों से, चली आंसुओं की धारा।
हार गए हैं भरत नृपति, यों बोल उठा सुरगण सारा ॥१॥
वचन युद्ध में चक्रीश्वर ने सिंहगर्जना भारी की।
वाहुवली के सिंहनाद से, मन्द हुई महिमा उसकी।
वाहुयुद्ध में अव दोनों ही वीर मल्ल की तरह जुड़े।
कुस्ती देख अनूठी उनकी दर्शक सारे चकित खड़े ॥२॥

तर्ज—सारी दुनिया में दिन

वाहुवल ने भरत को उछाला गगन,
उड़ गए होश दुनिया लगी थरहरन, वाहुवल ॥ध्रुवपद॥
गेंद जैसे भरत तो गगन में गया,
लोग कहने लगे हा ! प्रलय हो गया।
कौन होगा कहो इस वखत में शरन, वाहुवल० ॥१॥
दिल में पछता रहे हैं भरत वेशुमार,
वाहुवल के भी वदले इधर से विचार।
हाय ! हो जायेगा भ्रातृवर का मरन, वाहुवल० ॥२॥
प्रेम उमड़ा भरत को न गिरने दिया,
वीच ही झेलकर प्राण-रक्षण किया।
शर्म से मिल रहे हैं भरत के नयन, वाहुवल० ॥३॥

तर्ज—तुमको लाखों प्रणाम

किया मुष्टि प्रहार-२, फिर होकर तैयार ॥ध्रुवपद॥
वाहुवली चौंका है क्षण भर, फिर मारी है मुष्टि घुमाकर।
आया रोष अपार, किया० ॥१॥
मूर्छित हो भरतेश गिरा है समयांतर फिर होश मिला है।
हुआ शीघ्र हुशियार, किया० ॥२॥

तर्ज—अखियां मिला के

दंड को घुमाकर, भाई के सिर पर, रोष धर मारा ॥ध्रुवपद॥
लगते ही दंड वाहुवल, घुटनों तक घुसा धरा में।
निकला फिर दंड हाथ ले दौड़ा, उसको कौन थामे, दंड० ॥१॥

भीषण था दृश्य दण्ड वह चक्री के सिर में मारा ।
धरती के अन्दर कंठों तक घुसा, भरतेश बिचारा, दंड० ॥२॥
जय हो जय ! बाहुबली की देवों ने स्पष्ट सुनाया ।
मर्यादा तोड़ी है चक्रीश ने फिर चक्र चलाया, दंड० ॥३॥
लेकिन उस दिव्य चक्र ने, भाई पर हाथ न डाला ।
प्रणमन कर महाबली को वापस आ, निज स्थान निहाला, दंड० ॥४॥

तर्ज—आजादी का दीवाना था

बाहुबली के रूं-रूं में, अब गुस्सा छाया है ।
सह न सका अन्याय, मारने फौरन धाया है ॥ध्रुवपद।
मुष्टि घुमाता दौड़ रहा वह, बन करके विकराल ।
दृश्य देख यह देवों ने, आकर विरुदाया है[1], बाहुबली० ॥१॥
ज्येष्ठ बन्धु की अगर आप ही, करते हैं हत्या ।
तो फिर सेवा कौन करेगा, पता न, पाया है, बाहुबली० ॥२॥
होना था सो हो चुका, अब क्रोध कीजिए शान्त ।
क्षमा बड़े ही करते हैं, सुन दिल पलटाया है, बाहुबली० ॥३॥

तर्ज—आजा—३ मेरे

रोका-रोका, रोका है विजयी वीर ने निज दिल का उफारा ।
बस ले लिया संयम वहीं, किया लौच पियारा ॥ध्रुवपद॥
खाली न जाने दी, अहो ! निकली हुई मुट्ठी-२ ।
ऐसे महाबलि- बाहुबलि को, प्रणमन हमारा, बस० ॥१॥

---

१. अयि बाहुबले ! कलहाय बलं, भवतो भवदायति चारु किमु ?
प्रजिघांसुरसि त्वमपि स्वगुरो-र्यदि तत्गुरुशासनकृत् क इह ॥१॥
नृप ! संहर-संहर ! कोपमिमं, तव येन पथा चरितश्च पिता ।
सरतां सरणिं हि पितुः पदवीं, न जहत्यनघास्त नयाः क्वचन ॥२॥
तव मुष्टिमिमां सहते भुवि को, हरिहेतिमिवाधिक घातवतीम् ।
भरताऽचरितं चरितं मनसा, स्मर मा ! स्मर केलिमिव श्रमणः ॥३॥
अयि साधय-साधय ! साधुपदं, भज ! शान्तरसं तरसा सरसम् ।
ऋषभ ध्वज वंश-नमस्तरणे ! तरणाय मनः किल धावतु ते ॥४॥
(भरतबाहुबली-महाकाव्य सर्ग १७)

स्वीकार करते हैं, अनेकों हार कर दीक्षा-२ ।
दिखला दिया इस वीर ने तो, अद्भुत नजारा, बस०॥२॥
भाई भरत भी अब, लगा है मांगने माफी-२ ।
गद्गद वचन बोला, चली है चख-असुधारा, बस०॥३॥

तर्ज—हो भाभी ; तमे थोड़ा-थोड़ा थावो

हो भाई ! ठंडी आंखों से एक बार झांको ! ॥ध्रुवपद॥
मेरी नालायकी को, भैया ! अब भूल जाओ !
महलों में आओ खुश हो, भाई के साथ खाओ !
दया लाकर के बात मेरी राखो ! हो भाई ! ॥१॥
दीक्षा इस वक्त भैया ! लेने नहिं दूंगा तुम्हें ।
कुछ भी हो जाए चाहे, घर ले चलूंगा तुम्हें ।
सुनूं कैसे मैं धिक्कार जग लाखों, हो भाई ! ॥२॥
भाई अट्ठानवे ही, लोभी लख त्याग गये ।
केशों का लौच करके, तुम भी विरागी हुए ।
मुंह कैसे मैं दिखाऊंगा पिता को, हो भाई ! ॥३॥

तर्ज—हीरा मिसरी का

मुनिवर नहिं माने, कर लिये यत्न हजार ॥ध्रुवपद॥
भरत अयोध्या आया आखिर, प्रभु की तरफ चले हैं ऋषिवर ।
विच ही उठा विचार, मुनिवर०॥१॥
छोटे भाई हैं संयमधर वंदन करना होगा जाकर ।
बस ! प्रगटा अहंकार, मुनिवर०॥२॥
जा जंगल में ध्यान किया है, खाना-पानी सब त्याग दिया है ।
बनकर स्तंभाकार, मुनिवर०॥३॥

तर्ज—मेरा रंग दे तिरंगी चोला

है अजब मान की माया, मुनिवर को स्तंभ बनाया ॥ध्रुवपद॥
वेलों ने तन ढांक लिया है, विहगों ने आ स्थान किया है ।
इत अहिगण लटकाया, है अजब०॥१॥
वन-भैंसे इत सींग चुभाते, धवके मस्त मतंग लगाते ।

पर रोम न एक चलाया, है अजब०॥२॥

बाघिनियां आ लेट लगाती, चमरी गाएं जीभ चलातीं।

ऐसे एक वर्ष बिताया, है अजब०॥३॥

बहनों[1] ने जा प्रश्न किया है, प्रभु ने सारा हाल कहा है।

आ फौरन गाना गाया, है अजब०॥५॥

तर्ज—जीवन पल-पल मां जाय रे

करना है जो कल्यान, लेना है जो निर्वान।

भैया ! गज की सवारी छोड़ दो ! ॥ध्रुवपद

जीत करके भी राज्य छिटका दिया,

योग मुद्रा में मन को रमा लिया !

फिर भी हाथी सवार, होता विस्मय अपार, भैया०॥१॥

कष्ट कितना उठाया भाई ! आपने।

तो भी केवल न पाया भाई ! आपने।

देखो करके विचार, घट की आंखें उघाड़, भैया० ॥२॥

तर्ज—चले आना हमारे अंगना

ऐसा गीत सुनके, मुनिराज चमके,

सोचा मन में कहां है गजराज-२ ॥ध्रुवपद॥

बारह महीने से कुछ भी न खाया,

निश्चल खड़ा हूं न तन को हिलाया-२।

फिर भी मामला है क्या ? बहनें क्या रहीं सुना ? सोचा०॥१॥

इतने में दीखा अहंकार हाथी,

धिग्-धिग् मुझे ! मैं बना इसका साथी—२।

करने बंदना सजे, डंके जीत के बजे, सोचा०॥२॥

तर्ज—दिल्ली चलो !

केवल पाया, केवल पाया, केवल पाया जी।

जाते ही अभिमान मुनि ने केवल पाया जी ॥ध्रुवपद॥

प्रभु-दर्शन कर भाइयों को, सिर झुकाया है।

---

१ ब्राह्मी और सुंदरी ने।

आठों कर्म खपाकर आखिर, शिवसुख पाया है।
मान-त्याग पर 'धन मुनि' ने, यह वर्णन गाया जी, जाते ही०॥१॥
सुन श्रोता जन अहंकार को, शीघ्र निकाल दो !
सद्गुरुओं के चरनों में, मन-वच-तन डाल दो !
गांव 'बोरड़ी'[1] में गुरुकृपया, मंगल छाया जी, जाते ही०॥२॥

---

१. वि० सं० २००५ आसोज सुदी।

मणि उनचासवां — अंदर की मार

छोटी बहू के हाथ से पानी का लोटा ढुला। ससुर ने बड़ा भारी उलहना दिया। बड़ी के हाथ से घी का बर्तन फूटने पर भी कुछ नहीं कहा। छोटी बीमार होकर मरने लगी। बूढे वैद्य ने सवा सेर मोती पिसवा कर वहम निकाला। भेद पाकर ससुर ने कहा—पानी में असंख्य जीव होते हैं, इसलिये उलहना दिया था।

तर्ज—तुमको लाखों प्रमाण

लग सकती नहीं—२। बिना निदान दवाई, लग ॥ध्रुवपद॥
जब तक रोग हाथ नहिं आता, तब तक उद्यम निष्फल जाता।
फर्क न इसमें राई, लग०॥१॥
धनपुर शहर सेठ धनधारी, थे दो बेटे आज्ञाकारी।
बहुएं भी मन चाही, लग०॥२॥
सेठ एक दिन खा रहा खाना, मांगा बिच में जल मनमाना।
छोटी बहू सिधाई, लग०॥३॥

तर्ज—चले आना हमारे अंगना

दौड़ा दौड़ करके, मन मोद भरके,
लाई पानी का लोटा बहुवर—२ ॥ध्रुवपद॥
करने से जल्दी पग तो फिसल गया,
लोटा गिरा और पानी भी ढुल गया—२।
आंखें लाल करके, ऐसे सेठ कड़के, लाई०॥१॥
चलने में हलफल करती है काहे,
धीरज से बिल्कुल न चलती है काहे—२।
लोटा ढोल दिया एक, है न तेरे में विवेक, लाई०॥२॥
कहने के साथ निज गल्ती स्वीकारी,
रक्खूंगी ध्यान ऐसे बोली बेचारी—२।
देखो कैसा था विनय, आज फिर गया समय, लाई०॥३॥

तर्ज—श्री महावीर चरन में

इक दिन बड़ी बहू के कर से, घी का बर्तन छूटा है।
घी ढुल गया गिर गई, बर्तन फूटा है ॥ध्रुवपद॥
खा रहा था खाना, लख दृश्य सेठ दहलाना,
सब खान-पान बिसराना।
मानो! सर्वस्व किसी ने लूटा है, इक०॥१॥
छोटी चमकानी, पानी की बात स्मरानी,
मन सोच रही बिलखानी।
मेरे से प्यार ससुर का झूठा है, इक०॥२॥
लेकिन न जताती, मन ही मन जलती जाती,
रोटी भी खास न खाती।
चिंता ने बहू का तन सब चूंटा है, इक०॥३॥

तर्ज—आजा—३ मेरे

पिंजरा-पिंजरा, पिंजरा-सा केवल रह गया, अब तन तो बेचारा।
लख हो गया है सेठ का दिल, दुःखित अपारा ॥ध्रुवपद॥
पूछा है फिर-फिर के, बता क्या दर्द है तेरे—२।
लेकिन बहू ने तो, न अक्षर एक उच्चारा, लख०॥१॥
अनपार औषधियां, इसे श्रेष्ठी ने दिलवाई—२।
लेकिन निरर्थक ही गई नहिं लाभ निहारा, लख०॥२॥
मरने की तैयारी, बहू करने लगी अब तो—२।
अवलोक बूढ़े वैद्य[1] ने यों प्रश्न निकारा, लख०॥३॥

तर्ज—हो भाभी तमे थोड़ा-थोड़ा थावो वरनागो।

हे बेटी ! तेरा सच्चा-सच्चा हाल बतला दे ॥ध्रुवपद॥
नाड़ी में देखा मैंने, रत्ती भर रोग नहीं,
मरने का साज बेटी ! कर तू इधर रही।
क्या है गांठ दिल खोल दिखला दे, हे बेटी ! ॥१॥
पुत्री पहचान तुझे, दुःखित हो पूछ रहा,
मरती है किस लिये तू, इतना क्या दुःख हुआ?
शांति कर दूंगा मर्म जतला दे! हे बेटी ! ॥२॥

१. जो सेठ का मित्र था

तर्ज—ज्ञानी गुरु अपने संभार जो !

वैद्यराजा ! मरना ही है भला, पूज्य पिता ! मरना ही है भला,
जीने में है न अब सार रे, वैद्यराजा ! ॥ध्रुवपद॥
गद्गद हो सारी कह दी कहानी,
ससुरे का मुझसे न प्यार रे, वैद्यराजा ॥१॥
पानी के बदले इतना उलहना,
घी का न बिल्कुल विचार रे, वैद्यराजा ! ॥२॥
मुझको न अपनी बहू वे समझते,
है बड़ी से बेहद प्यार रे, वैद्यराजा ! ॥३॥
सुन करके वैद्यजी बोले हैं तेरा,
होता है अभी उपचार रे, वैद्यराजा ! ॥४॥

(वैद्य सेठ से कहता है)

तर्ज—हीरा मिसरी का

बिमारी बढ़ गई है, सुनो सेठ धर प्यार ॥ध्रुवपद॥
खर्चा इस पर खूब लगेगा, तब जाकर यह रोग मिटेगा।
वरना दुष्करकार, बिमारी०॥१॥
क्या है मेरे इससे बढ़कर, लाख लगे तो भी न फिक्र दिल।
हूं देने तैयार, बिमारी०॥२॥
सवा सेर मोती मंगवाओ! पिसवाकर मधु-साथ चटाओ !
बस! फिर क्या थी बार, बिमारी०॥३॥
बात-बात में मोती आए, पिसवाकर शीशे भरवाए।
सौंप दिए सुखकार, बिमारी०॥४॥

तर्ज—नरम बनोजी नरम बनो

निकल गई जी निकल गई, भ्रांति बहू की निकल गई ॥ध्रुवपद॥
अल्प समय में रोग गया, वैद्यराज ने मर्म कहा।
बुद्धि सेठ की चकित हुई, भ्रांति०॥१॥
पानी में थे जीव अपार, यही हेतु था दी फिटकार।
इसने कर ली बात नई, भ्रांति०॥२॥

अब वर्णन का खींचो सार, रहती जब तक अंदर मार ।
तब तक उद्यम सफल नहीं, भ्रांति०॥३॥

तर्ज—राधेश्याम

है मिथ्यात्व मार अन्दर की, जब तक निकल न जाएगी ।
भवभ्रमणमय घोर बिमारी, 'धन' कैसे मिट पाएगी !
मिलकर सद्गुरु-वैद्यराज से, अंतर का मिथ्यात्व हरो !
शरद पूर्णिमा[1] गाम 'बोरड़ी' में सब मंगल-गान करो ! ॥१॥

---

१. वि० सं० २००५ आसोज सुदी १५ ।

मणि पचासवां — मतवाली घोड़ी

सेठ सपरिवार किसी गांव जा रहे थे। जल झारी लिए ठाकुर भी साथ चल रहे थे। लंबा रास्ता समझकर सेठ ने जल पीने में संकोच किया। ठाकुर एक वापी में गए, वहां देवता को अपनी मीठी वाणी से प्रसन्न करके शीतल जल लाए एवं सेठ को जल पिलाकर सारा हाल सुनाया।

तर्ज—छोटी-सी वैरागण ने

तुम इस मतवाली घोड़ी के, लगाम तो लगाओ !
लगाम तो लगाओ, फिर राह पै चलाओ ! ॥ध्रुवपद॥
घोड़ी है रसना बाई, यों विज्ञजनों ने गाई।
काबू में इसको लाओ ! लगाम०॥१॥
अमृत का इसमें निर्झर, है इधर जहर दुस्सहतर।
हो सावधान बच जाओ ! लगाम०॥२॥
यह वाह-वाह ! करवाती, यह हाहाकार मचाती।
वर्णन पर ध्यान टिकाओ ! लगाम०॥३॥

तर्ज—रहमत के बादल छाये

श्रेष्ठी की हाट पर राजपूत विवेकी आया।
श्रेष्ठी की हाट पर, वह स्थान मानयुत पाया ॥ध्रुवपद॥
काम सेठ को नीर पिलाना, हुआ एक दिन गांव सिधाना।
लंबा इत पंथ लखाया, श्रेष्ठी० ॥१॥
साथ अनेक लिए हैं चाकर, जलझारी ले चला है ठाकुर।
जल पी लें ! फिर गाया, श्रेष्ठी०॥२॥
श्रेष्ठी ने सुविचार किया है, झारी में जल अल्प रहा है।
अतएव नकार सुनाया, श्रेष्ठी० ॥३॥

तर्ज—हीरा मिसरी का

विवेकी समझ गया, है प्यासा सेठ अपार ॥ध्रुवपद॥

अगर सेठ को जल न पिलाया, तो वेतन नाहक ही खाया।
है मुझको धिक्कार, विवेकी०॥१॥
नौकर ऐसे शामखोर थे, अब जैसे न हरामखोर थे।
बस ! निकला लेने वार, विवेकी० ॥२॥
एक तुच्छ बसती में आया, कहां जलाशय ? प्रश्न उठाया।
बोले लोग पुकार, विवेकी ०॥३॥

तर्ज—जीवन पल-पल मा जाय रे

है यह वापी उदार, मीठा अमृत-सा वार।
लेकिन लेने न देंगे आपको,
पानी लेने न देंगे आपको ॥ध्रुवपद॥
(ठाकुर) कारण क्या है बताओ दिल धैर्य धर !
(ग्रामीण) बाहर आने न पाता कोई नीर भर,
अंदर होता मरण, कहते छूकर चरण, पानी ० ॥१॥
जल की तंगी है पूरी इस गाम में,
जीवन किस ही का है नहीं आराम में।
है यह दैविक प्रकोप, हम सब खाते हैं खोफ, पानी ०॥२॥

तर्ज—चले आना हमारे अंगना

दिल धैर्य धर के, जगदीश स्मर के,
ठाकुर बनकर चले हैं निर्भीक-२ ॥ध्रुवपद॥
ग्रामीण हा ! हा! कर ही रहे हैं,
पर ठाकुर तो अंदर उतर ही गए हैं-२।
पाया नीर निर्मल, ऊपर छा रहे कमल, ठाकुर ० ॥१॥
थोड़ा-सा विश्राम कर फिर नहाए,
पी करके पानी महाशांति पाए २।
झारी भर करके ली, त्यारी चलने की की, ठाकुर० ॥२॥

तर्ज—श्री महावीर चरण में सादर

इतने ही में उस वापी से, दैत्य प्रगट हो आया है।
विकराल अस्थि इक, कर में लाया है ॥ध्रुवपद॥

सुन-सुन रे ठाकुर, दे करके मेरा उत्तर,
फिर जाना पानी लेकर।
यों कहकर भीषण अस्त्र उठाया है, इतने०॥१॥
यह शस्त्र मनोहर, लगता है कैसा सुंदर,
बतला दे देरी मत कर!
सुविवेकी ने गुन ऐसा गाया है, इतने०॥२॥

तर्ज—दिल्ली चलो

क्या लगाऊं, क्या लगाऊं, क्या लगाऊं जी!
इस आयुध को उपमा स्वामिन्? क्या लगाऊं जी ॥ध्रुवपद॥
क्या इसे मैं इन्द्रदेव का, वज्र ही कहूं।
क्या इसको मैं वासुदेव का, चक्र ही कहूं।
या त्रिशूल है शिवजी का, यों मुख से गाऊंजी! इस० ॥१॥
अपने-अपने शस्त्र से, ज्यों शोभते सभी।
आप अपने शस्त्र से, त्यों शोभते अभी।
ज्यादा-कमती अपने मुख से, किसे बताऊं जी! इस०॥२॥

तर्ज—आजा-३ मेरे

मांगो-मांगो, मांगो! तुम्हें वरदान दूंगा अब ही उदारा।
मैं हो गया खुश, सुन सुधासम उत्तर तुम्हारा ॥ध्रुवपद॥
पूछा है ठाकुर ने, यहां मरते हैं कैसे नर-२।
मरते हैं अपने ही वचन से, उसने उच्चारा, मैं०॥१॥
मैं प्रश्न सब ही से, यही हर बार करता हूं-२।
उपमा लगाते ढेढ़ की, सुन करता संहारा मैं०॥२॥
अब सोच लो तुम ही, क्या जाय ऐसों का-२!
फिर भी न मोड़ूंगा तुम्हारा, बोल पियारा, मैं०॥३॥

तर्ज—हो भाभी तमे थोड़ा-थोड़ा थावो

हो देव! बिना जल के, न इन्हें तरसाओ! ॥ध्रुवपद॥
मूरख हैं लोग सारे, नहिं है विवेक इनमें।
होकर गम्भीर प्रभु! सोचो अब आप मन में।

मुझे यही वरदान बकसाओ ! हो देव ! ॥१॥
दर्शन भी आज पीछे, इनको मत आप देना !
वनके दयालु मेरी, इतनी तो मान लेना !
हंसकर बोला है दैत्य, अच्छा जाओ ! हो देव ! ॥२॥
मीठे वचन से देखो, कितना उपकार हुआ।
इस ही से वाक्य कटु, शास्त्रों में दुष्ट कहा।
कटु वाक्यों से जीभ को बचाओ ! हो देव ! ॥३॥

तर्ज—राधेश्याम

ग्राम्यजनों का कष्ट मिटाकर, पानी ले ठाकुर आये।
सच्चा किस्सा खोल सुनाया, श्रोता जन विस्मय पाये।
दो हजार पांच शुभ संवत, कार्तिक वदि एकम सुखकार।
गाम "बोरड़ी" में गुरुकृपया 'धन मुनि' के मन हर्ष अपार॥१॥

मणि इक्यावनवां सुभूम का लोभ

जमदग्नि के पुत्र परशुराम ने अपने मौसे अनंतवीर्य को मारा। उसके पुत्र कृतवीर्य ने जमदग्नि को मारा। परशुराम ने उसे मारकर फिर सात बार पृथ्वी को निःक्षत्रिय की कृतवीर्य पुत्र सुभूम ने परशुराम को मारा एवं इक्कीस बार पृथ्वी को निर्ब्राह्मणी की। फिर आठवां चक्रवर्ती बना और लोभवश सातवां खंड साधने चला। देवों का मन फिरा, नाव डूबी, लोभी सुभूम मर कर सातवें नरक में उत्पन्न हुआ।

तर्ज—हीरा मिसरी का

पा नहिं सकते चैन, लोभी नर-नारी ॥ध्रुवपद॥
ज्यों-ज्यों आकर माया मिलती, त्यों-त्यों तृष्णा आग धधकती।
खोल न सकते नैन, लोभी० ॥१॥
हिंसा करते चोरी करते, झूठ हलाहल मुख से झरते।
डरते तिलभर है न, लोभी० ॥२॥
नरक अनेक पड़े हैं लोभी, कई कुमौत मरे हैं लोभी।
सुगुरु कर रहे सैन, लोभी० ॥३॥

तर्ज—अय बाबु जी

तमतमा[1] के दुखों में सिधाया रे, लोभी सुभूम।
जैन शास्त्रों में प्रभु ने जताया रे, लोभी सुभूम ॥ध्रुवपद॥
दो मित्र देवों ने चर्चा चलाई,[2] की एक ने जैन मत की बड़ाई।
धर्म वैदिक अपर ने दृढ़ाया रे, लोभी सुभूम० ॥१॥
करने परीक्षा उभय सुर चले हैं, रास्ते में राजा, पदमरथ[3] मिले हैं।

---

१. सातवां नरक।
२. वैश्वानर और धन्वन्तरि।
३. मिथिलापति।

जिनके रूं-रूं में वैराग्य छाया रे, लोभी सुभूम० ॥२॥
दीक्षार्थ चम्पापुरी जा रहे वे, सुर[1] कर परीक्षा सुविस्मित हुए वे।
रंग ऐसा तुरत फिर रचाया रे, लोभी सुभूम० ॥३॥

तर्ज—रहमत के बादल छाये

बैठे हैं ध्यान में, जमदग्नि तपस्वी भारी ॥ध्रुवपद॥
घोर तपस्या करते हैं ऋषि, वेद मंत्र को स्मरते हैं ऋषि।
बढ़ रही जटा और दाढ़ी, बैठे० ॥२॥
सुरयुग चटक दम्पती बनकर, बसे जटा में अपना घर कर।
पति बोला सुन हे प्यारी ! बैठे० ॥२॥
गिरि कैलाश मुझे है जाना, खुश हो कर दे शीघ्र रवाना !
ना ! ना! कह प्रिया पुकारी, बैठे० ॥३॥

तर्ज—ओ भाभी तमे थोड़ा थोड़ा थावो वरनागी

हो पिया ! तुझे नहिं दूंगी मैं तो वहां जाने ॥ध्रुवपद॥
जाकर जो दूसरी से, कर ले तू प्यार वहां।
वापिस न आये कदा, क्या हो फिर हाल यहां।
मेरा मनवा न एक छिन माने, हो पिया ! ॥१॥
तेरे गले की सौगन्ध, खाता हूं प्यारी ! वहां,
मैं न ठहरूंगा हर्गिज, आऊंगा लौट यहां।
मेरा रखकर भरोसा करवाने।
हे प्यारी ! मुझे, दे तू कैलास गिरि जाने, हो पिया ! ॥२॥
इस ऋषि के दर्शनों से, लगता है पाप जितना।
आओगे जो नहीं तो, बांधोगे पापा उतना।
माना प्रियतम ने सन्त चमकाने, हो पिया ! ॥३॥
तोड़ा है ध्यान, दोनों हाथों में कैद किये।
अरे ! दर्शन से पाप, ऐसे मुख से क्यों शब्द कहे ?
मेरे सद्‌गुन जहान ने पिछाने, हो पिया ! ॥४॥

---

१. अनेक अनुकूल प्रतिकूल उपसर्गों द्वारा।

तर्ज—ज्ञानी गुरु आगने संभार जी !

अरे ऋषि ! वेदों को याद कर ! अरे मुनि! वेदों को याद कर!

तेरे घट में है घोर अन्धकार रे, अरे ऋषि ! ॥ध्रुवपद॥

होने न पाती गति पुत्र के बिन[1],

तेरे न पुत्र का संचार रे, अरे० ॥१॥

इस हेतु तेरे दर्शन से पाप है,

हम कहते हैं वेद-अनुसार रे, अरे० ॥२॥

सुनकर तपस्वी तप से विचल गया,

शादी का कर लिया विचार रे, अरे० ॥३॥

दोनों ही देव जैनमत की प्रशंसा,

करते सिधाये घर प्यार रे, अरे० ॥४॥

जितशत्रु नृप से ऋषि ने इधर आ,

मांगी है सुता सुखकार रे, अरे० ॥५॥

तर्ज—जीवन पल-पल मा जाय रे!

बोला नरवर सुजान, मेरा खुल्ला ऐलान,

ले लें ! जो भी पसंद करे आपको ॥ध्रुवपद॥

लेकिन न किसी सुता ने मुख हां कहा,

हास्य करके सभी ने स्पष्ट ना कहा ।

आया गुस्सा अमाप, दिया ऋषिजी ने शाप, ले लें ! ॥१॥

सारी कन्याएं कुबड़ी-सी बन गईं,

सिर्फ छोटी-सी लड़की एक बच रही ।

ऋषि ने दिखलाया फल, उसका ललचाया दिल, ले लें! ॥२॥

तर्ज—राणाजी आया बाब सूं चलाई

फल लेने लड़की दौड़ झट आई,

अनजान लड़की दौड़ झट आई ।

नाम रेणु का ऋषिजी ने अपनाई ॥ध्रुवपद॥

वन में लाकर पाली-पोषी,

फिर की शादी भूले तापस भाई, फल० ॥१॥

---

१. अनपत्यस्य लोका न सन्ति ।

पुत्र हुआ है उसके अद्भुत,
रक्खा उसका नाम राम सुखदाई, फल० ॥२॥
था कृतवीर्य वहन का नन्दन,
हस्तिनाग[1] पुरपति से जो थी व्याही, फल० ॥३॥

तर्ज—राधेश्याम

इधर राम ने खग-सेवा से, प्रवर परशु-विद्या पाई।
राम हो गया परशुराम अव कीर्ति अमित जग में छाई ॥१॥
गई रेणुका एक वार, भगिनी से मिलने हथिणापुर।
गर्भ रहा वहनोई से, सुत जन्मा शांत रहा ऋषिवर[2] ॥२॥
किन्तु राम ने पुत्र सहित, माता को फौरन मार दिया।
मौसे ने ऋषियों का आश्रम, गुस्से होकर नष्ट किया ॥३॥

तर्ज—दिल्ली चलो !

मार डाला, मार डाला, मार डाला है।
मौसे को भी परशुराम ने मार डाला है ॥ध्रुवपद॥
समाचार सुन दौड़कर, कृतवीर्य आया है।
मारकर जमदग्नि को, झट राह लगाया है।
परशुराम ने इसको मारा, टला न टाला है, मौसे० ॥१॥
गर्भवती[3] महारानी, हो भयभीत पलाई है।
तापस के आश्रम में छिपकर, जान वचाई है।
जन्म हुआ नन्दन का नाम सुभूम निकाला है, मौसे० ॥२॥

तर्ज—रावण ने शक्ति मारी

वन गया परशुराम महाराजा, हर्ष अपार पार-पार ॥ध्रुवपद॥
जहां भी क्षत्रिय पाता, वहां परशु तुरत जल जाता।
वस ! राजा राह लगाता, उसको मार-मार-मार, वन० ॥१॥
सात वार मनचाही, निःक्षत्रिय धरा वनाई।
ग्रंथों में ऐसी गाई, अथ एक वार-वार-वार, वन० ॥२॥

---

१. अनंत-वीर्य।
२. पुत्र सहित रेणुका को ले आया।
३. तारा।

वर नैमित्तिक आया, ऋषिसुत ने प्रश्न उठाया।
कैसे मम मरण लखाया, कहो! विचार चार-चार, वन०॥३॥

तर्ज—राधेश्याम

क्षत्रिय-दाढ़ाओं से राजन्! भर रक्खा है तुमने थाल।
दाढ़ाओं की खीर बनेगी, जिसके दर्शन से सुविशाल॥१॥
उसी खीर को खा जाएगा, संहारेगा तुम्हें वही
परशुराम ने दानालय में, थाल सजाया है तब ही॥२॥
ऋषि-आश्रम में बड़ा हो रहा गुप्तरूप से इधर सुभूम।
माता से पा भेद क्रुद्ध हो, निकला तुरत मचाने धूम॥३॥
आ पहुंचा वितरणशाला में, बनी तुरत दाढ़ाएं खीर।
सिंहासन पर बैठ प्रेम से, उसे खा गया है वह वीर॥४॥
काला-पीला होकर फौरन परशुराम वहां आया है।
फेंका परशु घुमाकर लेकिन, वह शीतलता पाया है॥५॥
दृश्य देख यह भयभ्रांत हो, लगा देखने ज्योंही राम।
अरि[1] ने थाल उठाकर फेंका, करने उसका काम तमाम॥६॥
पुण्योदय से चक्र बना, जा परशुराम का नाश किया।
रौद्र ध्यान में मरकर उसने सप्तम नरक निवास किया॥७॥

तर्ज—श्री महावीर चरण में सादर

अष्टम चक्री हुआ सुभूम, विजय झंडा फहराया हैं।
षट् खंड साधकर नाम कमाया है॥ध्रुवपद॥
ज्यों ही घर आया, मन द्वेष-अनल प्रगटाया,
ब्राह्मण[2] का नाम मिटाया।
इक्कीस बार अति द्वंद्व मचाया है, अष्टम०॥१॥

तर्ज—हरि गीत

साधने के हेतु सप्तम-खंड फिर जाने लगा।
है न रीति समस्त परिजन-वर्ग यों गाने लगा।

---

१. सुभूम ने।
२. निर्ब्राह्मणी की।

आज तक सब चक्रिओं ने, खंड षट् साधे सही ।
तोड़ने से नियम यह, नुकसान होगा शक नहीं ॥१॥

तर्ज—आज-३ मेरे

न सुनी, न सुनी, न सुनी किसी की एक भी, मन लालच अपारा ।
लेकर चला है फौज, करते-करते नकारा ॥ध्रुवपद॥
आया है सागर जब, सभी बैठे हैं नावा[1] में-२ ।
ले जा रहे थे देव, लख कर्त्तव्य उदारा, लेकर० ॥१॥
लोभांध है राजा, विचारा एक सुरवर ने-२ ।
सुनता नहीं पापिष्ट हा ! किस ही का पुकारा, लेकर०॥२॥
क्या है अगर बिच में, इसे तज दूर हो जाऊं-२ ।
ऐसे सभी ने सोच छोड़ा, प्रवहण पियारा, लेकर० ॥३॥

तर्ज—हीरा मिसरी का

नैया डूब गई, डूब गई मझधार ।
नैया डूब गयी, हुआ महासंहार ॥ध्रुवपद॥
सप्तम खंड साध नहिं पाया, मरकर सप्तम नरक सिधाया ।
खा रहा मार अपार, नैया० ॥१॥
सुन श्रोता जन समता धारो, 'धन मुनि' कहता लोभ निवारो !
होगा बेड़ा पार, नैया० ॥२॥
दो हजार पांच शुभ संवत, कार्तिक कृष्ण दूज उत्तम तिथि ।
गांव 'बोरड़ी' धार, नैया० ॥३॥

---

१. चर्म रत्न रूप नावा के अधिष्ठित एक हजार देव थे ।

मणि बावनवां   श्रीनेमि प्रभु

श्रीनेमि प्रभु ने शंख बजाया। क्षुब्ध कृष्ण ने उनका व्याह रचाया। पशु-पक्षियों का आक्रंदन सुनकर प्रभु ने व्याह को छोड़ा, वे दीक्षित होकर सर्वज्ञ बने। इधर राजीमती ने मोह विलाप किया एवं फिर संयम लिया। प्रभु के दर्शनार्थ गिरनार जाते समय उन्हें गुफा में रथनेमि मुनि मिला। उसे स्थिर किया एवं अन्त में आठों कर्म खपाकर महासती प्रभु से चौवन दिन पहिले मुक्ति को प्राप्त हुई।

तर्ज—अलबेला छैला

श्रीनेमि प्रभु की, सुन लो! कहानी मन भाई ।।ध्रुवपद।।
तोरण से फिर कर प्रभुवर ने, संयम भार लिया था।
हिंसा से बचने का जग को, अद्भुत पाठ दिया था। श्रीनेमि०।।१।।
नगर सौरिपुर उदधिविजय नृप, नाम शिवा महारानी।
स्वप्न चतुर्दश सूचित सुंदर, सुत जन्मा गुणखानी,[1] श्रीनेमि० ।।२।।
नाम अरिष्टनेमि था प्रभु जी, स्वजनों के मनभाये।
कल्पवृक्ष सम परम शांति से, वृद्धि क्रमशः पाये, श्रीनेमि०।।३।।

तर्ज—रहमत के बादल छाए

मित्रों के साथ में, फिरने इक रोज सिधाये ।।ध्रुवपद।।
खेल-कूद करने हुलसाये, आयुध शाला में प्रभु आये।
जहां अस्त्र अनेक सुहाये, मित्रों० ।।१।।
शंख उठाने हाथ बढ़ाया, बस-बस! आरक्षक ने गाया।
मत इसके हाथ लगायें! मित्रों० ।।२।।
चीज बड़ी यह तुच्छ नहीं है, इसे बजाते कृष्ण सही है।
(सुन) प्रभु तेजी में आये, मित्रों० ।।३।।

---

१. सावन सुदी ५।

तर्ज—सुनादे ३ किसना

वजाया, वजाया, वजाया प्रभु ने।
वड़े जोर से शंख ले वजाया प्रभु ने ॥ध्रुवपद॥
भीषण वह शब्द कहाया, कइयों ने होश गंवाया-२।
द्वारका में द्वंद्व-सा मचाया प्रभु ने, वड़े० ॥१॥
गज-घोड़े लगे दौड़ने, वंधन को लगे तोड़ने-२।
कृष्ण को भी व्यग्र-सा वनाया प्रभु ने, वड़े० ॥२॥

दोहा

पुनः परीक्षण कर रहे, वल का दोनों भ्रात।
वांह झुकाई वंधु की, प्रभुजी ने साक्षात ॥१॥
वांह पसारी नाथ ने, लटके हैं यदुनाथ।
अभिधा हरि[1] सार्थक हुई, वसुधा में विख्यात ॥२॥

तर्ज—हरियाणे आजा तू

सत्ता मेरी ले लेंगे, हरि करने लगे विचार रे।
सत्ता मेरी ले लेंगे, न रुकेंगे नेमिकुमार रे, सत्ता ॥ध्रुवपद॥
भाई वल से सुनाया सव हाल है,
उत्तर पाया ये दीन के दयाल हैं।
त्रिभुवन के तारनहार रे, सत्ता तेरी नहिं लेंगे।
क्यों करता व्यर्थ विचार रे, सत्ता तेरी नहिं लेंगे ॥१॥
(कृष्ण) राज्य करके कदाच मुनि ये वनें,
मेरी सत्ता का हाल फिर क्या वनें ?
देखो अन्तर दृग डार रे, सत्ता मेरी ले लेंगे ॥२॥
(वलभद्र) नमि प्रभु ने भविष्यवाणी में कहा,
दीक्षा लेंगे कुंवारे नेमि फिर कहां ?
तेरी सत्ता का संहार रे, सत्ता तेरी नहिं लेंगे ॥३॥
शंका फिर भी न माधव की है गयी,
व्याह-वन्धन से वांधने की जंच गयी।
पर प्रभु ने किया नकार रे, सत्ता मेरी ले लेंगे ॥४॥

---

१. हरि अर्थात वानर।

तर्ज—हीरा मिसरी का

बाग में आये हैं, प्रभु को हरि भर प्यार, बाग में ॥ध्रुवपद॥
महारानियों ने मनभायी, जलक्रीड़ा की धूम मचायी।
देवर से सत्कार, बाग में० ॥१॥
देवर जी! तुम कर लो शादी, अच्छी नहि इतनी आजादी।
मानो! अब मनुहार, बाग में० ॥२॥
स्त्रियां हजारों रखते भाई, तुम्हें अभी तक एक न पाई।
कर लो! जरा विचार, बाग में० ॥३॥
मोक्ष भागकर नहि जायेगा, वहीं पड़ा है मिल जायेगा।
क्यों बैठे हठ धार, बाग में० ॥४॥

तर्ज—दिल्ली चलो

कैसे करें, कैसे करें, कैसे करें जी!
बल घटने का डर है, शादी कैसे करें जी! ॥ध्रुवपद॥
कहा एक भाभी ने, इनमें सत्व ही नहीं।
एक बोली इनमें तो, पुरुषत्व ही नहीं।
पौरुष के बिन भार घर का कैसे धरें जी, बल० ॥१॥
इतने ही में कृष्ण जी, ले करके गोद में।
बोले भैया! भंग न कर, मेरे आमोद में।
हठ लख मौनी बने, न अक्षर एक झरे जी, बल० ॥२॥

तर्ज—श्री महावीर चरण में

लक्षण सम्मति का है मौन, कृष्ण ने हंसकर गाया है।
बल जवरन प्रभु का व्याह रचाया है ॥ध्रुवपद॥
मिल रहे स्वजन-गण, आनंदित है सबका मन,
दिखवाया शादी का दिन।
श्रावणसित छठ का शुभ बतलाया है, लक्षण० ॥१॥
कन्या सुखदाई, श्री राजिमती कहलाई[1],

---

१. राजीमती ने निम्नलिखित आठ भव श्री नेमि प्रभु के साथ किये थे।
(१) धन्य-धनवती (२) प्रथम स्वर्ग (३) चित्रगति-रत्नवती (४) चतुर्थ स्वर्ग (५) अपराजित-प्रीतिमती (६) बारहवां स्वर्ग (७) शंख-यशोमती (८) पच्चीसवां स्वर्ग (९) श्री नेमि-राजीमती।

मांगी हरि ने मन भाई।
नृप उग्रसेन रूं-रूं विकसाया है, लक्षण० ॥२॥

तर्ज—चले आना हमारे अंगना

दरियाव मन के, वींद राजा वन के,
प्रभु आते हैं शादी करने-२ ॥ध्रुवपद॥
वर्णन वारात का पर था वचन से,
देखे ही वनता था कहता हूं मन से-२।
मंगल गीत सुन के, साथी सारे ठन के, प्रभु० ॥१॥
दोनों सुरेन्द्र आये ब्राह्मण का रूप धर[1],
उनसे कहा कृष्ण ने हाथ जोड़कर-२।
भैया ! महर करना, जरा मौन धरना ! प्रभु० ॥२॥
राजीमति भी शृंगार सजकर,
वैठी गवाक्ष में आनन्द रंग भर-२।
मन में हो रही मगन, लगी नेम की लगन, प्रभु० ॥३॥
सखियों ! अहो भाग्य हैं आज मेरे,
होंगे अरिष्टनेमि वरराज मेरे-२।
देखो आ रहे हैं वे, रंग ला रहे हैं वे, प्रभु० ॥४॥

दोहा

यों कहते-कहते इधर, फ़ड़का दक्षिण नैन।
राजिमती कहने लगी, वन वेहद वेचैन ॥१॥
क्यों फड़की हा! इस समय मेरी ! दायीं आंख।
इधर अजव घटना घटी, दर्शक वने अवाक ॥२॥

तर्ज—ज्ञानी गुरु अमने संभार जो!

नेमि प्रभु तोरन पै आ रहे, प्यारे प्रभु तोरन पै आ रहे,
मुख-मुख जय-जयकार रे, नेमि ॥ध्रुवपद॥
पशुओं से वाड़े काफी भरे हैं,
पिंजरों में पक्षी अपार रे, नेमि० ॥१॥

---

१. शक्रेन्द्र और ईशानेन्द्र।

चिल्ला रहे सब मानो ! वे रोकर,
करते हैं प्रभु से पुकार रे, नेमि० ।।२।।
त्राता जगत के तुम हो जिनेश्वर !
होता है फिर क्यों संहार रे, नेमि० ।।३।।
रथ-सारथी से पूछा है प्रभु ने,
उसने वताया धर प्यार रे, नेमि ० ।।४।।
शादी में इनका भोजन वनेगा,
सुनते ही प्रगटा विचार रे, नेमि० ।।५।।
अपने विवाह हेतु यह घोर हिंसा,
न करूंगा मैं तो स्वीकार रे, नेमि० ।।६।।

तर्ज—जीवन पल-पल मा जाय

वाणी अमृत-समान, वोले करुणानिधान,
भैया ! तोरन से रथ को मोड़ लो-२ !
शादी मैं ना करूंगा इस जन्म में,
लूंगा संयम प्रधान, मिलता जिससे निर्वान, भैया! ।।ध्रुवपद।।
वचना हिंसा से यही शुद्ध है दया,
विरले भव्यों ने वोध इसका है किया ।
तत्त्व झीना अपार, ज्ञानी थोड़े संसार, भैया ! ।।१।।
हुक्म होते ही रथ को फिरा लिया,
रथ ने फिरते ही हा ! हा ! मचा दिया ।
माधव आये हैं दौड़, लेकिन न चला है जोर, भैया! ।।२।।
हाल राजिमती ने सव सुन लिया,
भान भूली है ज्ञान कुछ नहीं रहा ।
तोड़े रत्नों के हार, छूटी दुःखास्रु धार, भैया! ।।३।।

तर्ज—घटा घन घोर-घोर

रोती स्वर तार-तार, कहती यों वार-वार,
क्यों विच ही में छोड़ी-छोड़ी, क्यों विच ही में छोड़ी ।।ध्रुवपद।।
क्या मेरा अपराध हुआ प्रभु ! क्यों न मुझे वतलाया ।
विन कहे मुड़ जाना, ऐसा किसने पाठ पढ़ाया ?

पुकार अब कहां करूं, कैसे दिल धैर्य धरूं।
बिछुड़ गई मेरी जोड़ी-छोड़ी, क्यों बिच ही में ॥१॥
फूल रही मन ही मन, मेरा साहिब त्रिभुवनस्वामी।
लेकिन कभी न जानी, यों बदलेगा अन्तर्यामी।
धड़क रहा हाय! हिया, गया मेरा नेम पिया।
प्रीति पुरानी तोड़ी-छोड़ी, क्यों बिच ही में ॥२॥
समझाती हैं सखियां सुन-सुन! नेमिकुंवर था काला।
हमको तो अच्छा ही न लगा, हुआ सहज में टाला।
न कर मन थोड़ा-थोड़ा, लायेंगी बींद गौरा।
जैसी तू है गौरी, छोड़ी, क्यों बिच ही में ॥३॥

तर्ज—तुमको लाखों प्रणाम

मैंने धार लिया, प्रियतम नेम पियारा।
मैंने धार लिया, गौरा हो चाहे कारा ॥ध्रुवपद॥
बोल रही हो क्यों बे मतलब, और किसी से मुझे न मतलब।
निज नैनों का तारा, मैंने० ॥१॥
ध्यान इसी का सदा धरूंगी, जाप इसी का सदा करूंगी।
लूंगी चरण उदारा, मैंने० ॥२॥

तर्ज—राधेश्याम

इधर नाथ ने मंदिर आकर, संयम लूंगा स्पष्ट कहा।
मात-पिता परिवार-वर्ग समझाकर आखिर हार रहा।
देकर वर्षीदान नाथ ने, सावन सित छठ हर्ष अपार।
लिया सहस्र नरेशों सह फिर धूमधाम से संयम भार ॥१॥
नेमि प्रभु का छोटा भाई, थी अभिधा रथनेमिकुमार।
रूप मुग्ध हो राजिमती से, लगा जोड़ने मन का तार।
वस्त्राभूषण ला-ला देता, लेती पति का भाई जान।
इक दिन बोला शादी करके, मानें मानव-जन्म प्रमाण ॥२॥

तर्ज—नरम बनोजी नरम बनो।

समझ गई जी समझ गई, राजिमती अब समझ गई ॥ध्रुवपद॥

बिगड़ गया है इसका दिल, समझाऊं कर यत्न प्रबल।
बस ! दासी समझाई है, पय का प्याला लाई है।…
पिया सती ने तुरत वहीं, राजिमती० ॥१॥
फिर मींढल फल खाया है, जी बेहद घबराया है।
स्वर्णथाल मंगवाया है, दूध सभी उलटाया है।…
फिर देवर से साफ कही, राजिमती० ॥२॥

तर्ज—कांटो लाग्यो रे देवरिया

पीजा-पीजा रे देवरिया! पीजा, दूध रसाल अपार।
दूध रसाल अपार, मीठी भाभी की मनुहार, पीजा ! ॥ध्रुवपद॥
बोला है रथनेमि उछलकर, क्या हूं कुत्ता बोल संभलकर।
क्यों बकती बेकार, मीठी० ॥१॥
राजिमती बोली है हंसकर, कसर क्या रही कुत्ते में फिर।
धिग् तेरा अवतार, मीठी० ॥२॥
नेमि प्रभु ने मुझको छोड़ा, जिससे तूने मन को जोड़ा।
फिट रे कुलअंगार ! मीठी० ॥३॥

तर्ज—बन योगी मन भटकाई ना

रथनेमि कुंवर शरमाया है, वैराग्य हृदय में छाया है ॥ध्रुवपद॥
चौवन दिन प्रभु छद्मस्थ रहे, फिर निर्मल केवल प्राप्त हुए।
इन्द्रों ने उत्सव खूब किये, प्रभु ने उपदेश सुनाया है, रथ०॥१॥
दो धर्मों की समझौती दी, सुन राजिमती ने दीक्षा ली।
देवर ने भी नहिं देरी की, संयम में ध्यान लगाया है, रथ०॥२॥

तर्ज—आजा-३ मेरे

प्यारे-प्यारे-प्यारे प्रभु श्री नेमि, गढ़ गिरनार पधारे।
राजीमती जाती थी, करने दर्शन पियारे ॥ध्रुवपद॥
था साथ साध्वीगण, अचानक आ गई वृष्टि-२।
विश्राम के हित स्थान सबने, फिर-फिर निहारे, राजिमती०॥१॥
पाकर गुफा अच्छी, सती राजीमती ठहरी-२।
कपड़े सुखाने के लिए सब, तन से उतारे, राजिमती०॥२॥

उस ही गुफा में थे, खड़े मुनिराज रथनेमि-२।
लख रूप दिल फिर हिल गया, यों वचन उचारे, राजिमती०॥३॥

तर्ज—हो भाभी तमे थोड़ा-थोड़ा थावो

हे भाभी ! मेरे साथ तेरे मन को मिला ले ॥ध्रुवपद॥
पहले भी मैंने काफी, अनुनय किया था तेरा।
लेकिन न माना तूने, बिल्कुल ही कहना मेरा।
खैर ! मन को तू आज भी मना ले! हे भाभी ! ॥१॥
मौका भी आज यहां, आकर अनूठा मिला,
तू भी अकेली और मैं भी अकेला मिला।
लाभ नर तन का शीघ्र ही कमा ले! हे भाभी! ॥२॥

तर्ज—बोल मेरे प्यारे।

धिक्कार अरे कामी! है तुझ को लाखों धिक्कार ॥ध्रुवपद॥
मुनिवर के वेष में क्या कह रहा है,
लज्जा न आती है तार, तार, अरे कामी ! ॥१॥
हैं तेरे बंधुवर श्रीनेमि जिनवर,
कुछ तो उन्हें भी संभार-संभार, अरे कामी ! ॥२॥
अपना अगंधन कुल है विचार तू,
दुर्भाव दिल से निकार-निकार, अरे कामी ! ॥३॥
गिनती क्या तेरी आ जाये इन्द्र भी,
न करूं मैं व्रत का बिगाड़-बिगाड़, अरे कामी! ॥४॥

तर्ज—राधेश्याम

राजिमती के वचनांकुश से, मुनिमन मत्त गजेन्द्र मुड़ा।
नेमि प्रभु के चरणों में आ भवसागर से पार तरा ॥१॥
मोक्ष पधारे इधर नेमिजिन, आयु पूर्ण कर वर्ष हजार।
राजिमती चौवन दिन पहले, पाई शाश्वत पद श्रीकार।
दो हजार पांच शुभ संवत, कार्तिक कृष्ण चौथ सोल्लास।
'धन मुनि' ने नेमि प्रभु गाया, गांव बोरड़ी धर्मप्रकाश ॥२॥

मणि तिरपनवां पार्श्व प्रभु

कमठ तापस पंचाग्नि साध रहा था। पार्श्व प्रभु ने वहां जाकर जलता हुआ एक लक्कड़ चिरवाया, तड़फता सांप निकला! प्रभु ने नवकार सुनाया, मरकर वह धरणेन्द्र बना। लज्जित कमठ मरकर मेघकुमार हुआ। वन में ध्यान करते समय प्रभु पर मूसलाधार जल बरसाया। प्रभु अडोल रहे, धरणेन्द्र आते ही कमठ शांत हुआ।

तर्ज—म्हारा लाडला जमाई

श्री श्री पार्श्वप्रभु की महिमा, तीन भुवन में छाई जी ।।ध्रुवपद।।
हरने जन्म-जन्म का पाप, मंत्राक्षर सम प्रभु का जाप।
स्थिर मन कर लो भाई जी! तीन०।।१।।
थे प्रभु अश्वसेन नृप नंद, वामा-अंगज तेज अमंद।
नगरी काशी गाई[1] जी, तीन० ।।२।।
प्रभुजी यौवन में जब आये, साग्रह महाराज ने ब्याहे।
पत्नी[2] अद्भुत पाई जी, तीन० ।।३।।

तर्ज—राधेश्याम

बैठ झरोखे में प्रभु, एक दिन, रचना पुर की देख रहे।
लोग हजारों कहीं जा रहे, पुष्प-फलादिक साथ लिए।।१।।
क्या यक्षादिक का उत्सव है, पूछा प्रभु ने नौकर से।
जिसके लिए जा रहे हैं, ये लोग सभी हुलसे-हुलसे।।२।।

तर्ज—हो भाभी तमे थोड़ा-थोड़ा थावो वरणागी

हो स्वामी! आज वन में तपस्वी एक आया।।ध्रुवपद।।
पंचाग्नि साधना में, है व ऋषि लीन भारी।

---

१. जन्मदिन पौष वदी १०।
२. प्रसेनजित् राजा की पुत्री प्रभावती।

उस ही के दर्शनों को, जाती है नगरी सारी।
नाम कमठ प्रसिद्धि खूब पाया, हो स्वामी ! ॥१॥
कौतुक निहारने को, हय पर सवार हुए।
मित्रों युत पार्श्व प्रभु, तापस के पास गए।
ध्यान उसकी तपस्या पर लगाया, हो स्वामी!॥२॥

तर्ज—राधेश्याम

जान ज्ञान से बोले प्रभुवर, हा ! हा ! तापस अज्ञानी।
लिए धर्म के करता हिंसा, नहीं अहिंसा पहचानी ॥१॥
चिढ़कर बकने लगा तपस्वी, क्यों करते नाहक तकरार।
हय दौड़ाना काम तुम्हारा, जाओ ! दौड़ाओ घर प्यार ॥२॥
बोले प्रभु लक्कड़ के अन्दर, जलता है एक काला नाग[1]।
बस! मत बोलो ! चुप हो जाओ ! तापस लगा उगलने आग ॥३॥

तर्ज—सुना दे सुना दे सुना दे किसना

चिरवाया, चिरवाया, चिरवाया प्रभु ने।
उस लक्कड़ को शीघ्र ही चिरवाया प्रभु ने ॥ध्रुवपद॥
निकला है नाग तड़फता, विस्मित थी सारी जनता-२।
दया ठान कर श्री नवकार सुनाया प्रभु ने, उस०॥१॥
अहिवर ने श्रद्ध लिया है, मरकर धरणेन्द्र हुआ है-२।
डूबते को धर्म से तिराया प्रभु ने, उस०॥२॥
इस ही का नाम दया है, विरलों ने ज्ञान किया है-२।
आगमों में मर्म बतलाया प्रभु ने, उस० ॥३॥
तापस यह धूर्त सही है, हिंसा में धर्म नहीं है-२।
तत्त्व अहिंसाधर्म का समझाया प्रभु ने, उस०॥४॥

तर्ज—हीरा मिसरी का

होकर शर्मिन्दा, ऋषि ने किया विहार ॥ध्रुवपद॥

---

१. कई कथाकारों ने नाग-नागिनी दो माने हैं, जो मरकर धरणेन्द्र-पद्मावती हुए हैं।

प्रभु पर गुस्सा, खूब चढ़ा है, पिछला वैर अधिक उमड़ा[1] है।
मर हुआ मेघकुमार, होकर० ॥१॥
इधर नाथ ने चरण लिया है, जा जंगल में ध्यान किया है।
वड़तरु-तल धर प्यार, होकर० ॥२॥
कमठ देव ने ज्ञान लगाया, ध्यान स्थित प्रभुजी को पाया।
प्रगटा क्रोध अपार, होकर० ॥३॥

तर्ज—अखियां मिला के

सज्जित होकर, शीघ्र कमठसुर, चलकर आया ॥ध्रुवपद॥
पिछले भव में तो मेरा, इस पर नहिं जोर चला है।
ले लूं अब बदला उस अपमान का, मौका मिला है, सज्जित०॥१॥
बस! यों चिन्तन कर फौरन, हाथी त्यों सिंह बनाये।
बिच्छू-विकराल नाग रच, ईश के तन पर लगाये, सज्जित०॥२॥
मुख से किलकारी करते, राक्षस इत दौड़ रहे हैं।
निश्चल बन प्रभु तो अपने ध्यान से, लय जोड़ रहे हैं, सज्जित०॥३॥
(प्रभु को निश्चल देखकर कमठदेव ने भीषण मेघ विकुर्वित किया)

तर्ज—घटा घन घोर-घोर

घटा चढ़ी घोर-घोर, छाया अंधेरा जोर,
मेह अचानक आया-आया, मेह अचानक आया ॥ध्रुवपद॥
गाज भयंकर शुरू हुई है, बिजली कड़क रही है।
मूसलधार जल लगा बरसने, जलमय भूमि हुई है।
लगा जल वेग बढ़ने, प्रभु को संत्रस्त करने।
अजब कमठ की माया, आया मेह अचानक आया ॥१॥

---

१. प्रभु एवं कमठ के पिछले नौ भव—

तर्ज—राधेश्याम

मरुभूति त्यों कमठ(१), गजोरग(२), सुर-नारक(३) तीजे भव में।
किरणवेग-अहि(४) सुर-नारक(५) फिर, वज्रनाभ-भिल्लोद्भव(६) में।
सुर-नारक(७) फिर स्वर्णबाहु-हरि(८), दसम स्वर्ग-नारक(९) अवतार।
दसवें भव में पार्श्वनाथ जिन, और कमठ तापस अवधार ॥१॥

वढ़ता-वढ़ता नाक तलक वह, पानी पहुंच गया है।
फिर भी अद्‌भुत धैर्य ईश का, विचलित नहीं हुआ है।
आया धरणेन्द्र फौरन, करके विधियुक्त प्रणमन।
प्रभु को अधर उठाया-आया, मेह अचानक आया ॥२॥
ज्यों-ज्यों वेग वढ़ा है जल का, त्यों-त्यों प्रभु रहे ऊंचे।
हारा आखिर मेघमालिया, चौंक निहारा नीचे।
अरे रे! धरणेन्द्र आया, सारी समेटी माया।
आ अपराध खमाया-आया, मेह अचानक आया ॥३॥

तर्ज—हरियाणे आजा तू

प्रभु जी समभाव रहे,
निश्चल था उनका ध्यान रे प्रभु जी ॥ध्रुवपद॥
नागपति पर न राग दिल लेश था,
मेघमाली पै तिलभर न द्वेष था॥
अहो धन्य! पार्श्व भगवान रे, प्रभु जी०॥१॥
वंदन करके गये हैं दोनों स्थान पर,
नाथ आगे पधारे हैं विहार कर।
क्रमशः हुआ केवल[1] ज्ञान रे, प्रभुजी० ॥२॥
साल सत्तर लौं विश्व का उद्धार कर,
वाद पहुंचे हैं नाथ शिव स्थान पर।
आयुः सौ वर्ष प्रमान रे, प्रभुजी० ॥३॥

तर्ज—राधेश्याम

दो हजार पांच शुभ संवत, कार्तिक कृष्ण पंचमी दिन।
गाम वोरड़ी में 'धनमुनि' ने, पार्श्व प्रभु गाया, खुशमन ॥१॥

---

१. चौरासी दिनों के वाद।

मणि चौवनवां निदान के फल

अकस्मात् चक्रवर्ती की महारानी के केशों के स्पर्श से मोहित होकर संभूत मुनि ने निदान कर दिया। दोनों भाई अनशन संपन्न करके स्वर्ग में गए। वहां से च्यवकर चित्त श्रेष्ठि पुत्र एवं संभूत ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती बना। भाई समझाने आया लेकिन ब्रह्मदत्त नहीं समझा और कृत निदान के कारण भोगों में अत्यासक्त बनकर सप्तम नरक में गया। आखिरी उम्र में चक्रवर्ती को सोलह वर्ष तक अंधा बनकर भी रहना पड़ा।

तर्ज—राधेश्याम

जगदीश्वर के वर चरणों में, सादर शीश झुकाता हूं।
फल निदान का महा कटुक है, वर्णन कर बतलाता हूं।
दशपुरवासी दासी-सुत दो, करते थे कृषि-रखवारी।
काटा अहि ने हिरण हुए मर, लगा व्याध का शर भारी ॥१॥
मरकर दोनों हंस हो गए, चढ़े चिड़ीमारों के हाथ।
मार दिये चांडाल हो गए, काशी नगरी में विख्यात[1]।
चित्त तथा संभूत नाम, था प्रेम परस्पर बिना शुमार।
मंत्री नमुचि गुनह में आया, कहा नृपति ने डालो मार! ॥२॥

तर्ज—रहमत के बादल छाए

मंत्री का मरना आया, भंगी के हाथ में।
बेचारा दिल दहलाया, भंगी के हाथ में ॥ध्रुवपद॥
कृपया मेरे प्राण बचाओ! पुत्रों को प्रच्छन्न पढ़ाओ!
भंगी ने साफ सुनाया, भंगी० ॥१॥
मंत्री ने स्वीकार किया है, किंतु कामवश विकल हुआ है।
भंगिन के साथ लुभाया, भंगी० ॥२॥

---

१. भूतानंद चांडाल के घर।

दुराचार में लीन हुआ है, धमकाया तव भाग गया है।
हथिणापुर आ सुख पाया, भंगी०॥३॥

तर्ज—म्हारी छोटी-सी वैरागण नै

चक्री[1] के घर में किस्मत से, दीवान पद पाया।
दीवान पद पाया, है अजव पुण्य की माया ॥ध्रुवपद॥
काशी में था उत्सव, पहुंचे हैं दोनों बांधव[2]।
फिर सुंदर गाना गाया, दीवान पद पाया ॥१॥
ब्राह्मण तुरत पुकारे, जन भ्रष्ट कर दिये सारे।
श्वपचों ने द्वंद्व मचाया, दीवान पद पाया ॥२॥
कढ़वाये नरवर ने, दुःखित हो धाये मरने।
एक मुनि ने ज्ञान सुनाया, दीवान पद पाया ॥३॥

तर्ज—राधेश्याम

बंधु-युगल ने मुनिवाणी सुन, वन वैरागी चरण लिया।
पूर्वाजित दुष्कर्म खपाने, तन को तप में झोंक दिया।
तप के कारण विविध लब्धियों-युक्त उभय मुनिराज हुए।
करते उग्र विहार एकदा, हस्तिनागपुर पहुंच गए ॥१॥

तर्ज—कैसो निकाल्यो भिक्षु पंथ

लेने को भिक्षा मुनि संभूत, पुर में आये-आये।
आये-आये हर्ष सवाये,
भावीवश देख नमुचि मंत्रीश, दिल दुःख पाये-पाये ॥ध्रुवपद॥
जो मुनि मेरी वात कहेंगे, तो चक्री नहिं रहने देंगे।
करवाकर मार-पीट मुनिराज को, धक्के दिलवाये, लेने०॥१॥
मुनि ने तेजोलब्धि चलाई, भाई ने ज्यों-त्यों खिचवाई।
अनशन कर बैठे फिर उद्यान में, मुनियुग मन भाये, लेने०॥२॥

तर्ज—राधेश्याम

चक्रीश्वर ने नमुचि सचिव को, पुर से तुरत निकाल दिया।
फिर अंतःपुर युत आ, मुनि चरणों में सविनय नमन किया ॥१॥

१. सनत्कुमार चक्रवर्ती।
२. चित्त-संभूत।

श्री देवी के केशों का, संस्पर्श हुआ करते वंदन।
होने से अतिसुख का अनुभव, चलित हुआ लघु मुनि[1] का मन ॥२॥
बनूं भवांतर में चक्रीश्वर, ऐसा तुरत निदान किया।
ज्येष्ठ बंधु ने बहुत कहा, पर कहना सारा व्यर्थ गया ॥३॥
आयु पूर्ण कर दोनों भाई, प्रथम स्वर्ग में देव हुए।
स्वर्गलोक से च्यव दोनों ने, मानवतन स्वीकार किए ॥४॥

तर्ज—तन नहीं छूता कोई

चित्त सुर ने इभ्य के घर आ लिया अवतार है।
पुरिमतालाभिधनगर में, हुआ जय-जयकार है॥ ध्रुवपद॥
युवा हो जाति स्मरण पा, त्याग इस संसार को।
लिया संयम कर रहा अब, विश्व का उद्धार है॥१॥
ब्रह्मराजा चुल्लनी रानी, नगर कांपिल्य में।
बना सुत संभूत सुर, ब्रह्मदत्त नाम उदार है, चित्त० ॥२॥
मर गया है ब्रह्मराजा, मित्रगण[2] ने मिल वहां।
की नियुक्ति दीर्घ की, वह कर रहा सभाल है, चित्त० ॥३॥
किंतु करने लगा दुष्कृत, दुष्ट चुलनी से अहो।
चोर-कुत्ती मिल गये, अब करे कौन पुकार है, चित्त० ॥४॥
ब्रह्मदत्त कुमार शिशु है, मार डालें ये कदा।
हृदय में मंत्रीश धनु के, फिक्र का न शुमार है, चित्त० ॥५॥

तर्ज—सारी दुनिया में दिन

पुत्र अपना कुंवर के निकट रख दिया,
भेद सारा सचिव ने उसे कह दिया ॥ध्रुवपद॥
वर धनुः साथ सुकुमार के रह रहा,
धीरे-धीरे उसे भेद सब कह रहा।
राजसुत ने श्रवण कर ग्रहण कर लिया, पुत्र० ॥१॥

---

१. संभूत मुनि।
२. ब्रह्मराजा के चार मित्र थे—(१) कटक (२) कणेरदत्त (३) दीर्घ (४) पुष्पचूल। ये क्रमशः काशी, गजपुर, कोशल और चंपा के स्वामी थे।

काक-कोकिल तथा काक-हंसी को ला,
राजा-रानी को फिर-फिर रहा है दिखा।
देखकर दीर्घ का हिल गया है हिया, पुत्र० ॥२॥
पुत्र को मार दें ! यों प्रिया से कहा,
मैं हूं तैयार रानी ने उत्तर दिया।
लाख का एक मंदिर सुसज्जित किया, पुत्र०॥३॥

तर्ज—राधेश्याम

करके ब्रह्मदत्त की शादी, लाक्षागृह वतलाया है।
लेकिन राजकुंवर ने अंतर-भेद न तिल भर पाया है॥१॥
धनु मंत्री ने त्याग सचिवपद, खोली शाला[1] पुरबाहिर।
खुल्ले हाथों दान दे रहा, आते काफी भिक्षुक नर॥२॥
गुप्त सुरंग एक खुदवाई, जो मिलती लाक्षा-घर में।
आग लगाई दुष्टों ने, जल उठा महल वह पल भर में॥३॥
ब्रह्मदत्त को लेकर वरधनु, गुप्त मार्ग से पार हुए।
आगे थे दो अश्व[2] त्यार, चढ़ दोनों तत्क्षण भाग गए॥४॥
हारे[3] घोड़े पैदल चलकर, काशी नगरी आए हैं।
कटक[4] नृपति ने समाचार सुन दोनों मित्र[5] बुलाए हैं॥५॥
धनु मंत्री भी मिला इधर आ, सबने जाकर युद्ध किया।
ब्रह्मदत्त ने मार दीर्घ को, घड़ा पाप का फोड़ दिया॥६॥

तर्ज—आजादी का दीवाना

प्रगट हो गया चक्र रत्न, चक्री पद पाया है।
भरत क्षेत्र में जीत का, डंका वजाया है[6]॥ध्रुवपद॥
राजसभा में एक दिन नृप, देख रहा था नृत्य[7]।

१. दानशाला।
२. धनु मंत्री के रखे हुए।
३. पचास योजन चलने के बाद।
४. ब्रह्म राजा का मित्र।
५. कणेरदत्त और पुष्प चूल।
६. हजारों कन्याओं से व्याह हुआ।
७. मधुकरी गीत नाम का नाटक।

इधर निहारा पुष्प-कंदुक, विस्मय छाया है, प्रगट० ॥१॥
ऐसा देखा था कहीं, मन में हुआ चिंतन ।
देख लिए भव पिछले, पाया ज्ञान सुहाया है, प्रगट० ॥२॥
स्वर्ग में देखा था नाटक, लेकिन बंधु कहां ?
पता लगाने शीघ्र, आधा श्लोक बनाया है, प्रगट० ॥३॥
'आस्व दासौ मृगौ हंसौ, मातङ्ग वमरौ तथा'

तर्ज—जीवन पल-पल मा जाय

देश सोलह हजार, दूं मैं उसको उदार,
पूर्ण कर दे जो मेरे श्लोक को—२ ॥ध्रुवपद॥
ग्रामों-नगरों में ढोल सदा बज रहा,
पर! श्लोक पूरण किसी से नहीं हुआ।
चक्री बैठा है हार, चिन्ता मन में अपार, पूर्ण०॥१॥
चित्त करते विहार आये बाग में,
श्लोक गाता था माली निज राग में।
मुनि ने पूरण किया, पद-युग ऐसा दिया, पूर्ण०॥२॥

श्लोक

आस्व दासौ मृगौ हंसौ, मातङ्गावमरौ तथा।
एषा नो षष्ठिका जाति-रन्योन्याभ्यां वियुक्तयोः[1] ॥१॥

तर्ज—हीरा मिसरी का

श्लोक ले आया है, माली हर्ष अपार।
दौड़कर आया है, चक्री के दरबार ॥ध्रुवपद॥
बीच सभा के श्लोक सुनाया, चक्री सुनकर मूर्च्छा पाया।
पिटा है मालाकार, श्लोक० ॥१॥
आखिर मुनि का नाम लिया है, चक्री ने धन-माल दिया है।
फिर आया मुनि-द्वारा, श्लोक० ॥२॥

दोहा

१. दास हिरण, और हंस थे, भंगी पंचम देव।
भिन्न हुआ छट्ठा जनम, अपना अयि नरदेव ! ॥१॥

भिक्षु रूप में बंधु देखकर, खिन्न हुआ है भरताधीश्वर।
बोला प्रगट पुकार, श्लोक० ॥३॥

तर्ज—हो भाभी तमे थोड़ा थोड़ा थावो वरनागी

हो भाई ! ऐसे घर-घर में चक्र क्यों लगाओ ? ॥ध्रुवपद॥
सैनिक करोड़ों मेरे, हैं लाखों हाथी-घोड़े।
करते हैं देव सेवा, कमी कुछ है न मेरे।
तुम भी आकर के साथी बनजाओ! हो भाई! ॥१॥
पुराना प्रेम अपना, भैया ! कुछ याद करो !
पिछले भवों में रहे, साथी बन ध्यान धरो।
अब भी हाजिर हैं भोग अपनाओ ! हो भाई ! ॥२॥
यक्सीं तपस्या की थी, हम दोनों भाइयों ने।
अचंभा होता है जो, चक्री-पद पाया मैंने।
तुम क्यों मांग रहे भीख बतलाओ! हो भाई! ॥३॥

तर्ज—रंगवा दे चुनड़ियां

नहिं हूं मैं भिखारी—२। क्यों तेरे भ्रम छाया रे,
क्यों नाहक गर्वाया रे, नहिं ॥ध्रुवपद॥
मैंने भी धन बेहद पाया, लेकिन ज्ञानी बन छिटकाया।
लेने शिवसुख धाया रे, वर संयम अपनाया रे, नहिं० ॥१॥
तूने तप-जप बेच दिया था, कर ले याद निदान किया था।
इस ही से तू फंसाया रे, भोगों में लिपटाया रे, नहिं० ॥२॥
लेकिन इनमें सार नहीं है, दुःखों के ये पुंज सही हैं।
तज-तज इनकी माया रे, भज संयम मन भाया रे, नहिं० ॥३॥
मैं तुझको समझाने आया, यों कह काफी ज्ञान सुनाया।
किंतु समझ नहिं पाया रे, तब मुनि ने फरमाया रे, नहिं० ॥४॥

तर्ज—राधेश्याम

जो संयम की शक्ति नहीं, तो आर्य कर्म करते रहना !
जाते वक्त तुझे अयि राजन् ! मेरा सिर्फ यही कहना ॥१॥
शिक्षा देकर विचरे मुनिवर, कर्मक्षय कर सिद्ध हुए।
किन्तु निदान विवश चक्री ने, आर्य कर्म कुछ भी न किये ॥२॥

घोड़े चढ़कर एक दिन चक्री, करने सैर सिधाया है।
सर-पाली पर ठहरा, नागसुता का दर्शन पाया है ॥३॥
नाग एक आ उस नागिन से, करने भोग लगा अविचार।
चक्री ने अविवेक देख, हो क्रुद्ध किये हैं दंड प्रहार ॥४॥
नागकुमारी अपमानित हो, दौड़ गई निज पति के पास।
बोली चक्री ने बेमतलब, दी है मुझको बेहद त्रास ॥५॥
नागदेव गुस्से हो दौड़ा, आगे नृप सारा अवदात।
महारानी से सुना रहा था, सुना नाग ने भी साक्षात ॥६॥
होकर प्रगट कहा चक्री से, अच्छा काम किया तुमने।
खुश हूं वर मांगों राजेश्वर! अच्छा दंड दिया तुमने ॥७॥

तर्ज—हरि गीत

मैं सभी पशु पक्षियों की, समझ लूं भाषा प्रवर।
वर मुझे ऐसा दिलायें, नाग बोला वर वितर।
वह बात[1] किस ही से न कहना, भूल कर दोगे अगर।
शीश के शत खंड होंगे, कह गया यों नाग सुर ॥१॥
साथ रानी के नृपति, एक रोज क्रीड़ा कर रहा।
लाइये चंदन गिलहरी ने स्वपति से यों कहा।
अगर लाऊं महिप मारे, पर प्रिया मानी नहीं।
भेद पा ब्रह्मदत्त को, हांसी जरा-सी आ गई ॥२॥

तर्ज—टूट गया इकतारा मन का

हांसी कैसे आई पिया जी! हांसी कैसे आई?
भेद बताओ! रह न सकेगी, अखिर बात छिपाई ॥ध्रुवपद॥
पूछ न मर जाऊंगा प्यारी! लेकिन नारी का हठ भारी।
आखिर चह रचवाई, हांसी० ॥१॥
रानीयुत चक्रेश चला है अब निश्चित मरने निकला है।
कुल देवी ने माया बनाई, हांसी० ॥२॥
मेंढ़े से यों कह रही प्यारी, ढिग से यव ला दो सुखकारी।

1. पशु-पक्षियों से सुनी हुई।

खाऊंगी मति ललचाई, हांसी० ॥३॥
मर जाऊंगी मैं तो वरना, मर जा ! भले ही हो यदि मरना।
मैं मूर्ख न चक्री के नाई, हांसी० ॥४॥

तर्ज—राणाजी आया बाव गूं चलाई

समझा है चक्री लौट घर आया,
राज्यकाल में अपना चित्र लगाया ॥ध्रुवपद॥
किंतु विषयसुख में बन विह्वल,
धर्म-ध्यान का सपना भी विसराया, समझा है० ॥१॥
एक दिन परिचित ब्राह्मण आया,
मांग-मांग वर चक्री ने फरमाया, समझा है० ॥२॥
खाना अपना मुझको खिलायें !
पच न सकेगा चक्री ने समझाया[1], समझा है० ॥३॥
किंतु हठीला समझ न पाया,
आखिर उसको खाना निजी खिलाया, समझा है०॥४॥
उस खाने ने मत्त बनाया,
मां-बहनों का भी संबंध भुलाया, समझा है० ॥५॥
होश हुआ तब क्रोध चढ़ा है।
हा ! चक्री ने मुझको भ्रष्ट बनाया, समझा है० ॥६॥
बदला लेने की दिल ठानी,
फिर एक पशुपालक से प्रेम मिलाया, समझा है० ॥७॥
जो कुछ करना था समझाया,
चक्री इक दिन करने सैर सिधाया, समझा है० ॥८॥

तर्ज—दिल्ली चलो

फोड़ डाली, फोड़ डालीं, फोड़ डाली हैं।
ब्रह्मदत्त की दोनों आंखें फोड़ डालीं हैं ॥ध्रुवपद॥

---

१. लाख गायों का दूध ५० हजार को, उनका २५ हजार को यावत् इस क्रम से आखिर सारा दूध एक गाय को पिला दिया जाता है। उसके दूध की खीर बनती है। उसको चक्रवर्ती, श्रीदेवी एवं एक उनकी दासी—ये तीन व्यक्ति ही पचा सकते हैं।

था पशुपालक लक्ष्य वेधी, ताक के निशान ।
आंखों पर दो गोफन मारे, भूला चक्री भान ।
ज्यों ही पकड़ा वनचर ने, सच्ची कह डाली है, ब्रह्मदत्त०॥१॥
ब्राह्मण के कहने से मैने, काम यह किया,
मारो चाहे छोड़ो ! मुझको लोभ था दिया ।
सुनते ही चक्री ने, द्विज की जीभ निकाली है, ब्रह्मदत्त०॥२॥

तर्ज—मेरा रंग दे तिरंगी चोला

फिर भी नहिं रोष समाया, मुख से यह हुक्म लगाया ॥ध्रुवपद॥
सभी ब्राह्मणों को मरवाओ, फिर उनकी आंखें निकलाओ ।
मसलूंगा हर्ष सवाया, मुख से० ॥१॥
आंखें लाकर की हैं हाजिर, फूल रहा नृप मसल-मसल कर ।
प्रतिदिन यह काम चलाया, मुख से० ॥२॥
वनिये शांत सचिव ने गाया, है अन्याय बहुत समझाया ।
पर चक्री न समझने पाया, मुख से० ॥३॥

तर्ज—अखियां मिला के

तब फल[1] लाकर, थाल भरवाकर, कर रहा हाजिर ॥ध्रुवपद॥
आंखों के बदले उनको, चक्री नित मसल रहा है ।
बदला लेता हूं अपने वैर का, यों खिल रहा है, तब० ॥१॥
सोलह वर्षों तक ऐसे, पापों की गांठें भर-भर ।
आखिर में दुष्ट भाव से मरगया, वह भरताधीश्वर, तब० ॥२॥

तर्ज—राधेश्याम

रौद्र ध्यान में मरकर चक्री, पहुंच गया सप्तम पाताल ।
तीन तीस सागर तक उसको, सहना होगा कष्ट कराल ॥१॥
सुन यह वर्णन अरे धार्मिको! मत करना तुम कभी निदान ।
फल निदान के कड़ुवे लगते, हो जाता भारी नुकसान ॥२॥
दो हजार पांच शुभ संवत, कार्तिक वदि दसमी का दिन ।
गांव बोरड़ी गुरु-कृपया, 'धनमुनि' ने गाया यह वर्णन ॥३॥

---

१. वड़गुंदी के फल ।

मणि पचपनवां

कच्ची काया
(सनत्कुमार चक्रवर्ती)

काया कच्ची है, क्षणभंगुर है—इससे अवश्य सार निकालना चाहिए। यह बात सभी कहते हैं लेकिन सार निकालने वाले राजर्षि सनत्कुमार जैसे विरले ही हैं। उन्होंने गलित कुष्ठ होने से ७०० वर्ष तक घोर पीड़ा सहन की फिर भी दवा नहीं ली। उनकी सहिष्णुता पठनीय एवं मननीय है।

तर्ज—हीरा मिसरी का

काया कच्ची है,क्या इसका अभिमान, काया ।।ध्रुवपद।।
काच कुंभ सम तुरत फूटती, पके पान सम तुरत टूटती।
समझो चतुर-सुजान ! काया० ।।१।।
इन्द्र सभा में बैठे एक दिन, हाजिर थे सारे ही सुरगन।
इक आया देव महान, काया० ।।२।।
तेज अमित था उसके तन में, हो निस्तेज देव सब मन में।
शरमाये असमान, काया० ।।३।।
करके काम गया पूछा फिर, कहा इन्द्र ने था संगमसुर।
है वास कल्प ईशान, काया० ।।४।।
(सुरगण) क्या कोई ऐसा तेजस्वी, है दुनिया में नर वर्चस्वी?
हरि ने किया बखान, काया० ।।५।।

तर्ज—तुमको लाखों प्रणाम

चक्री सनत्कुमार, है अद्भुत रूप पिटारा, चक्री ।।ध्रुवपद।।
पहले था वह इन्द्र यहां पर, अब है अश्वसेन सुत सुखकर।
चौथा चक्री प्यारा, चक्री० ।।१।।
रूपवान ऐसा कोई नर, आज दूसरा है न धरा पर।
सब ही ने स्वीकारा, चक्री० ।।२।।

तर्ज—पिया घर आजा !

लेकिन दो सुर नहिं माने, करने परीक्षा फौरन,
सुरपुर से आये-आये, सुरपुर से आये ।।ध्रुवपद।।
विप्ररूप धर खड़े उभय आ द्वार पर-२,
आए दर्शन करने कहा पुकार कर-२।
स्नान कर रहे भरतेश्वर,
लेकिन अधिक था आग्रह, अंदर बुलाए-आए, सुरपुर ।।१।।
रूप देखकर देव अचंभा पाए हैं-२।
श्रवण किया था उससे अहो ! सवाए हैं-२।
प्रभाववदन की अद्भुत है,
सुनकर प्रशंसा चक्री, अहंभाव लाये-आये, सुरपुर ।।२।।

तर्ज—हो भाभी ! तमे थोड़ा-थोड़ा थावो

हो भाई ! तुम थोड़ी देर बाद फिर, आना ! ।।ध्रुवपद।।
नहा-धो श्रृंगार सजकर बैठूं जब सिंहासन पर,
हजारों भूप सेवा करते हों सिर झुकाकर।
ध्यान उस टाइम रूप पै लगाना, हो भाई ! ।।१।।
कह कर यों चक्रेश्वर ने खुश-खुश हो स्नान किया,
सज के सभा में बैठे सब ही ने मान दिया।
बोले अब उन द्विजों को भी बुलाना, हो भाई ! ।।२।।
बुलाए आए लेकिन तन में विकार पाया,
दुर्मन हो सिर हिलाया पूछा यह क्या है माया ?
हुआ दोनों का ऐसे फरमाना, हो भाई ! ।।३।।

तर्ज—नरम बनो जी नरम बनो

बिगड़ गया, जी बिगड़ गया, रूप आपका बिगड़ गया[1] ।।ध्रुवपद।।
देखा बिगड़ा पाया है, विस्मय दिल न समाया है।
बात सुनाकर देव गए, अथ चक्रेश विरक्त हुए।
भोगों से मन उखड़ गया, रूप० ।।१।।

---

[1] शरीर में कीड़े पड़ गए।

तुरत पुत्र को राज्य दिया, खुद ने संयम भार लिया।
घोर तपस्या करते हैं, तन को तन नहिं गिनते हैं।
गलित कुष्ट अथ उमड़ गया, रूप० ॥२॥
किन्तु दवा का नाम नहीं, विविध लब्धियां प्रगट हुईं।
फिर एक दिन बोले सुरराज, धन्य! धन्य! चक्री ऋषिराज।
दवा मात्र का त्याग किया, रूप० ॥३॥

तर्ज—आजा-३ मेरे

सुनकर-सुनकर-सुनकर प्रशंसा देव दोनों वे ही सिधाये।
करने परीक्षा वैद्य बन, आ मस्तक झुकाए ॥ध्रुवपद॥
मुनिजी! तुम्हारा तन, घिरा है विकट रोगों से-२।
करके दया लेकर दवा, इसे कंचन बनाएं! करने०॥१॥
किस रोग को भैया! मिटाते हो कहो मुझ से-२।
ज्ञानी जनों ने दो तरह के, रोग बताए[1], करने०॥२॥
तन का मिटाते हम, तुरत बस! थूक ले मुनि ने-२।
तन को बनाया स्वर्ण-सा, सुर आश्चर्य पाए, करने०॥३॥

तर्ज—तुम हो देवता मैं हूं पुजारी

धन्य दृढ़ता देव! तुम्हारी, हम जाते हैं बलिहारी ॥ध्रुवपद॥
हरि के वचन में शंका आई, वैद्यरूप धर माया रचाई।
पर दृढ़ता अजब निहारी, हम० ॥१॥
गाकर यों गुण देव गए हैं, वर्ष सात-सौ रोग सहे हैं।
हुए आखिर केवल धारी, हम० ॥२॥
मुक्त बने मुनि कर्म क्षय कर[2], 'धन मुनि' मान तजो! चिंतन कर।
बनो! अजर अमर अविकारी[3], हम० ॥३॥

---

१. तन का और मन का।
२. एक लाख वर्ष संयम पाला।
३. वि० सं० २००५ कार्तिक कृष्णा ११ बोरड़ी (महाराष्ट्र)।

मणि छप्पनवां

मन की ताकत

"मन के जीते जीत है, मन के हारे हार" इस उक्ति को चरितार्थ करने वाले राजर्षि प्रसन्नचंद्र थे। मात्र इस मन के सहारे से जिन्होंने सप्तम नरक की तैयारी कर ली और फिर चंद ही क्षणों में केवल ज्ञान पाकर मोक्षगामी बन गए। पढ़कर देखिए जरा मन का उतार-चढ़ाव !

तर्ज—तन नहीं छूता कोई

मन के जीते जीत है, और मन के हारे हार है।
ज्ञान से देखें अगर, सब मन पे दारमदार है ।।ध्रुवपद।।

मन बिगड़ते ही नरक-सप्तम की तैयारी हुई।
सुधरते ही केवली बन, हो गए भवपार हैं, मन०।।१।।

कौन थे कैसे हुए, सुन लो ! जरा हो सावधान।
नगर पोतनपुर पधारे, वीर जगदाधार हैं, मन०।।२।।

वंदनार्थ प्रसन्नचन्द्र नरेन्द्र आए, मुदित मन।
देशना सुन चरण लेने, हो गए तैयार हैं, मन०।।३।।

तर्ज—राणाजी आया बाव सूं

नन्हे-से सुत को गद्दी पै बिठाया,
मंत्रियों को राज्य संभलाया, नन्हे-से० ।।ध्रुवपद।।

वीर प्रभु से लेकर संयम,
विचर रहे मुनि करते तप मन भाया, नन्हे-से०।।१।।

समवसरे प्रभु राजगृह पुर,
वन में जाकर ऋषि ने ध्यान लगाया, नन्हे-से०।।२।।

एक ही चरण पर अचल खड़े हैं,
ऊर्ध्व बाहु बन अद्‌भुत दृश्य रचाया, नन्हें-से०।।३।।

तर्ज—राधेश्याम

दर्शन करने वीर प्रभु के, श्रेणिक महाराजा आया।
हयगय रथ पायक दल भारी, साथ नृपति अपने लाया ॥१॥
सुमुख दूत ने ध्यान स्थित, मुनि को जय-जयकर विरुदाया।
दुर्मुख बोला धिग्-धिग् इसने, छोटा बच्चा छिटकाया ॥२॥
मंत्री सारे बदल गए हैं, काम जिन्हें था संभलाया।
राज्य भ्रष्ट कर देंगे शिशु को, सुन मुनि मन गुस्सा छाया ॥३॥

तर्ज—गुलाबशाही केवडो

लड़ने लगे हैं खड़े ध्यान में,
मंत्रियों के साथ धर खार, राज ऋषिजी, लड़ने।
भूल गए संयम भार, राज ऋषिजी, लड़ने ॥ध्रुवपद॥
इतने में श्रेणिक राजा भी, निकला है करके नमस्कार, राज०॥१॥
वीर जिनेश्वर से फिर ऋषि की, पूछी है गति धर प्यार, राज०।
सप्तम नरक कहा प्रभुजी ने, चौंका मगध सरदार, राज० ॥२॥

तर्ज—दिल्ली चलो !

कैसे कहा, कैसे कहा, कैसे कहा जी ?
ऐसे मुनि का नर्क जाना कैसे कहा जी ?
श्रेणिक राजा फिर-फिर दिल में सोच रहा जी, ऐसे ॥ध्रुवपद॥
आखिर पूछा क्या वे सप्तम नर्क जाएगा ?
प्रभु बोले अब छठा पांचवां चौथा पाएगा।
विस्मित होकर फिर-फिर राजा पूछ रहा जी, ऐसे० ॥१॥
अगर मरे अब ! तीजे दूजे पहले नर्क में,
अब पशुयोनि अब नरयोनि पहले स्वर्ग में।
यावत् अब सर्वार्थसिद्धि के योग्य हुआ जी, ऐसे०॥२॥

तर्ज—हो भाभी ! तमे थोड़ा-थोड़ा थावो

हो नाथ ! ऐसे फर्क कहो कैसे कर डाला ? ॥ध्रुवपद॥
थोड़ी-सी देर पहले नरक कहा था सप्तम,
थोड़ी-सी देर पीछे सुरपुर बताया उत्तम।
प्रश्न फिर यों नरेश ने निकाला, हो नाथ ! ॥१॥

(भगवान) दुर्मुख की वानी सुनकर मुनिजी ने क्रोध किया,
सचिवों के साथ फौरन लड़ने का पंथ लिया।
खत्म कर दी है सारी शस्त्रशाला,
हो राजा ! ऐसे मन ही ने फर्क कर डाला ॥२॥
उस टाइम आकर तूने मेरे से प्रश्न किया,
उत्तर में नर्क सप्तम मैंने तत्काल कहा।
इत शीश[1] को मुनीश ने संभाला, हो राजा ! ॥३॥
सिर पर नहीं थे केश वस ! फौरन भान आया,
करने लगा क्या अरे ! मैंने तो संयम ठाया।
शुद्ध ध्यान का खुला है ऐसे ताला, हो राजा ! ॥४॥

तर्ज—हीरा मिसरी का

इधर पूछा तूने, कहा मैंने अमर विमान ॥ध्रुवपद॥
देव दुंदुभि वजी इधर से, पूछा नृप ने वजी किधर से ?
(प्रभु)अरे! हो गया केवल ज्ञान, इधर० ॥१॥
उत्सव करने आ रहे सुरवर, दुंदुभि मधुर वजा रहे सुरवर।
कर रहे मंगल गान, इधर० ॥२॥
मुदित हुआ नृप भी दर्शन कर, मुनिजी आठों कर्म खपाकर।
पहुंचे हैं निर्वाण, इधर० ॥३॥
भव्यों! मन को शुद्ध बनाओ ! छिन में भवजल से तर जाओ !
है 'धन मुनि' का फरमान, इधर० ॥४॥
दो हजार पांच शुभ संवत, कवि दिन कार्तिक वदि वारस तिथि।
ग्राम वोरड़ी जान, इधर० ॥५॥

---

१. शिरस्त्राण का चक्र बनाने के लिए।

मणि सत्तावनवां स्वार्थ का खेल

व्यक्ति प्यारा नहीं, स्वार्थ प्यारा है। स्वार्थ में कमी नजर आते ही व्यक्ति तत्क्षण बदल जाता है। देखिए ! राजकुमारी चेलना स्वार्थवस प्यारी बहन सुजेष्ठा को छोड़ कर राजा श्रेणिक के साथ अकेली ही चली गई।

तर्ज—चुराकर ले गया जालिम

अगर्चे ज्ञान से देखें, स्वार्थ का प्यार सारा है ।।ध्रुवपद।।
स्वार्थ जब भंग होता है, एक से एक फट जाता।
प्रेम रहने नहीं पाता, सुनो वर्णन सुप्यारा है, अगर्चे० ।।१।।
बड़ी नगरी विशाला थी, जहां महाराज चेटक थे।
लड़कियां सात थीं सबने, प्रवर जिन धर्म धारा है, अगर्चे० ।।२।।
पांच की हो गई शादी, अभी तक दो कुंवारी थीं[1]।
नरेश्वर ने नहीं लेकिन, ध्यान इस तर्फ डाला है, अगर्चे० ।।३।।

तर्ज—थोड़ी-थोड़ी धीरज राखो !

एक दिन एक योगिनी आयी, धार्मिक चर्चा-बात चलाई ।।ध्रुवपद।।
जिन मत का करती थी खंडन, वैदिक मत का करती मंडन।
बहन सुजेष्ठा सह नहिं पायी, एक० ।।१।।
धर्म दया में या हिंसा में, समता में, अथवा ममता में ?
यों प्रश्नों की झड़ी लगायी, एक० ।।२।।
हुई निरुत्तर हार चली है, दिल ईर्ष्या की आग जली है।
कन्या की तसवीर बनायी, एक० ।।३।।
फिर राजगृह पुर में आई, मगधाधिप को वह दिखलाई।
देख नृपति की मति ललचाई, एक० ।।४।।

---

१. सुजेष्ठा और चेलना।

तर्ज—हरि गीत

चित्र किसका है बता दो ! भेद जोगिन ने दिया।
मांग की है दूत द्वारा, किन्तु चेटक नट गया ।।
हुआ व्याकुल मगध स्वामी, भेद मंत्री पा गया।
फिक्र न करो तात ! तिलभर, अभी मैं खुद जा रहा ।।१।।

तर्ज—कैसो निकाल्यो भिक्षु पंथ

कहकर यों मंत्री, अभयकुमार, फौरन धाया-धाया।
धाया-धाया, हर्ष सवाया, कहकर ।।ध्रुवपद।।
प्रवर विशालपुर में आकर, हाट लगाई महलों के तल।
आधी कीमत में देता माल, सब मन भाया भाया, कहकर० ।।१।।
राजदासियां दौड़ी आतीं, मन चाही चीजें ले जातीं।
एक दिन दी श्रेणिक की तसवीर, अवसर आया-आया, कहकर०।।२।।

तर्ज—रहमत के बादल छाये

तसवीर निहारकर, मन बड़ी बहन ललचायी[1] ।।ध्रुवपद।।
पूछा चित्र कहां से लायी ? उत्सुकता मेरे मन छायी।
दासी ने बात सुनायी, तसवीर ० ।।१।।
बोली सुजेष्ठा जल्दी जा तू, व्यापारी से राय मिला तू।
मेरा कैसे बने यह सायीं ! तसवीर ० ।।२।।
दासी ने जा बात कही है, ऐसी सलाह अभय ने दी है।
हो एक सुरंग सुहायी, तसवीर ० ।।३।।

तर्ज—राधेश्याम

रथारूढ़ हो राजा श्रेणिक, नियत समय वहां आ जाए।
राज सुता जा मिले वहीं, ले उसको भूपति भग जाए ।।
दासी ने आ कह दी सारी, सुकुमारी ने हां भर ली।
अभय सचिव ने समय मास अरु, तिथि की चर्चा तय कर ली ।।१।।
फिर आकर के राजगृह पुर, तुरत खुदायी गुप्त सुरंग।
सुत बत्तीस सती सुलसा के, सज्ज किए, हैं हृदय उमंग ।।

---

१. सुज्येष्ठा।

सबसे परिवृत राजा श्रेणिक, निश्चित समय सिधाया है।
इधर सुजेष्ठा के दिल में भी, चंचलपन न समाया है ।।२।।

तर्ज—ज्ञानी गुरु अमने संभार जो

चित्त तेरा चंचल क्यों हो रहा ? चित्त तेरा उत्सुक क्यों हो रहा।
छोटी ने पूछा धर प्यार रे, चित्त ।।ध्रुवपद।।
भगकर कहीं पर जाना हो जैसे,
लगता है ऐसा विचार रे, चित्त० ।।१।।
सुनकर सुज्येष्ठा चुप हो खड़ी है, पर
छोटी का हठ था अपार रे, चित्र० ।।२।।
आखिर सुना दी सच्ची कहानी,
छोटी भी हो गयी तैयार रे, चित्त० ।।३।।
दोनों ही खुश-खुश निकली महल से,
वरने को भंभासार रे, चित्त० ।।४।।
पहुंची हैं ज्योंही अन्दर सुरंग के,
वोली सुज्येष्ठा पुकार रे, चित्त० ।।५।।

तर्ज—आजा-३ मेरे

प्यारी-प्यारी, प्यारी वहन ! कुछ ठहर जा, मैं अव ही जा आऊं।
भूषण की पेटी रह गयी, महलों से ले आऊं ।।ध्रुवपद।।
कहकर सुज्येष्ठा यों गयी, फिर लौट महलों में-२।
पीछे से सोचा चेलना ने, अकेली सिधाऊं, भूषण० ।।१।।
आयेगी यदि जेष्ठा, वंटा लेगी मेरे सुख को-२।
हा ! हा ! मतलवी विश्व की, क्या लीला सुनाऊं, भूषण० ।।२।।

तर्ज—रंगवा दे चुंदड़िया

गयी आगे, अकेली, ले मगधेश पलाया रे,
ओ लख पूरी न पाया रे, गयी ।।ध्रुवपद।।
इधर सुज्येष्ठा वापस आयी, वहन चेलना किन्तु न पायी।
नहि रथ नहि नरराया रे, हाहाकार मचाया रे, गयी ० ।।१।।
आओ-आओ ! जल्दी आओ ! श्रेणिक से मेरी वहन वचाओ !

वृंद भटों का धाया रे, मरण बत्तीसों ने पाया रे,[१]
देख जगत की माया रे, चरण सुज्येष्ठा ने ठाया रे, गई ! ॥२॥
वचकर श्रेणिक पहुंच गया घर, व्याह किया शुभ लग्न दिखाकर ।
हर्षित हृदय सवाया रे, क्रमशः समकित पाया रे, गई! ॥३॥
खेल स्वार्थ का 'धन' ने गाया, ग्राम बोरड़ी जनमन भाया ।
कार्तिक मास सुहाया रे, धन तेरस दिन आया रे[२], गयी! ॥४॥

---

१. सुलसा सती के ३२ पुत्र संघर्ष में मारे गये ।
२. वि० सं० २००५ काती वदी १३ ।

जन्म राशि पर भस्म गृह है, जिन शासन को[1] इससे भय है।
प्रभु ! करुणा दृष्टि निहालें ! विनती० ॥१॥
यदि थोड़ा-सा आयु बढ़ायें, तो यह ग्रह अब ही चल जाये।
जरा ताकत को, अजमा लें ! विनती० ॥२॥

तर्ज—नरम बनो जी नरम बनो

शक्ति नहीं रे मेरी शक्ति नहीं, आयु बढ़ाने की शक्ति नहीं।
प्रभु ने ऐसी साफ कही, आयु ॥ध्रुवपद॥
होनहार होकर रहता, उसको कौन बदल सकता !
क्यों करता है चिन्ता मन, कहकर यों तज मन वच-तन।
सिद्ध बने जगदीश सही, आयु० ॥१॥
भान ज्ञान का अस्त हुआ, चिन्तित संघ समस्त हुआ।
उत्सव इन्द्र मना रहे हैं, इत गौतम अकुला रहे हैं।
मूर्छा उनके प्रगट हुई, आयु० ॥२॥

तर्ज—हो भाभी ! तमे थोड़ा-थोड़ा थावो

हो नाथ ! मुझे छोड़ यहां मोक्ष क्यों पधारे ? ॥ध्रुवपद॥
पाकर के होश ऐसे, करने विलाप लगे।
झूठे पहचान छोड़े, मैंने सब सैण-सगे।
जान विश्वासी नाथ तुम्हें धारे, हो नाथ ! ॥१॥
मैं तो यों जानता था, हूं सब से मुख्य चेला।
मुझको न देंगे कभी, प्यारे प्रभु ये धकेला।
(पर) आप तो अकेले ही सिधारे, हो नाथ ! ॥२॥
बच्चे के नाई, पल्ला मैं ना पकड़ता कभी।
बाबत सुखों के प्रभु ! मैं ना झगड़ता कभी।
मुझे आखिर क्यों कर दिया किनारे, हो नाथ ! ॥३॥
भगवन् ! अब गौतम !गौतम ! बोलेगा कौन मुझे।

---

१ दो हजार वर्षों तक शुद्ध साधु-साध्वियों की क्रमशः अवनति होगी।

प्रश्नों के उत्तर अहो ! अब देगा कौन मुझे ।
मेरे तुम ही थे नाथ जी ! सहारे, हो नाथ ! ।।४।।

तर्ज—आजा ३ मेरे

प्रगटा-प्रगटा, प्रगटा है, ऐसे झूरते अनुभव का सितारा ।
पर्दा करम का हट गया, मिला केवल पियारा ।।ध्रुवपद।।
कहने लगे दिल में, अरे गौतम ! रहा क्या कर-२ ।
दुर्दान्त इस ही मोह ने, है तुझको पछाड़ा, पर्दा० ।।१।।
किसके हैं गुरु-चेले, सभी जंजाल झूठा है-२ ।
बस ! जुड़ गयी आतम से लौ, भगा मोह बेचारा, पर्दा० ।।२।।
सर्वज्ञ बन करके दिया, सद्बोध भव्यों को-२ ।
आखिर मिले महावीर से, बजा विजय नगारा, पर्दा० ।।३।।

तर्ज—हीरा मिसरी का

दीवाली कैसे चली ? अब सुन लो ! जरा विचार ।।ध्रुवपद।।
जिस टाइम प्रभु मोक्ष सिधाये, उत्सव करने सुरगण आये ।
बैठ विमान उदार, दीवाली० ।।१।।
अद्भुत रत्न प्रकाश हुआ तब, अन्धकार का नाश हुआ तब ।
ज्योति झिगामिग धार, दीवाली० ।।२।।
बोरड़ी में दीवाली आयी,[1] रचना यह 'धन मुनि' ने गाई ।
स्मर गुरु प्राणाधार, दीवाली० ।।३।।

(दीवाली का आध्यात्मिक रूप)

तर्ज—रखियां बन्धाओ भैया

दीपक जलाओ भैया ! दीवाली आयी रे ।
दीवाली आयी रे, सबको सुहायी रे ।।ध्रुवपद।।
वर्धमान स्वामी, जग गुरु गुणधामी ।
शिवपुरा सिधाये उनकी, तिथि कहलायी रे, दीपक० ।।१।।
(मन) मंदिर झड़काओ ! कूड़ा निकलाओ ।
फिर दीपक जलाओ चिन्मय, तुम सब भाई रे, दीपक० ।।२।।

---

१. वि० सं० २००५ काती वदी अमावस ।

समकित लक्ष्मी का, पूजन कर नीका ।
व्रत का लगाओ ! टीका, लख शिवसायी रे, दीपक० ॥३॥
वाचनादि चंगे, पांचों मन रंगे ।
पकवान रसीले खाओ ! हैं सुखदायी रे, दीपक० ॥४॥
प्रभु स्तवना ताजी, छोड़ो आतिशबाजी ।
फट-फट फटेंगे सारे, अघ दुखदायी रे, दीपक० ॥५॥
जुआ अगर खेलो, तो प्रभु से खेलो !
दोनों तरफ से जय हो, फर्क न राई रे, दीपक० ॥६॥
लख शुभ दीवाली, सुगुरु दयावाली ।
छोटी-सी ढाल रसाली, 'धन' ने सुनायी रे, दीपक० ॥७॥

मणि उनसठवां   संतों का उपहास

साधु-सन्तों की सेवा करो! कदाच न बन सके तो उपहास तो करो ही मत! देखो कंस की महारानी जीवयशा ने संसार पक्षीय देवर अतिमुक्तक (अयमंता) मुनि का उपहास करके सर्वनाश कर लिया।

तर्ज—चले आना हमारे अंगना

उपदेश सुन के, जरा ज्ञानी बन के,
मत करना! संतों का उपहास ॥ध्रुवपद॥
जितनी बने तुम करो उनकी सेवा,
संतों की सेवा से मिलता है मेवा-२।
सेवा न सझे अगर, रहना दूर ही मगर, मत० ॥१॥
करने से उपहास होता है नुकसान,
हुआ कंस राजा का इस ही से अवसान-२।
सुनो ध्यान धर के, मन शांत करके, मत० ॥२॥
देवक नरेश्वर की कन्या थी देवकी,
शादी हुई जिससे राजा वसुदेव की-२।
आये[1] कंस के सदन, लीला-लहर में मगन, मत० ॥३॥

तर्ज—ज्ञानी गुरु अमने संभार जो!

कंस रानी बैठी है गोख में, जीवयशा बैठी है गोख में,
पीकर के मदिरा अपार रे, कंसरानी ॥ध्रुवपद॥
रानी के देवर अतिमुक्त मुनिवर,
लेने को भिक्षा उदार रे, कंसरानी० ॥१॥
आते थे शांति से इतने में गौ ने,
शृंगों का मारा प्रहार रे, कंसरानी० ॥२॥

१. मथुरा में

क्षिति पर गिरे हैं ऋषिजी प्रहार से,
न सके वे तन को संभार रे, कंसरानी० ॥३॥
आए हैं उठकर फिर कंस के घर,
भाभी ने देखा दीदार रे, कंसरानी० ॥४॥

तर्ज—कांटों लागो रे देवरिया !

आओ-आओ हो देवर जी ! आओ भाभी के दरबार !
भाभी के दरबार, आओ ! गाओ! गीत उदार ॥ध्रुवपद॥
एक भाई तो राज्य कर रहे, एक भाई यों घर-घर फिर रहे।
भिक्षा हित हरबार, आओ ! ॥१॥
अरि गण को एक पकड़ जकड़ते, एक गौ-टल्ले से गिर पड़ते ।
है आश्चर्य अपार, आओ ! ॥२॥
कहती यों गल बाथ डालकर, मुनि का हास्य कर रही फिर-फिर।
क्रुद्ध हुए अणगार, आओ ! ॥३॥

तर्ज—अलबेला छैला

थोड़ी-सी ठहर जा! गीतों का ज्ञान सुना दूं।
थोड़ी-सी ठहरजा ! गीतों की भूख भगा दूं ॥ध्रुवपद॥
गीतों का है शौक तुझे, सुन मेरा वचन विलास।
सप्तम गर्भ देवकी का, तेरा करेगा सत्यानाश है, थोड़ी-सी० ॥१॥
केश पकड़ कर कंस नृपति को, मारेगा दे पछाड़ा।
ऐसे कहकर फिरे सुमुनि, इत नशा उतर गया सारा, थोड़ी-सी० ॥२॥
पति से सारी बात सुनायी, बदल गया सुन चेहरा।
बोला कंस प्रिये !क्यों तूने, जा उस मुनि को छेड़ा, थोड़ी-सी० ॥३॥

तर्ज—रहमत के बादल छाए

(कंस) मुझको बकसाइये ! मेरी बहन के बेटे सारे[1] ।।ध्रुवपद।।
सरल भाव से हां कह दी है, हुई देवकी गर्भवती है ।
थे कंस-भृत्य रखवारे, मुझको० ।।१।।
जन्म हुआ है सुत का ज्योंही, दिया चरों ने लाकर त्यों ही ।
रूं फूले नृप के सारे, मुझको० ।।२।।
शिशु को तुरत पछाड़ दिया है, मात-पिता का हिला हिया है ।
लेकिन निज वचन संभारे, मुझको० ।।३।।
पापी ने अघ घोर किये हैं, क्रमशः षट् सुत मार दिये हैं ।
पर, न मरे प्रभु के प्यारे, मुझको० ।।४।।

तर्ज—राधेश्याम

भद्दिलपुर में नाग सेठ घर, सुलसा प्राण पियारी थी ।
कर्मयोग से मृतवन्ध्या थी जन्म-जन्म सुतहारी थी ।।
भक्ति विवश सुर नैगमेषि ने, छहों देवकी के नंदन ।
सुलसा के घर ला रक्खे हैं, मृत शिशु श्री वसुदेव सदन ।।१।।
देख स्वप्न ने गज-हरि-रवि-शशि-अग्नि श्री-सागर सुखकार ।
इधर देवकी रानी ने फिर, धारण गर्भ किया अविकार ।।
वृद्धि पा रहा गर्भ भाद्रवी-कृष्ण-अष्टमी आयी है ।
जो जग जाहिर कृष्ण चन्द्र की, जन्म तिथि कहलाई है ।।२।।

तर्ज—तन नहीं छूता कोई

हो गया आनन्द से, श्रीकृष्ण का अवतार है ।
पुण्यवतों के सदा, पग-पग पै जय-जयकार है ।।ध्रुवपद।।
अजब चंचलता वदन की, देख रानी देवकी ।
हो गयी रूं-रूं विकस्वर, हर्ष का न शुमार है, हो गया० ।।१।।
रात के बारह बजे हैं, सो रहे सब चौकीदार ।
देवकी रानी ने पति से, यों कहा उस बार है, हो गया० ।।२।।

---

१. मैं निःसंतान हूं ।

तर्ज—हो भाभी तमे थोड़ा-थोड़ा थावो

हो नाथ ! इस लाल को तो कंस से बचाओ!।।ध्रुवपद।।

स्वप्नानुसार पिया ! है यह अवतार भारी,
रक्खेगा नाम अपना कर देगा विश्व जारी।
जरा ध्यान मेरी अर्ज पर लगाओ, हो नाथ ! ।।१।।

पापी ने पुत्र मेरे सारे ही मार डाले,
हा ! हा ! दुख गाऊं कितना क्षिति पर पछाड़ डाले।
पिया ! अब तो हिये को पिघलाओ, हो नाथ ! ।।२।।

लड़के के लिए छल-बल करने में हर्ज नहीं,
प्यारे इस लाल को तुम जाकर छिपाओ कहीं।
स्वर्ण अवसर न हाथ से गंवाओ, हो नाथ ! ।।३।।

तर्ज—किस फिक्र में बैठे हो ?

इस लाल को लेकर के, प्यारी ! मैं कहां जाऊं ?
इज्जत की हतक हो गर, बिच में पकड़ा जाऊं।।ध्रुवपद।।

है अपना कौन यहां, जाकर मैं रखूं जहां।
बोली है महारानी, सुन लो मैं बतलाऊं, इस० ।।१।।

गोकुल में सखी प्यारी ! है नन्दे की नारी।
रक्खो सुत उसके घर, सच-सच मैं दरसाऊं, इस० ।।२।।

तर्ज—जीवन पल-पल मां जाय रे

क्या था देरी का काम रे, स्मर कर जिनवर का नाम,
राजा लेकर चले हैं लाल को-२ ।।ध्रुवपद।।

द्वार नगरी का पुण्यों से खुल गया,
राह यमुना में पुण्यों से मिल गया।
आये नन्द जी के द्वार, मन में खुशियां अपार, राजा ० ।।१।।

हाल सारा यशोदा से कह दिया,
लाल प्यारा हाथों में उसके दे दिया।
लड़की बदले में ली, फुरती चलने में की,
राजा लेकर चले हैं बालिका-२ ।।२।।

लड़की आकर के देवकी से है मिली,

चौकीदारों की आंखें इत हैं खुलीं।
लेकर बाला उदार, पहुंचे राजा के द्वार, राजा ० ॥३॥

तर्ज—कैसी बानी सुनाई

लेकर लड़की को कर में, कहा कंस राजा ने ॥ध्रुवपद॥
अरी लड़की ! क्या तू ही मुझको-२, बड़ी हो जान से मारेगी,
नाश कुल का कर डारेगी, ऐसे हंस करके दिल में, कहा० ॥१॥
छिन्न नासिका करके दे दी हां-२, सोच रहा यह क्या बेचारी।
करेगी सेना है भारी, मैं भी अद्भुत हूं बल में, कहा० ॥२॥

तर्ज—आजा ३ मेरे

गोकुल-गोकुल-गोकुल में माधव बढ़ रहे, मन सबके सुहाये।
काला था तन इस ही लिए श्रीकृष्ण कहाये ॥ध्रुवपद॥
गो पूजन के मिष, वहीं मां देवकी भी आ-२।
करती थी अपने लालजी के, लाड़ सवाये, काला० ॥१॥
गोविंद बचपन में, बड़े ही थे चपल तन के-२।
नहिं चैन पड़ता था उन्हें, बिना धूम मचाये, काला० ॥२॥
मक्खन चुराते थे, कभी गोरस ढुलाते थे-२।
कब ही किसी को पीटते, नहिं रुकते रुकाये, काला० ॥३॥
दुश्मन[1] अनेकों ही, उन्हें वहां मारने आये-२।
पुण्यों से हरि के मर गये, कई डर कर पलाये, काला० ॥४॥

तर्ज—ज्ञानी गुरु अमने संभार जो !

राम भाई गोकुल में आ रहे, बन करके चौकीदार रे ॥ध्रुवपद॥
हरि को पढ़ाते हर रोज प्रेम से,
अब सुन लो इधर का अधिकार रे, राम० ॥१॥
इक रोज कंस नृप आया वहन-घर।
लख लड़की को प्रगटा विचार रे, राम० ॥२॥
मुनि के वचन क्या झूठे पड़ेंगे,
अथवा है और कुछ जाल रे, राम० ॥३॥

---
१. शकुनि-पूतना आदि।

तत्काल नैमित्तिक को बुलाया,
उसने बताया यह हाल रे, राम० ॥४॥

तर्ज—तू है प्राण पियारो म्हारो

बदल न सकती मुनि की वाणी, सुन मथुरा-सरदार-दार।
जिंदा है तेरा दुश्मन जग में, इसमें फर्क न तार-तार ॥ध्रुवपद॥
जो वृष हय को नष्ट करेगा, हस्ति युगल के प्रान हरेगा।
गर्दभ मेष विदार-दार, बदल० ॥१॥
जो कालिय का दमन करेगा, मल्ल युगल हन विजय वरेगा।
उसको शत्रु विचार-चार, बदल० ॥२॥
किया परीक्षण वृष भिजवाया, माधव ने परभव पहुंचाया।
न लगी लंबी वार-बार, बदल० ॥३॥
फिर हय मैंढ़ाखर पहुंचाये, हरि ने सारे राह लगाये।
चौंका कंस अपार-पार, बदल० ॥४॥

तर्ज—राधेश्याम

पड़ह बजाया मथुरा में, जो सारंग धनुष्य चढ़ायेगा।
भामा भगिनी वह व्याहेगा, बड़ा वीर कहलायेगा।
जा गोकुल में अनाधृष्टि, श्री हरि को गुपचुप लाया है।
धनुष चढ़ाया चौंक कंस ने, मल्लयुद्ध रचवाया है ॥१॥

तर्ज—मेरा रंग दे तिरंगी चोला

यह बात कान में आई, झट बोले लाल कन्हाई ॥ध्रुवपद॥
हम भी मल्ल युद्ध देखेंगे, बल बोले हर्गिज न टलेंगे।
नहा-धोकर करो सजाई, झट० ॥१॥
अरी यशोदा ! कर तैयारी, जायेंगे मथुरा गिरधारी।
बोली है यशोदा भाई, झट० ॥२॥
ठहरो थोड़ी देर धैर्य धर, कर दूंगी मैं तैयारी फिर।
(सुन) बलवे आंख दिखाई, झट० ॥३॥
(अयि) दासी ! तुझको शर्म न आती।
जो न कथन पर ध्यान लगाती।
कह यों ले चले विदाई, झट० ॥४॥

तर्ज—चुराकर ले गया जालिम

कृष्ण कुछ हो गया दुर्मन, देख अपमान माता का ।।ध्रुवपद।।
उदासी किस लिये भैया ! तुरत बलभद्र ने पूछा ।
कहा हरि ने किया तुमने, तात ! अपमान माता का, कृष्ण० ।।१।।
कंस का हाल तब सारा, खोलकर राम ने गाया ।
देवकी मां तुम्हारी है, कहां अपमान माता का, कृष्ण० ।।२।।

तर्ज—जब तुम ही चले परदेश

सुनते ही बल के वैन, बदल गए नैन,
तेज न समाया, रूं-रूं में गुस्सा छाया ।।ध्रुवपद।।
बोले हरि अब बदला लूंगा, जुल्मी को आज उड़ा दूंगा ।
क्यों न मुझे इतने दिन भेद बताया, रूं-रूं में० ।।१।।
बस ! जा यमुना में नहाने लगे, मन में आनंद मनाने लगे ।
डसने कालिय नाग दौड़ कर आया, रूं-रूं में० ।।२।।
माधव ने फौरन पकड़ लिया, छिन भर में उसका दमन किया ।
नथ पहना कर वाहन उसे बनाया, रूं-रूं में० ।।३।।
फिर सब मथुरा की तर्फ चले, रास्ते में दो गजराज मिले ।
हरि-बल ने दोनों को राह लगाया, रूं-रूं में ०।।४।।

तर्ज—बन योगी मन भटकाई ना !

अब सभी अखाड़े में आये, आसन मंचों पर हैं लाये ।।ध्रुवपद।।
मल्ल परस्पर अड़ते थे, आपस में अधिक उछलते थे ।
इत राम काम निज करते थे,
हरि को निज-पर सब दिखलाये[1] अब० ।।१।।
पाकर मथुरा पति का शासन, चाणूर लगा करने गर्जन ।
सह न सके आये नारायण, लोगों के दिल हैं अकुलाये, अब० ।।२।।

तर्ज—नरम बनोजी नरम बनो !

ठीक नहीं जी ठीक नहीं, इनका लड़ना ठीक नहीं ।
जनता सारी बोल रही, इनका लड़ना ठीक नहीं ।।ध्रुवपद।।

१. समुद्र विजय एवं कंस आदि ।

मल्ल महा मतवाला है, इधर बाल गोपाला है।
कहा कंस ने क्यों आया, मैंने तो नहिं बुलवाया।
लड़ने दो देखो सब ही, इनका० ॥१॥
बोले माधव मैं बच्चा, मल्लयुद्ध में तू रच्चा।
लेकिन आजा! हो तैयार, दिखला दूंगा अजब बहार।
आज समझ ले! जान गई, इनका० ॥२॥
मुष्टिमल्ल इत आया है, हलधर ने अटकाया है।
करते कुश्ती चारों वीर, खेल अनेक दिखाते धीर।
धरा बेचारी धूज रही, इनका० ॥३॥

तर्ज—दिल्ली चलो!

मार डाले, मार डाले, मार डाले हैं।
राम-कृष्ण ने मल्ल दोनों मार डाले हैं ॥ध्रुवपद॥
अवसर पाकर घाव मुष्टि के उर में मारे हैं,
हुआ धड़ाका दोनों ही यमलोक सिधारे हैं।
भयभ्रान्त हो कंस ने हरि-बल निहारे हैं, राम० ॥१॥
बोला रे रे सुभटो! इन्हें पछाड़ डालो तुम!
हैं ये मेरे दुश्मन इनको मार डालो तुम!
सुनते ही माधव ने डोले लाल निकाले हैं, राम० ॥२॥

तर्ज—सुना दे-३ किसना!

पछाड़ा, पछाड़ा, पछाड़ा हरि ने।
केश पकड़ कर कंस को पछाड़ा हरि ने ॥ध्रुवपद॥
गुस्से में बेहद आये, पापी के तर्फ सिधाये-२।
धक्का देकर मंच से उतारा हरि ने, केश० ॥१॥
रे रे निर्दय! हत्यारा! पापों का फल अब सारा-२।
दिखलाता हूं आज यों पुकारा हरि ने, केश० ॥२॥
चारों ही तर्फ घुमाकर, पटका है फिर पृथ्वी पर-२।
लात मार छाती पर जी हर डारा हरि ने, केश० ॥३॥
यादव कुल विस्मय पाया, हरि को आकंठ लगाया-२।
फिर उग्रसेन को कैद से निकाला हरि ने, केश० ॥४॥

उत्सव कर गद्दी दी है, भामा से शादी की है-२।
आखिर में जा जरासंध को मारा हरि ने, केश० ॥५॥

तर्ज—राधेश्याम

अब देखो तुम ! जीवयशा ने, किया एक मुनि का उपहास।
निकला कैसा बुरा नतीजा, हुआ सभी का सत्यानाश ॥१॥
सुन यह वर्णन संतों का, उपहास कभी तुम मत करना।
सेवा करना अगर बने, वरना मुनि निंदा से डरना ॥२॥
दो हजार पांच शुभ संवत, काती वदि छठ दिन आया।
गांव बोरड़ी में गुरु कृपया, 'धनमुनि' ने वर्णन गाया ॥३॥

मणि साठवां — हठीला बनिया

हठीले व्यक्ति लोह वनिये की तरह दुखी होते हैं। चार वनिये धन कमाने गए थे। तीन तो हीरे लाये और चौथा हठ करके लोहा लाया। तीनों धनी एवं सुखी बने एवं चौथा जीवन-भर रोता रहा। उक्त वर्णन को पढ़कर शीघ्राति-शीघ्र कुगुरुओं को छोड़िए और सद्गुरुओं को धारण करिए !

तर्ज—धर्म पर डट जाना

हठीले नर-नारी, कभी न पाते चैन ॥ध्रुवपद॥
चुका कर मौका फिर चिल्लाते, लोहवणिकवत् अति पछताते।
कथा है रसवारी, कभी० ॥१॥
शहर में रहते बनिए चार, गरीबी घर थी विनाशुमार।
इधर थे परिवारी, कभी० ॥२॥
कमाने धन परदेश सिधाये, पंथ में खान लोह की पाये।
ले लिया धन[1] भारी, कभी० ॥३॥

तर्ज—दिल्ली चलो !

उठ चले हैं, उठ चले हैं, उठ चले हैं जी।
लोह भार ले चारों वनिये उठ चले हैं जी ॥ध्रुवपद॥
चलते-चलते रास्ते में फिर ताम्र आया है,
लोह फेंक कर तीनों ही ने ताम्र उठाया है।
किन्तु हठीले चौथे भाई नहिं बदले हैं जी, लोह०॥१॥
थोड़ी दूर चले फिर चांदी-सोना आ गया,
गये वदलते फिर हीरों का आगर पा गया।
खुश हो तीनों बोले अपने भाग्य खुले हैं जी, लोह०॥२॥

---

१. लोहा।

तर्ज—रंगवा दे चुंदड़िया

वांधो-वांधो गठड़ियां ! उत्तम अवसर आया जी ।।ध्रुवपद।।
सोना तज कर हीरे लिए हैं, तीनों ने मन चाहे किए हैं।
पर चौथे ने हठ ठाया जी, नहिं समझा समझाया जी, वांधो! ।।१।।
तीनों जवरन देने चाहे, चौथे ने कटु वचन सुनाये।
मुश्किल पिंड छुड़ाया जी, आकर घर सुख पाया जी, वांधो ! ।।२।।
हीरे वेच अमित धन लाये, ऊंचे-ऊंचे महल झुकाये।
पुर में सुयश सुहाया जी, तीनों ने खूब कमाया जी, वांधो ! ।।३।।

तर्ज—अखियां मिला के

वेहद हठ कर, लोह उठाकर, चौथा भी आया ।।ध्रुवपद।।
वेचा है लोह शहर में, रुपये अत्यल्प मिले हैं।
खर्चे खुद ने कुछ खर्चे नारी ने, कुछ शेप रहे हैं, वेहद०।।१।।
अव वनिया चने भूंजकर, घर-घर में डोल रहा है।
सर्दी-गर्मी का है न खयाल, मुख यों वोल रहा है, वेहद०।।२।।

तर्ज—तुमको लाखों प्रणाम

चने जोर गरम-२, अजव मसालेदार, चने।
खाओ वन दिलदार, चने ।।ध्रुवपद।।
एक वार जो खा जाओगे, तो वापस दौड़े आओगे।
लेकर के कलदार, चने०।।१।।
गाना सुन शिशु दौड़े आते, चने चावकर मन हुलसाते।
है एक दिन का अधिकार, चने०।।२।।
मिल कर तीनों मित्र वाग में, लीन हो रहे रंग-राग में।
यह पहुंचा उस वार, चने०।।३।।
पहचाना फौरन वुलवाया, लेकिन यह ओलख नहिं पाया।
वे वोले धर प्यार, चने०।।४।।

तर्ज—तन नहीं छूता कोई

अय चने वाले ! वता तू, क्या हमें पहचानता ?
नां जी नां महाराज! मैं तो आपको नहिं जानता ।।ध्रुवपद।।

मित्र याद कर हम सब गये थे, धन कमाने के लिए।
लिए हीरे प्रवर हमने, तू रहा हठ तानता, अय० ॥१॥
वे ही हो क्या तुम! अरे हां!, बस तुरत बनिया गिरा।
शुद्धि बिलकुल रह न पाई, आ गई बेभानता, अय० ॥२॥
सावचेत किया सभी ने, मिल उठा बैठा किया।
दिए रुपये सौ गया है घर, नयन जल ठानता, अय० ॥३॥[1]

तर्ज—आजा २ मेरे

पूछा-पूछा, पूछा है प्यारी ने पिया! क्यों आंसू बहाये?
किसने मारा आपको, सब हालात सुनायें!॥ध्रुवपद॥
बसते हैं नगरी में, धनी-निर्धन सभी कोई-२।
कायदा है किन्तु कोई, न किसे सताये, किसने० ॥१॥
जाकर के थाने में, अभी फरियाद कर दूं मैं-२।
गमगीन काहे हो रहे, कुछ साहस बढ़ायें! किसने०॥२॥

तर्ज—हो भाभी तमे थोड़ा-थोड़ा थावो

हे प्यारी! मेरे हठ ने ही मुझे मार डाला ॥ध्रुवपद॥
रोते गले से किस्सा, सच्चा सब कह सुनाया।
न सुनी किसी की हा! हा! हठकर के लोह लाया।
रंग तीनों के लग रहा निराला, हे प्यारी! ॥१॥
सुनते-सुनते ही स्त्री ने, कुड़छी की एक मारी।
बोली रे मूर्ख! जो तू, ले आता रत्न भारी।
मैं भी बनती सेठानी सुकुमाला, हे प्यारी! ॥२॥
बनिये ने रो-रो अपना, जीवन व्यतीत किया।
आते जब याद हीरे, फड़-फड़ फड़कता हिया।
लेकिन हीरों का पुंज कहां आला, हे प्यारी! ॥३॥
हीरों से सच्चे गुरु पाकर भी जो न लेंगे।
बनिये की नाईं भाई, रोते फिर वे रहेंगे।
ज्ञान 'धन' ने सुनाया तत्त्व वाला', हे प्यारी! ॥४॥

---

१. वि० सं० २००५ कार्तिक मास, बोरड़ी।

मणि इकसठवां बाबाजी और ब्रह्मचर्य

पुस्तक में लिखा था—ब्रह्मचर्य पालना दुष्कर है। सरल एवं भद्र प्रकृति के एक बावे ने उसे काटकर दुष्कर की जगह सुकर कर दिया। फिर ऐसी अजब घटना घटी कि सुकर को काटकर 'शील पालना दुष्कर, दुष्कर, महादुष्कर'—ऐसे लिखना पड़ा, अस्तु ! देखिए जरा पढ़कर—

तर्ज—ज्ञानी गुरु अमने संभार जो !

ब्रह्मचारी दुनिया में धन्य हैं! शीलधारी दुनिया में धन्य हैं!
करते हैं दुष्कर कार रे, ब्रह्मचारी ।।ध्रुवपद।।
ब्रह्मचर्य पालना मुश्किल बहुत है,
तरना है उदधि अपार रे, ब्रह्मचारी०।।१।।
उठती है काम की दिल में तरंगें,
तव रहता न ज्ञान का संचार रे, ब्रह्मचारी०।।२।।
संन्यासी फक्कड़ एक दिन सुना रहा,
धार्मिक कथा धर प्यार रे, ब्रह्मचारी०।।३।।
आया कथा में विस्तार शील का,
ऐसा था लेख अविकार रे, ब्रह्मचारी०।।४।।

तर्ज—नरम वनो जी नरम वनो

दुष्कर है जी दुष्कर है, शील पालना दुष्कर है ।।ध्रुवपद।।
बावा बोल उठा तत्काल, लाओ पिच्छी सह हरिताल।
पाल रहा मैं शील सदा, दुष्करता देखी न कदा।
इसमें भूल सरासर है, शील०।।१।।
भक्तजनों ने कहा पुकार, बावा ! भूल नहीं है तार।
बचपन में संन्यास लिया, तुमने अनुभव है न किया।
न रुका किंतु जटाधर है, शील०।।२।।

सुकर कर दिया दुष्कर का, सुनो हाल एक वासर का।
था उस पुर में साहूकार, एक पुत्र धन माल अपार।
हुई सास-बहू के खड़बड़ है, शील०॥३॥

तर्ज—आजा-३ मेरे

निकली-निकली-निकली, बहू ससुराल से, झट लेकर विदाई।
भूली है लेकिन राह, पीहर जाने न पाई ॥ध्रुवपद॥
बेला थी सन्ध्या की, इधर से आ गई आंधी-२।
अंधेर बेहद छा गया, कुछ न दिया दिखाई, भूली० ॥१॥
पहुंची नगर-बाहर, नजर एक झोंपड़ी आई-२।
बाबा वहां पर सो रहा, यों बोली है बाई, भूली०॥२॥
मर्जी करो बाबा! गुजारूं रात यहां रहकर-२।
संकट विकट है शीश पर, सब घटना सुनाई, भूली०॥३॥

तर्ज—अमर रहेगा धर्म हमारा

बाबे ने की साफ मनाही, और कहीं पर जा तू बाई! ॥ध्रुवपद॥
रात अंधेरी इधर अकेला, कदाच हो जाए मन मैला।
बिगड़ जाय मेरी धर्म कमाई, बाबे० ॥१॥
बहुत कहा तब बोला आखिर, जा रह जा मंदिर के अंदर।
तुरत बहू मंदिर में आई, बाबे०॥२॥
द्वार बन्द कर बैठी अंदर, पछताती निज मूरखता पर।
इधर सुनो तुम सज्जन भाई!, बाबे०॥३॥

तर्ज—गाये जा गीत मिलन के

बीती थोड़ी-सी बार, बढ़ा है विकार,
बाबे का दिल बिगड़ा है ॥ध्रुवपद॥
कहता है फिर-फिर न मिलेगा कोई, मेरे-सा मूरख और।
आई थी पद्मिनी रंभा-सी सुन्दर, बैठा रहा बन ढौर।
न सका करने विलास, चुका दिया चांस, बाबे का०॥१॥
जा करके अब भी मंदिर खुलाऊं, मन की मिटाऊं प्यास।
अब मुझको देरी करनी न चाहिए, मौका मिला है खास।
ऐसे करके विचार, बजाये किवाड़, बाबे का० ॥२॥

तर्ज—हो भाभी तमे थोड़ा-२ थावो वरनागी

हे प्यारी ! झट मंदिर की खोल दे किवाड़ी ।।ध्रुवपद।।
मूरखपने से तुझे, मैंने इन्कार किया ।
पीछे से प्यारी! तेरी सूरत पर ध्यान दिया ।
दे दे माफी! हुई है भूल भारी, हे प्यारी ! ।।१।।
लेकिन सती थी वहू, दरवाजा है न खोला ।
गुस्से में लाल होकर वावा वह खूब बोला ।
आखिर मंदिर पै चढ़ा दुराचारी, हे प्यारी! ।।२।।
फौरन उतारा अण्डा, घुसने लगा है अन्दर ।
लेकिन थी स्थूल काया, विच में फंसा है जाकर ।
रात सारी ही कष्ट से गुजारी, हे प्यारी ! ।।३।।

तर्ज—धर्म पर डट जाना

उदय दिनकार हुआ, वहू तुरत घर आई ।।ध्रुवपद।।
इधर से भक्त लोग सब आए, लेकिन वावा वहां न पाए ।
फिक्र अपार हुआ, वहू०।।१।।
यहीं पर है सामान तमाम, कहां वह रम गया रमता राम ।
सभी के विचार हुआ, वहू०।।२।।

तर्ज—सुना दे-३ किसना !

लगाई-लगाई-लगाई सवने ।
वावाजी की खवर लगायी सवने ।।ध्रुवपद।।
मंदिर पर नजर चढ़े हैं, आकर झट पैर पड़े हैं-२।
जय-जय स्वर से की है वधाई सवने, वावाजी०।।१।।
वाहिर ला वात सारी, भक्तों ने पूछी प्यारी-२।
पोथी मंगवाई ला दिलाई सवने, वावाजी०।।२।।

तर्ज—राधेश्याम

पच्छी और हरिताल हाथ ले, सुकर शब्द को काट दिया ।
दुष्कर-दुष्कर शील महादुष्कर, है ऐसा लेख किया ।

धन्यवाद है उस बाई को, रख दी जिसने मेरी लाज ॥
यों कहकर सब हाल सुनाया, चकित हुआ है श्रोतृ समाज ॥१॥
योगी रमा योग के अन्दर, अब देखो भवि लोगो! तुम।
कितना गजब काम करते, जो धरते ब्रह्मव्रत हरदम।
दो हजार पांच शुभ संवत, माघ कृष्ण ग्यारस सुखकार ॥
गुरुकृपया खंभात शहर में 'धन मुनि' करता धर्म प्रचार ॥२॥

मणि बासठवां वचन का घाव

सिंह ने बढ़ई को कितना धनी एवं सुखी बना दिया था लेकिन मूर्ख बढ़ई ने केवल एक कुवचन बोलकर सारा खेल बिगाड़ दिया। इस कहानी को पढ़कर मुख से कभी कुवचन मत बोलो।

तर्ज—रघुपति राघव राजा राम

चार दिनों के हो मेहमान, मत बोलो तुम बुरी जबान।
बुरी जबां से है नुकसान, मत बोलो तुम बुरी जबान ॥ध्रुवपद॥
मिल जाते हैं छुरी के घाव, लेकिन जबां बुरी के घाव।
नहिं मिलते कुछ कर लो ज्ञान, मत० ॥१॥
उड़ जाता वर्षों का प्यार, होने लगती है तकरार।
इसीलिए कहते भगवान, मत० ॥२॥
वन में रहती सिंहनी एक, सिंह हुआ सुत वीर विवेक।
इक दिन मां ने किया बयान, मत० ॥३॥

तर्ज—राधेश्याम

रे सुत ! डरते रहना हरदम, तू काले सिर वाले से।
डरने की न जरूरत तुझको, और किसी मतवाले से ॥१॥
मानी सीख मात की क्रमशः, हुआ बड़ा एक दिन वन में।
मिला अचानक खाती, काला शीश देख चौंका मन में ॥२॥
वन की तर्फ भगा वनराजा, इधर भगा तक्षक डर कर।
आगे जा फिर देखा हरि ने, भगा जा रहा काला सिर ॥३॥
सिंह दौड़ पीछे से आया, तक्षक डरता स्तब्ध हुआ।
विस्मित हरि ने अपनी माता, वाला सारा हाल कहा ॥४॥
डरते रहना काले सिर से, माता ने फरमाया था।
इसी हेतु से तुझे देख मैं, हो भयभीत पलाया था ॥५॥

तर्ज—म्हारी छोटी-सी वैरागण नै

क्या अजब शक्ति है तेरे में, जरा-सी बतला दे ! ॥ध्रुवपद॥
भैया ! जो अवसर पाऊं, तो अद्‌भुत खेल दिखाऊं।
कहा हरि ने चल दिखला दे ! जरा० ॥१॥
जंगल में खाती आया, एक वृक्ष चीर कर गाया।
तेरी गर्दन बीच टिका दे ! जरा० ॥२॥
सिंह ने गर्दन ठाई, खाती ने कील लगाई।
फिर बोला जोर लगा दे ! जरा० ॥३॥

तर्ज—म्हारी रस सेलड़ी

सब जोर लगाया, लेकिन नहिं छूट सका उस कैद से ॥ध्रुवपद॥
रूं-रूं में वह चला पसीना, आखिर कील निकाली।
खुश हो मृगपति बोला बेशक, तू बेहद बलशाली रे, सब०॥१॥
दोनों ही अब दोस्त बन गए, खाती वन में आता।
साथ सिंह के मिलता-जुलता, मन आनन्द मनाता रे, सब०॥२॥
गज-कुंभस्थल के थे मोती, हरि ने इसे दिए हैं।
न रहा धन का पार सदन में, दुख सब दूर हुए हैं, सब०॥३॥

तर्ज—गाये जा गीत मिलन के

फोड़ा पीठ में निकला, खाती हुआ दुबला,
चिंता ने तन चूंटा है ॥ध्रुवपद॥
पीड़ा बढ़ी है बेहद बदन में, शांति नहीं क्षण एक।
खाना रुका है पीना रुका है, रहने न पाया विवेक।
इक दिन हिम्मत कर के, गया वन चल के, चिंता ने० ॥१॥
जाकर मृगेन्द्र से सुख-दुख की अपनी, सारी सुनाई बात।
खाती की आंखें डबडब हुई, यों बोला है सुन ले भ्रात !
है अब अंतिम मिलना, आया मेरा मरना, चिंता ने० ॥२॥
उल्टा सुलाकर खाती को सिंह ने, चीरा नखों से अदीठ।
सारा मवाद फिर चूसा है मुंह से, हल्की बना दी पीठ।
पट्टी बांधी है घर आ, रोग अब न रहा, चिंता ने० ॥३॥

तर्ज—दुनिया में बाबा !

थोड़े ही दिनों में खाती तो हो गया ताजा ।।ध्रुवपद ।।
ताजा होकर लिया कुल्हाड़ा, वन में आया हर्ष अपारा ।
मिला मृगों का राजा, थोड़े० ।।१।।
पूछा कैसा है तेरा तन! सभी तरह खुश है मेरा मन ।
कर दिया तूने साजा, थोड़े० ।।२।।
फिर पूछा यदि हो कुछ मन में, कह दे पूर्ति करूं इक छिन में ।
अहो ! बोला बेअंदाजा, थोड़े० ।।३।।

तर्ज—हो भाभी तमे थोड़ा-थोड़ा

हो भाई ! जरा आती है ग्लानि मन मेरे ।।ध्रुवपद।।
उत्तम इस देह पर, गौ-भक्षक का मुंह लगा ।
जीवन बना है दागी, ऐसा कुछ भाव जगा ।
हरि ने सुनते ही नैन निज फेरे, हो भाई ! ।।१।।
रे रे कृतघ्न ! तुझे अब ही मैं मार डालूं ।
छिन ना विराम करूं, नख से विदार डालूं ।
पर कोल-वचन हुए हैं मेरे-तेरे, हो भाई ! ।।२।।

तर्ज—आजा-३ मेरे

गर्दन-गर्दन, गर्दन झुकाकर सिंह ने, कहा मार कुल्हाड़ी ।
खाती ने थर-थर धूजते, जरा धीरे-से मारी ।।ध्रुवपद।।
लगते ही गर्दन से, तुरत बहने लगा लोही-२।
फिर भी न समझा मूर्ख, तब यों बोला मृगारी, खाती०।।१।।
यह घाव दो दिन में, मेरे मिल जाएगा वापस-२।
चुभता रहेगा किंतु कुवचन, मर्म-प्रहारी, खाती०।।२।।
जा आज तो जिंदा, कभी फिर मुंह न दिखाना-२।
कितनी थी प्रीति एक ही, कुवचन ने बिगाड़ी, खाती०।।३।।

तर्ज—राधेश्याम

इस वर्णन का सार यही है, कुवचन कोई मत बोलो !
जो कुछ भी कहना हो भैया ! प्रथम उसे दिल में तोलो !
दो हजार पांच शुभ संवत, माघ-कृष्ण बारस सुखकार ।
गुरुकृपया खंभात शहर में 'धन' ने गाया यह अधिकार ।।१।।

खबर लगाई, सब बातें सच्ची पाई, अविनीत के ईर्ष्या छाई।
पापी ने गुरु के अवगुण गाए हैं, दोनों० ॥१॥
सर की पाली पर, बैठे हैं दोनों तरु तल, बुढ़िया इक आई जल भर।
पंडित लख तन के रोम फुलाए हैं, दोनों० ॥२॥
पूछा प्रणमन कर, कब आयेगा सुत सुखकर,
इतने में कुंभ गया गिर।
उद्धत ने ऐसे वचन सुनाए हैं, दोनों ॥३॥

तर्ज—नरम बनो जी नरम बनो!

मर गया, मर गया, मर गया है, बेटा तेरा मर गया है।
परभव में संचर गया है, बेटा तेरा मर गया है ॥ध्रुवपद॥
सुन बुढ़िया होकर बेहाल, बोल उठी बन अति विकराल।
क्यों मेरा प्रिय पुत्र मरे, तू मर! तेरे स्वजन मरे!
मन में क्रोध उमड़ गया है, बेटा० ॥१॥
अपर बन्धु ने ध्यान दिया, करके छान बयान किया।
मैया! मत कर चिंता तार, जिंदा तेरा पुत्र उदार।
दौलत खूब कमा गया है, जा घर! बेटा आ गया है।
आ गया, आ गया, आ गया है, जा घर! बेटा आ गया है ॥२॥

तर्ज—रघुपति राघव राजा राम

जय हो पण्डितजी महाराज! अच्छी खबर सुनाई आज ॥ध्रुवपद॥
खुश-खुश बुढ़िया आयी दौड़, नमन किया सुत ने कर जोड़।
हर्ष हुआ दिल बेअन्दाज, अच्छी० ॥१॥
लाई है मलमल का थान, साथ रुपैये पांच सुजान।
पूज रही पण्डित शुभ साज, अच्छी० ॥२॥
धन ले आया मेरा नन्द, धन्य! तुम्हारा ज्ञान अमन्द।
करो रसोई अब द्विजराज! अच्छी० ॥३॥

तर्ज—मेरा दिल तोड़ने वाले

किंतु तुम साथ में इसको, भूल कर के भी मत लाना।
अगर्चे फिर भी आ जाए, तो न बोले, यूं समझाना! ॥ध्रुवपद॥

प्रथम सुन जल गया मन में, न लेकिन जोर चल पाया।
खैर! आखिर गए दोनों, हुआ वुढ़िया के घर खाना, किंतु० ॥१॥
लगा गुरुदेव से लड़ने, तुरत अविनीत तो आकर।
मेरा झूठा हुआ सब कुछ, मिला सच इसका फरमाना, किंतु० ॥२॥
किया यों खूब कोलाहल, हाल फिर खोलकर गाया।
कहा धीरे से गुरुजी ने, वता गज कैसे पहचाना? किन्तु० ॥३॥

तर्ज – पिया घर आजा

वड़े पैर लख मैंने तो, हाथी गया है ऐसे,
तत्काल गाया-गाया, तत्काल ॥ध्रुवपद॥
तूने वेटा! कैसे जानी सारी वात-२,
मूत्र-योग से हथिनी जानी मैंने तात-२!
एक तर्फ तरु खाये थे, इससे पिछानी कानी,
जाहिर जताया-गाया, तत्काल ॥१॥
चीवर से रानी रेखा से गर्भवती-२,
दक्षिणांग भारी था जानी पुत्रवती-२।
गुरु वोले ये सव वातें किस दिन पढ़ाई मैंने,
जो तू रिसाया-गाया, तत्काल ॥२॥
घड़ा फूटने से फिर मैंने मृत्यु कही-२,
मैंने लग्न लिया इत वोला उठ विनयी-२।
लग्न वड़ा ही उत्तम था, पानी का रेला चलकर,
सर में सिधाया-आया, तत्काल ॥३॥

तर्ज—राधेश्याम

मिट्टी मिली साथ मिट्टी के, मिला गगन के साथ गगन।
इसी हेतु से वतलाया, सुत का भी मैंने शीघ्र मिलन॥
गुरु वोले उद्धृत-से, ये सव, विनय वृक्ष के मीठे फल।
जो तेरे से हो नहिं सकता, रहा व्यर्थ क्यों मन में जल ॥१॥
अव वर्णन का मक्खन खींचो! ज्ञान विनय से मिलता है।
सद् गुरुओं का विनय करो! निर्वाण विनय से मिलता है॥
दो हजार पांच शुभ-संवत, माघकृष्ण तेरस गुरु दिन।
गुरुकृपया खंभात शहर में, हर्षित 'धन' के मन-वच-तन ॥२॥

मणि चौंसठवां   सोने वाला ब्राह्मण

सात पुत्रियों का पिता एक गरीब ब्राह्मण प्रदेश गया। अपने किसी जजमान के कहने से आशपूर्णा देवी का ध्यान किया। देवी ने चिन्तामणि रत्न दिया। ब्राह्मण ने उसे प्रमादवश समुद्र में गिरा दिया और फिर रोया। मनुष्य जन्म को खोने वाला ब्राह्मणवत् रोता है।

तर्ज—मेरा दिल तोड़ने वाले

अगर नर-तन को खो दोगे, दुबारा मिलना मुश्किल है।
जलधि में रत्न खो दोगे, दुबारा मिलना मुश्किल है।।ध्रुवपद।।

भटकते लक्ष चौरासी, मिला सद्भाग से नर तन।
सहज यदि इसको गिन लोगे, दुबारा मिलना मुश्किल है।।१।।

मुक्ति नगरी का दरवाजा, इसे शास्त्रों ने माना है।
खाज करते जो निकलोगे, दुबारा मिलना मुश्किल है।।२।।

रत्न चिंतामणी से भी, इसे उत्तम सदा जानो!
अगर परवाह न करोगे, दुबारा मिलना मुश्किल है।।३।।

तर्ज—किस फिक्र में बैठे हो?

ब्राह्मण को गरीबी ने, हैरान किया भारी।
कन्यायें सात हुईं, इत नहिं पैदावारी।।ध्रुवपद।।

कन्या जो ज्येष्ठ कही, शादी के योग्य हुई।
परदेश गया ब्राह्मण, भिक्षुकता दिल धारी, ब्राह्मण०।।१।।

इक पुर में आया है, निज प्रश्न चलाया है।
एक भाई ने हंसकर, दिया उत्तर सुखकारी, ब्राह्मण०।।२।।

देवी का मन्दिर है, प्रतिमा सुमनोहर है।
वर देगी मां खुश हो, वहां जा धर हुशियारी, ब्राह्मण०।।३।।

तर्ज—ज्ञानी गुरु अमने संभार जो !

आशपूर्णा देवी का देहरा-२ ।
जहां आया है ब्राह्मण नादार रे आशपूर्णा ।।ध्रुवपद।।
करके प्रणाम बैठा पद्मासनी बन,
देवी से जोड़ा निज तार रे, आशपूर्णा० ।।१।।
हे आशपूर्णा ! आशा को पूर दे !
द्विज हूं मैं दुखिया अपार रे, आशपूर्णा० ।।२।।
करने से जाप आयी आकृष्ट देवी,
बोली यों मुख से पुकार रे, आशपूर्णा० ।।३।।
उठ-उठ अरे विप्र ! बैठा है काहे,
माता ! हूं बिल्कुल बेकार रे, आशपूर्णा० ।।४।।
चाहता है क्या तूं ? भैया ! चिंतामणि,
अरे ! किस्मत है तेरी बेजार रे, आशपूर्णा० ।।५।।
चिंतामणि का मिलना कठिन है,
बैठा क्यों व्यर्थ हठ धार रे, आशपूर्णा० ।।६।।

तर्ज—अमर रहेगा धर्म हमारा

देवी अपने स्थान सिधायी,
उठा न फिर भी ब्राह्मण भाई ।।ध्रुवपद।।
चौविहार हो गयी अठाई, वृत्ति सुरी की पलटा खाई ।
आकर्षित हो वापस आई, उठा० ।।१।।
बोली यह चिंतामणि ले जा ! जीवन सुखी बनाकर रह जा !
खो मत देना किन्तु कहां ही, उठा० ।।२।।
यदि खो देगा तो न दुबारा, हाथ चढ़ेगा रत्न पियारा ।
कह यों दिया रत्न सुखदायी, उठा० ।।३।।

तर्ज—चले आना हमारे अंगना

कर जोड़ कर के, मन मोद भर के,
चरणों में झुका है द्विजराज ।।ध्रुवपद।।
आकर शहर में अन्न-जल लिया है,
जजमान से हाल सारा कहा है-२ ।

फिर हो गया विदा, नैया चढ़कर मुदा, चरणों में० ॥१॥
जल मार्ग से विप्र निज देश जा रहा,
छिपा सूर्य चन्द्र देव बन-ठन के आ रहा-२ ।
अद्‌भुत चांदनी खिली, नौका जाती थी चली, चरणों में० ॥२॥
नैया के नाके पै बैठा था ब्राह्मण
ले हाथ में रत्न शशि से मुदित मन-२ ।
उसका मेल कर रहा, निद्रित एकदम हुआ, चरणों में० ॥३॥

तर्ज—जीवन पल-पल मां जाय

बीती थोड़ी-सी बार रे, बोला करके पुकार,
रत्न अनमोल मेरा गिर गया-२ ॥ध्रुवपद॥
पूछा लोगों ने आकर पास में,
सुनकर डाली है बात उपहास में ।
सबने मूरख कहा, ब्राह्मण रोता रहा, रत्न० ॥१॥

तर्ज—हो भाभी तमे थोड़ा-थोड़ा थावो

हो भाई ! ज्ञान दृग से जरा-सा अब निहारो ॥ध्रुवपद॥
ब्राह्मण वह आंख भर-भर, कितना ही रोवे चाहे ।
फिर से वह चिन्तामणि, कैसे कहो हाथ आए ।
हेतु नर-तन पै ध्यान से उतारो ! हो भाई ! ॥१॥
चिन्तामणि-तुल्य नर तन, खो दोगे जो तुम सोकर ।
ब्राह्मणवत् रोना होगा, कहते हैं ज्ञानी फिर-फिर ।
इस ही कारण से धर्म दिल धारो ! हो भाई ! ॥२॥
सच्चे भगवान को तुम, उठकर हमेशा स्मरो !
सच्चे गुरुओं की सेवा, करके भवसिंधु तरो ।
सीख 'धन' की है, जन्म को सुधारो[1] ! हो भाई ! ॥३॥

१. वि० सं० २००५ माघ वदि १५ खंभात (गुजरात)।

मणि पैंसठवां बुराई के फल

एक गरीब एवं भोला ब्राह्मण राजसभा में आया। राजा ने उससे कुछ बात की। पुरोहित ने राजा को उल्टा समझाया। अतः राजा ने ब्राह्मण को ५०० रुपये की हुण्डी बंद लिफाफे में दी। पुरोहित उसे ब्राह्मण से छीनकर स्वयं खजाने में गया। खजांची ने राजा की आज्ञानुसार ५०० रुपये देकर पुरोहित की नाक काट ली। ब्राह्मण की बुराई करने से पुरोहित नकटा बन गया।

तर्ज—चुराकर ले गया जालिम

बुराई जो भी करते हैं, कभी सुख से नहीं सोते।
भले क्षण एक खुश हो लें, अंत में किन्तु वे रोते ।।ध्रुवपद।।
लिये किसके बने मानव, नहीं दिल सोचते द्रोही।
राक्षसी वृत्ति में फंसकर, मिले नर-जन्म को खोते, बुराई० ।।१।।
कुआं जो खोदते वे ही, कुएं के बीच गिरते हैं।
उन्हीं के शूल चुभते जो, वृक्ष बंबूल का बोते, बुराई० ।।२।।
जुल्म ढाहते जो औरों पर, उन्हीं पर जुल्म होता है।
जलाने वाले माचिसवत्, भस्म पहले स्वयं होते, बुराई० ।।३।।

तर्ज—म्हारी छोटी-सी वैरागण नै

दरबार जुड़ा था राजा का, ब्राह्मण एक आया।
ब्राह्मण एक आया, आते ही मुख से गाया ।।ध्रुवपद।।
धर्मेजय पापे क्षय, है भले भलाई निश्चय।
जग बुरा बुरा कहलाया, ब्राह्मण० ।।१।।
राजसभा में प्रतिदिन, आ करता यों उच्चारण।
राजा ने ध्यान लगाया, ब्राह्मण० ।।२।।
फिर लगा है पृच्छा करने, लख लगा पुरोहित जलने।
द्विज जाता इक दिन पाया, ब्राह्मण० ।।३।।

तर्ज—आजा-३ मेरे

आकर-आकर, आकर वेचारे ने तुरत ही, मस्तक झुकाया ।
पूछा पुरोहित ने अरे ! क्या राजा से पाया ? ।।ध्रुवपद।।
कुछ भी नहीं द्विजवर! दिया महाराज ने अब तक-२ ।
यों ही रहे थे पूछ, भोले द्विज ने सुनाया, पूछा० ।।१।।
खुल्ले वदन नृप से, कभी मत बात करना तू-२ ।
पट्टी पढ़ा यों विप्र को, फिर नृप को भ्रमाया, पूछा० ।।२।।
महाराज जिस द्विज से, आप कल बात करते थे-२ ।
वह धर्म से है भ्रष्ट, भारी व्यसनी कहाया, पूछा० ।।३।।

तर्ज—अखियां मिला के

पीता है दारू है मांस का चारू, न मुंह लगायें ! ।।ध्रुवपद।।
नृप बोला द्विजवर ! यह तो, देता है भला दिखाई ।
नहिं-नहिं जी ! न्यात-जात से बाहर है, मत भूलें साईं! ।।१।।
जिस दिन पीता है दारू, उस दिन मुख ढंक कर आता ।
मैं निज कर्तव्य समझकर आपको, पहले जताता, पीता० ।।२।।
राजा सुन गर्म हो गया, इत भोला ब्राह्मण आया ।
बांधा है मुंह खूब तजवीज से, फिर पाठ सुनाया, पीता० ।।३।।

तर्ज—राधेश्याम

नगद पांच सौ रुपयों की, हुंडी लिख नृप ने दे दी है ।
बंद लिफाफे के अंदर थी हर्षित द्विज ने ले ली है ।।१।।
चला जा रहा राजखजाने, मिला पुरोहित भावीवश ।
क्या कुछ पाया ? लगा पूछने जी हां ! बोला द्विज हो खुश ।।२।।
क्या है ! द्विज ने दिया लिफाफा, राज पुरोहित ललचाया ।
मेरी ही करुणा है कह यों, उस ब्राह्मण को टरकाया ।।३।।
बंद लिफाफा हाथ लिए, फिर राजखजाने आया है ।
सौंपा कोषाध्यक्षक को, पढ़ उसने विस्मय पाया है ।।४।।

तर्ज—मेरा दिल तोड़ने वाले

रुपये पांच सौ देना, इसे अच्छी तरह गिनकर ।
नाक बदले में ले लेना, महा पापिष्ठ है यह नर ।।ध्रुवपद।।

मणि छासठवां — जादूगर का जाल

ठग जादूगर ने मीठा शर्बत पिलाकर राजा-प्रजा सभी को ठग लिया। सिद्ध पुरुष ने आकर उसकी पोल खोली एवं लोगों ने भेद पाकर ठग को शहर से निकाला। जादूगर तुल्य कुगुरु हैं और सिद्ध पुरुष के समान सद्गुरु हैं।

तर्ज—म्हारी छोटी सी वैरागण नै

जादूगर जैसे कुगुरु जगत को जाल में फंसाते!
जाल में फंसाते, भ्रम जाल में फंसाते ॥ध्रुवपद॥
पुर महेन्द्र के अन्दर, वसते थे कई धनीश्वर।
सुख में दिन-रात विताते, भ्रम०॥१॥
एक जादूगर वहां आया, न किसी ने उसे बुलाया!
सव अपने रास्ते जाते, भ्रम०॥२॥
जादूगर ठग था भारी, चिल्लाहट की यों जारी,
जन सुन रहे जाते-आते, भ्रम०॥३॥

तर्ज—म्हारी रस सेलड़ी

नगरी के लोगों! पी जाओ शर्वत मेरा प्रेम से ॥ध्रुवपद॥
रंग-विरंगा मेरा शर्वत, स्फूर्ति वदन में लाता।
वदहजमी को दूर भगाता, भोजन तुरत पचाता रे, नगरी०॥१॥
सिर में दर्द न रहने देना, नर को मर्द वनाता।
सव रोगों की एक दवा है, मेरी कसमसच गाता रे, नगरी० ॥२॥
शीशी की कीमत एक पैसा, पी लो तुम थोड़ा-सा।
मस्त वनोगे पीकर के, देखोगे अजव तमाशा रे, नगरी० ॥३॥

तर्ज—सारी दुनिया में दिन हिन्द में

लोग ले ले के शर्वत उड़ाने लगे,
स्वाद मीठा था वाह! वाह! गाने लगे ॥ध्रुवपद॥

तर्ज—रहमत के बादल छाए

इक सिद्ध पुरुष वहां आया जंगल में घूमता ।। ध्रुव

नगर हितैषी तुरत मिले हैं, हाल कहा सब अथ, च
योगी ने धैर्य बंधाया, जंग

पुर में भाषण शुरू किये हैं, नगरनिवासी मुग्ध हुए
सब ही पर जादू छाया, जंग

जादूगर की प्रगट ठगाई, बाद खोल करके दिखला
जनता ने ध्यान लगाया, जंगल

तर्ज—हो भाभी तमे थोड़ा-थोड़ा थावो

हो भाई ! मेरे कहने पै ध्यान जरा डारो ।। ध्रुवपद।

बिलकुल भिखारी जैसा जादूगर आया यहां,
ठग कर प्रजा को धन बेहद कमाया यहां ।
दशा जनता की ज्ञान से विचारो ! हो भाई ! ।।१।।

देता है रिश्वत त्यों-त्यों कीमत बढ़ाता जाता,
पैसे के बदले पापी रुपया अब है धराता ।
मर्म अन्दर का गौर से निहारो ! हो भाई ! ।।२।।

अब भी न चेतोगे तो बरबादी होगी भारी,
सुन करके सिद्ध शिक्षा समझी है जनता सारी ।
बोली जल्दी से दुष्ट को निकारो ! हो भाई ! ।।३।।

तर्ज—राधेश्याम

हमला करके जादूगर को पुर से तुरत निकाला है ।
राजा भी नहीं रखने पाया, अपना पंथ निहाला है ।
जादूगर सम ठग गुरु आ, शर्बत मिथ्यात्व पिलाते हैं ।
पीकर के अज्ञानी प्राणी, पागल से बन जाते हैं ।।१।।

सिद्ध पुरुष सम सद्गुरु आकर, जब सब भेद बताते हैं ।
भोले भक्त कुगुरुओं के पंजे से छुटका पाते हैं ।।
दो हजार पांच संवत, सित एकम माघ महीना है ।
गुरुकृपया खंभात शहर में 'धन' संयम रस भीना है ।।२।।

मणि सड़सठवां — क्षमा की पराकाष्ठा

देवकीनंदन गजसुकुमाल मुनि के सिर पर धधकते अंगारे धर दिये गए, फिर भी मुनि ने अपना सिर नहीं हिलाया एवं केवल-ज्ञानी बनकर मोक्ष पधार गए। यहां उन्हीं का आदर्श जीवन प्रस्तुत है।

तर्ज—तुमको लाखों प्रणाम

मेरे लाखों प्रणाम, मेरे क्रोड़ों प्रणाम।
गज मुनि के चरणों में, मेरे लाखों प्रणाम ॥ध्रुवपद॥
अहो ! उपसर्ग भयंकर आया, फिर भी मुनि ने सिर न हिलाया।
पहुंचे अविचल धाम, मेरे०॥१॥
पुरी द्वारका कृष्ण नरेश्वर, विचर रहे थे नेमि जिनेश्वर।
भव्यों के विश्राम, मेरे०॥२॥

तर्ज—म्हारी रस सेलड़ी

इक रोज महल में खुश-खुश हो बैठी रानी देवकी ॥ध्रुवपद॥
दिव्य मूर्ति दो मुनिवर आए, ले लड्डू बहिराए।
थोड़ी देर में वापस आए, फिर लड्डू दिलवाए जी, इक०॥१॥
पुनः तीसरी वार पधारे, पूछा लड्डू देकर।
क्या पुरजन भिक्षा नहिं देते? घूम रहे तुम फिर-फिर जी, इक०॥२॥

तर्ज—अमर रहेगा धर्म हमारा

मुनि बोले हम तो नहिं आए, तुमने व्यर्थ विकल्प बनाए ॥ध्रुवपद॥
सदृश रूप हम हैं छह भाई, भूली तुम ओलख नहिं पाई।
सुन रानी ने प्रश्न उठाए, मुनि० ॥१॥
आप कहां के वसने वाले, मात-पिता थे कौन पियारे ?
कैसे संयम व्रत अपनाए ? मुनि० ॥२॥

(मुनि) भद्दिलपुर में नाग सेठ घर, सेठानी सुलसा थी सुंदर ।
उसके हम अंगज कहलाये, मुनि० ।।३।।

तर्ज—तुम हो देवता मैं हूं पुजारी

क्रमशः हम यौवन पाये, मां-बापों ने परणाये ।
सुख भोग रहे मन भाये, मां-बापों ने परणाये ।।ध्रुवपद।।
भाग्य खुले नेमि प्रभु आए, अमृतोपम उपदेश सुनाये ।
ले संयम हम सुख पाए[1], मां, बापों ने ।।१।।
छट्ठ-छट्ठ तप करते हैं हम, भिक्षा लेने फिरते हैं हम ।
कहकर यों सुमुनि सिधाये-मां बापों ने ।।२।।

तर्ज—आजा ३ मेरे

रानी-रानी, रानी ने सुनकर बात, सुत वे अपने संभारे ।
पापिष्ठ राजा कंस ने जो, क्षिति पर पछाड़े ।।ध्रुवपद।।
आरूढ़ हो रथ पर, गयी श्रीनेमि-चरणों में-२।
प्रभु ने कहा सुत हैं छहों ये, तेरे ही प्यारे, पापिष्ठ० ।।१।।
सुलसा के घर रक्खे, इन्हें हो हृष्ट सुरवर ने[2]-२।
है शक्ति किसकी, मोक्षगामी नर को संहारे, पापिष्ठ० ।।२।।
रूं रूं में फूली मां, छहों के कर रही दर्शन-२।
वश प्रेम के प्रगटी स्तनों से, वर दुग्धधारें, पापिष्ठ० ।।३।।

तर्ज—किस फिक्र में बैठे हो !

दर्शन कर पुत्रों के, माता घर आयी है ।
नहिं चैन रहा मन में, व्याकुलता छायी है ।।ध्रुवपद।।
हरि वंदन को आए, लेकिन नहिं बोलाये ।
कारण क्या माताजी ? मां चख जल लायी है, दर्शन०।।१।।
बेटा है अकथ कथा, जिन जान रहे हैं व्यथा ।
मेरे से भिखारिन भी, उत्तम कहलायी है, दर्शन०।।२।।

---

1. बत्तीस करोड़ स्वर्ण मुद्रायें और बत्तीस-बत्तीस स्त्रियों को त्याग कर।
2. सुलसा मृत वंध्या थी हरिनैगमेषी देव ने भक्ति वश इन छहों को सुलसा के पास पहुंचा दिया और उसके मृत पुत्र देवकी के पास। अतः जो कंस ने मारे थे, वस्तुतः वे मत ही थे।

वानरियां बाघिनियां, चिड़ियां और नागनियां।
बेचारी कुतिया भी, ऊंचा पद पाई है, दर्शन०॥३॥

तर्ज—आजादी का दीवाना

अपने-अपने बच्चों को, सब लाड़ लड़ाती हैं।
तरह-तरह से माताएं, आनन्द मनाती हैं ॥ध्रुवपद॥
दूध पिलाती हैं कई, खाना खिलाती हैं।
साथ सुलाती हैं, कई कर पकड़ चलाती हैं, अपने०॥१॥
सात-सात सुत जन्मे, किन्तु न लाड लड़ा पायी।
क्या कहूं इस दुख से, छाती फटना चाहती है, अपने०॥२॥
छः पुत्रों के बड़े भाग्य से, आज वदन देखे।
लेकिन खटक रही सुत-लीला, सही न जाती है, अपने०॥३॥

तर्ज—रघुपति राघव राजाराम

माता की सुन करुण पुकार, बन गए बालक कृष्ण मुरार।
कृष्ण मुरार-कृष्ण मुरार, बन गए बालक कृष्ण मुरार ॥ध्रुवपद॥
भूल गई है माता भान, लगी कराने स्तन का पान।
बिच ही दौड़ चले सुकुमार, बन गए० ॥१॥
लगे फोड़ने पड़े अमत्र, लगे फाड़ने अनुपम वस्त्र।
धूमधाम का न रहा पार, बन गए० ॥२॥
करते बालक जो-जो खेल, दिखलाते थे हरि मन मेल।
बीत गए घंटे दो-चार, बन गए० ॥३॥
खान-पान का फिक्र न तार, कर रही माता सुत का प्यार।
हरि बोले करके सुविचार, बन गए० ॥४॥

तर्ज—सुना दे-२ किसना !

पिला दे ! पिला दे ! पिला दे ! मुझको,
मीठा-मीठा दूध पिला दे ! मुझको ॥ध्रुवपद॥
माता झट दूध ले आयी, चख बोले लाल कन्हाई-२।
फीका है चीनी मिला दे! मुझको मीठा० ॥१॥
मां ने कुछ चीनी डाली, चिल्लाए फिर बन माली-२।
कुछ ज्यादा है थोड़ी हटा दे ! मुझको मीठा०।

माता लगी दूध मिलाने, ना-ना ! लगे श्रीहरि गाने-२।
चीनी निकाल दिला दे ! मुझको, मीठा०॥३॥

तर्ज—हीरा मिसरी का

माता समझ गयी, हरि के दिली विचार ।।ध्रुवपद॥
बोली रे सुत ! है यदि जाना, तो जाओ काहे हठ ठाना ।
कहां भाग्य बिना शिशु सार, माता०॥१॥
आठ पुत्र होंगे गुण खानी, मुनि अतिमुक्तक की थी वानी ।
किन्तु कर्म की मार, माता०॥२॥
यों कह फूट-फूट लगी रोने, लगी अश्रु से चीर भिगोने ।
विह्वल बनी अपार, माता०॥३॥
तब हरि बोले नन्हा भाई, लाता हूं मैं फर्क न राई ।
माता ! समता धार ! माता०॥४॥

तर्ज—धर्म पर डट जाना

कृष्णजी जाकर के, बैठे हैं धर ध्यान ॥ध्रुवपद॥
विधि से किया देव का जाप, तीसरे दिन खुश हो सुर आप ।
खड़ा है आकर के, बैठे०॥१॥
सुनाया हरि ने सारा हाल, दिया सुर ने वरदान रसाल ।
हृदय हुलसा करके, बैठे०॥२॥
कृष्ण ने दी है सुखद बधाई, सगर्भा हुई है देवकी माई ।
परम सुख पाकर के, बैठे०॥३॥

तर्ज—जीवन पल-पल मां जाय रे

जन्मा नन्दन उदार, तेजस्वी था दीदार ।
नाम रक्खा है गजसुकुमालजी ॥ध्रुवपद॥
श्री हरि फूले न मन में समा रहे,
यादव सारे ही मंगल मना रहे ।
कर रही माताजी, रंग छाया बेहद उमंग, नाम०॥१॥
क्रमशः सुकुमार, यौवन में आ रहे ।
माधव कन्याएं सुन्दर जुटा रहे ।
शादी करने की चाह, उत्सुकता थी अथाह, नाम०॥२॥

आए श्रीनेमि अवसर पिछान कर,
दर्शन करने पधारे हरि प्रेम धर।
छोटे भाई भी साथ, अमृत बरसे हैं नाथ, नाम०॥३॥

तर्ज—चले आना हमारे अंगना

प्रभु की वाणी सुन के, वैरागी बन के।
संयम लूंगा यों बोले सुकुमार॥ध्रुवपद॥
सुनते ही माता ने हा! हा! मचाया,
श्रीकृष्ण ने रंग काफी रचाया-२।
लेकिन गज नहिं मुसके, व्रत से हैं न खिसके, संयम०॥१॥
इक दिन का राजा आखिर बनाकर,
जगदीश के पास लाए सजाकर-२।
माता बिल-बिल करके, बोली प्रभु को नम के, संयम०॥२॥
संयम इसे दीजिए शीघ्र साईं!
रखना महर किन्तु है नन्हा भाई-२।
प्रभु ने दे दिया चरन, पुर में आ गए स्वजन, संयम०॥३॥

तर्ज—हो भाभी! तमे थोड़ा-थोड़ा थावो

हो नाथ! सीधा शिवपुर का पंथ बतलाओ! ॥ध्रुवपद॥
सीधे से सीधा हो सो, प्रभुवर! बयान करो!
जल्दी से छुटकारा पाऊं, अर्जी पर ध्यान धरो!
नन्हा भाई हूं दया दिखलाओ! हो नाथ! ॥१॥
भैया! शमशान में जा, निश्चल हो ध्यान करो!
ममता मिटाओ तन की, आत्मा का ज्ञान करो!
सौख्य अविचल अनंत अपनाओ! हो नाथ! ॥२॥
करके तहत्ति मुनि ने, तब ही प्रयाण किया।
शमशान भूमि में जा, दृढ़ मन हो ध्यान किया।
जरा सुनने में ध्यान अब लगाओ! हो नाथ! ॥३॥

तर्ज—रंगवा दे चुंदड़ियां

आया-आया इधर से-२। सोमिल ब्राह्मण आया रे।
ले पुष्पादि सुहाया रे, आया ॥ध्रुवपद॥

माता लगी दूध मिलाने, ना-ना ! लगे श्रीहरि गाने-२।
चीनी निकाल दिला दे ! मुझको, मीठा०।।३।।

तर्ज—हीरा मिसरी का

माता समझ गयी, हरि के दिली विचार ।।ध्रुवपद।।
बोली रे सुत ! है यदि जाना, तो जाओ काहे हठ ठाना।
कहां भाग्य बिना शिशु सार, माता०।।१।।
आठ पुत्र होंगे गुण खानी, मुनि अतिमुक्तक की थी वानी।
किन्तु कर्म की मार, माता०।।२।।
यों कह फूट-फूट लगी रोने, लगी अश्रु से चीर भिगोने।
विह्वल बनी अपार, माता०।।३।।
तब हरि बोले नन्हा भाई, लाता हूं मैं फर्क न राई।
माता ! समता धार ! माता०।।४।।

तर्ज—धर्म पर डट जाना

कृष्णजी जाकर के, बैठे हैं धर ध्यान ।।ध्रुवपद।।
विधि से किया देव का जाप, तीसरे दिन खुश हो सुर आप।
खड़ा है आकर के, बैठे०।।१।।
सुनाया हरि ने सारा हाल, दिया सुर ने वरदान रसाल।
हृदय हुलसा करके, बैठे०।।२।।
कृष्ण ने दी है सुखद बधाई, सगर्भा हुई है देवकी माई।
परम सुख पाकर के, बैठे०।।३।।

तर्ज—जीवन पल-पल मां जाय रे

जन्मा नन्दन उदार, तेजस्वी था दीदार।
नाम रक्खा है गजसुकुमालजी ।।ध्रुवपद।।
श्री हरि फूले न मन में समा रहे,
यादव सारे ही मंगल मना रहे।
कर रही माताजी, रंग छाया बेहद उमंग, नाम०।।१।।
क्रमशः सुकुमार, यौवन में आ रहे।
माधव कन्याएं सुन्दर जुटा रहे।
शादी करने की चाह, उत्सुकता थी अथाह, नाम०।।२।।

आए श्रीनेमि अवसर पिछान कर,
दर्शन करने पधारे हरि प्रेम धर।
छोटे भाई भी साथ, अमृत बरसे हैं नाथ, नाम०॥३॥

तर्ज—चले आना हमारे अंगना

प्रभु की वाणी सुन के, वैरागी बन के।
संयम लूंगा यों बोले गजकुमार॥ध्रुवपद॥
सुनते ही माता ने हा! हा! मचाया,
श्रीकृष्ण ने रंग काफी रचाया-२।
लेकिन गज नहिं मुसके, व्रत से हैं न खिसके, संयम०॥१॥
इक दिन का राजा आखिर बनाकर,
जगदीश के पास लाए सजाकर-२।
माता बिल-बिल करके, बोली प्रभु को नम के, संयम०॥२॥
संयम इसे दीजिए शीघ्र सांई!
रखना महर किन्तु है नन्हा भाई-२।
प्रभु ने दे दिया चरन, पुर में आ गए स्वजन, संयम०॥३॥

तर्ज—हो भाभी! तमे थोड़ा-थोड़ा थावो

हो नाथ! सीधा शिवपुर का पंथ बतलाओ! ॥ध्रुवपद॥
सीधे से सीधा हो सो, प्रभुवर! बयान करो!
जल्दी से छुटकारा पाऊं, अर्जी पर ध्यान धरो!
नन्हा भाई हूं दया दिखलाओ! हो नाथ! ॥१॥
भैया! श्मशान में जा, निश्चल हो ध्यान करो!
ममता मिटाओ तन की, आत्मा का ज्ञान करो!
सौख्य अविचल अनंत अपनाओ! हो नाथ! ॥२॥
करके तहत्ति मुनि ने, तब ही प्रयाण किया।
श्मशान भूमि में जा, दृढ़ मन हो ध्यान किया।
जरा सुनने में ध्यान अब लगाओ! हो नाथ! ॥३॥

तर्ज—रंगवा दे चुंदड़ियां

आया-आया इधर से-२। सोमिल ब्राह्मण आया रे।
ले पुष्पादि सुहाया रे, आया ॥ध्रुवपद॥

मुनि को देख जला है मन में, कहने लगा रख पुत्री[1] सदन में।
पापी ने सिर मुंडवाया रे, मुनि का ढोंग रचाया रे, आया०॥१॥
क्रोध विवश झट मिट्टी लाकर, बांधी पाल मुनीश्वर के सिर।
भर अंगार सिधाया रे, पर मुनि ने सिर न हिलाया रे।
वाह ! वाह ! ऋषिराया रे, अजब दृश्य दिखलाया रे, आया०॥२॥

तर्ज—नरम बनो जी नरम बनो !

सीझ रहा जी सीझ रहा, खिचड़ी सम सिर सीझ रहा।
मुनि संयम रस भीज रहा, खिचड़ी ॥ध्रुवपद॥
परम मित्र यह मेरा ससुर, आ पहुंचा इस मौके पर।
यदि इस समय नहीं आता, तो न कर्ज चुकने पाता।
ध्यान लीन या सुमुनि हुआ, खिचड़ी० ॥१॥
क्षपक श्रेणि चढ़ केवल ज्ञान, पाकर मुनि पहुंचा निर्वाण।
किया क्षमा से बेड़ा पार, वंदन मेरे वार हजार।
अमित सुयश जाता न कहा, खिचड़ी०॥२॥

तर्ज—गाए जा गीत मिलन के

प्रभु के दर्शन करने दुरित मल हरने, इधर हरि आए हैं ॥ध्रुवपद॥
चरणों में अपना मस्तक झुकाया, आया न भाई नजर।
पूछा जिनेश ने उत्तर दिया, वह पहुंच गया शिवपुर।
सुन हरि भूले हैं भान, रहा नहिं ज्ञान, इधर०॥१॥

तर्ज—दिल्ली चलो !

किसने मारा, किसने मारा, किसने मारा जी ?
मेरे भाई को प्रभु कहिए, किसने मारा जी ?॥ध्रुवपद॥
आतुर होकर हरि ने पूछा, प्रभु से इस तरह।
स्वामी बोले शांत रहो हरि ! तुमने जिस तरह।
ईंट उठाकर वृद्ध पुरुष का, फिरना टारा जी, मेरे०॥१॥

---

१. गजसुकुमाल को व्याहने के लिए श्रीकृष्ण ने अन्य कन्याओं के साथ सोमिल ब्राह्मण की पुत्री भी कवांरे अंतेउर में रखी थी।

उसी तरह से उसने गज का, भ्रमण मिटाया है।
पहचानूं मैं कैसे? हरि ने प्रश्न उठाया है।
तुम्हें देखकर मर जाये, वह है हत्यारा जी, मेरे०॥२॥

तर्ज—म्हारी छोटी-सी वैरागण नै

सुन करके श्रीहरि, जिनजी के चरण में झुले हैं।
चरण में झुले हैं, झुल करके शीघ्र चले हैं ॥ध्रुवपद॥
दुख के कारण पिछले, रास्ते से माधव निकले।
सोमिल जो बीच मिले हैं, चरण० ॥१॥
भय से प्राण गंवाए, हरि ने पुर में घिसवाये।
दुष्कृत्य सभी उथले हैं, चरण० ॥२॥

तर्ज—राधेश्याम

सुन यह वर्णन क्षमावान बन, वेड़ा शीघ्र करो भवपार।
दस धर्मों में प्रथम क्षमा है, महिमा इसकी अजव अपार।
दो हजार पांच शुभ संवत, माघ मास सित चौथ उदार।
गुरुकृपया सो जित्रा' ग्रामे 'धनमुनि' करता धर्म प्रचार ॥१॥

सुभगे ! मैं जाता हूं वन में, तुम जाओ माता के घर !
अगर रह गया जिन्दा तो, शायद मिल जाऊं आकर ॥३॥
कहा सती ने हो नहिं सकती, छाया काया से न्यारी।
जहां चांद है वहीं चांदनी, समझ रही दुनियां सारी ॥४॥
काफी बातें हुई अन्त में, दोनों ही वन वास चले।
रोते और बिलखते नगर-निवासी, नृप के साथ मिले ॥५॥

तर्ज—मेरा दिल तोड़ने वाले

अयोध्यानाथ जंगल में, फिर रहे साथ है प्यारी।
नहीं कोई सवारी भी, कर्म गति है विकट भारी ॥ध्रुवपद॥
सदा जो स्वर्ण पात्रों में उड़ाते थे सरस भोजन।
न उनके पास रोटी है, नहीं लोटा नहीं थारी, अयोध्या० ॥१॥
भटकते हो गयी संध्या, रहे वट वृक्ष के नीचे।
बिछाई पर्ण की शय्या, श्रांत जहां सो रही नारी, अयोध्या० ॥२॥
दुर्दशा देख रानी की, न आयी नींद राजा को।
लगे रोने अहो ! मैंने इसे इस कष्ट में डारी, अयोध्या० ॥३॥

तर्ज—अफसाना लिख रही हूं

विह्वल मन नल राजा ने, उठकर के चल दिया।
लोही से स्त्री के चीर पर, थोड़ा-सा लिख दिया ॥ध्रुवपद॥
उदय हुआ जब सूरज, जागी है दमयन्ती-२।
प्राणेश नजर नहिं आया, अकुलाया है हिया, लोही से० ॥१॥
बांचे हैं चौंक अक्षर, रास्ते लिखे थे दो-२।
वड़ की दिशि पीहर का है,[1] बायां घर जा रहा,[2] लोही से० ॥२॥

तर्ज—चले आना हमारे अंगना

अक्षर बांच करके, दिल जांच करके,
अन्त पीहर का पन्थ पकड़ा ॥ध्रुवपद॥

१. विदर्भ देश कुंडिनपुर।
२. अयोध्या।

रास्ते में अहिराज-मृगराज आये,
लेकिन सतीत्व के बल से पलाए-२ ।
डाकू करते ही हुंकार, भागे छोड़ा अत्याचार[1], अन्त० ॥१॥
रही सार्थ मे रात भर फिर विदा हुई,
राक्षस ने पति के मिलन की कथा[2] कही-२ ।
चातुर्मास में सही, सती गह्वर में रही, अन्त० ॥२॥
वसी दानशाला में फिर आ अचलपुर
लेकिन पिछानी न मौसी[3] ने विलकुल-२ ।
पुरोहितजी प्रवर[4], आये लेने को खवर, अन्त० ॥३॥

तर्ज—हीरा मिसरी का

मिल गई दमयन्ती, हो गए जय-जयकार, मिल ॥ध्रुवपद॥
तुरत-विदर्भ देश में लाया, कुंडिनपुरपति अति सुख पाया ।
वात कही विस्तार, मिल गई० ॥१॥
खवर कर रहे अव नृप नल की, लेकिन वात नहीं थी वल की ।
इधर सुनो धर प्यार, मिल गई० ॥२॥
दमयन्ती को त्याग चले नल, रोते-रोते हो दुख विह्वल ।
आया विच कांतार, मिल गई० ॥३॥

तर्ज—हो भाभी ! तमे थोड़ा-थोड़ा थावो

हो भाई! कोई आकर के मौत से वचाओ ! ॥ध्रुवपद॥
मैं दव में जल रहा हूं, जल्दी आ कष्ट हरो !
जीवन की भीख देकर, भौतिक उपकार करो !
घोर दुख में हूं, दया दिल लाओ ! हो भाई! ॥१॥
सुनी यह दीन वाणी, नल राजा दौड़ आए ।
भूले हैं दुःख अपना, करने उपकार धाए ।
कहा अहिवर ने, देर न लगाओ, हो भाई ! ॥२॥

---

१. सार्थ को लूट रहे थे ।
२. वारह वर्षों के वाद मिलेगा।
३. राजा ऋतुपर्ण एवं महरानी चन्द्रयशा मौसा-मौसी थे ।
४. दमयन्ती के पिता के पुरोहित।

तर्ज—आजा आजा आजा मेरे

फेंका-फेंका, फेंका है नल ने वस्त्र, उसमें अहिराज आया।
लेते ही कर में डस गया, यह बदला दिखाया ॥ध्रुवपद॥
डसते ही नल राजा, बने कुवड़े उसी छिन में-२।
कद्रूप बिलकुल हो गए, सद्रूप बिलाया, लेते० ॥१॥
बोले अयोध्येश्वर, किया यह क्या अरे भाई-२।
बस ! दिव्य धर कर रूप, सुर ने जाहिर जताया, लेते० ॥२॥
तेरा पिता[1] हूं मैं, आज करने मदद आया-२।
बचाने हित दुश्मनों से, कुबड़ा बनाया, लेते० ॥३॥

तर्ज—जीवन पल पल मां जाए रे

जब हो दिल में विचार, लेना निज रूप धार,
तुझे देता हूं श्री फल-करंडिया ॥ध्रुवपद॥
वस्त्र सुन्दर हैं अद्भुत करंड में,
भूषण रक्खे हैं श्री फल के तुंड में।
धारण करते ही रूप, असली प्रगटेगा भूप ! तुझे० ॥१॥
बारह वर्षों के दुष्कर्म-भोग हैं,
बाद तेरे दुबारा राजयोग है,
कह यों पुर सुंसुमार, रक्खा करके विचार[2], तुझे० ॥२॥
वहां कुबड़े ने गज का किया दमन,
रक्खा राजा[3] ने होकर प्रसन्न मन।
एक दिन रविपाक[4] किया चौंका सब का हिया, तुझे० ॥३॥

तर्ज—ज्ञानी गुरु अमने संभार जो !

लोग सारे आश्चर्य पा रहे,
कुबड़े का देख चमत्कार रे ॥ध्रुवपद॥

---

१. निषधराजा।
२. निषध देव ने।
३. दधिपर्ण।
४. सूर्यपाक रसवती।

राजा ने पूछा क्या तू ही नल है।
कुवड़े ने किया इनकार रे, लोग० ॥१॥
राजा नहिं है तो सूर्यपाक तू कैसे जानता ?
कुवड़ा हूं नल का रसोईदार रे, लोग० ॥२॥
रहने से पास में विद्या मिली मुझे,
नल की तो बुंव न वहार रे, लोग० ॥३॥
कूवर ने उसको घर से निकाला,
चला मैं भी हो दुखिया अपार रे, लोग० ॥४॥
रहता है कुवड़ा पुर सुंसुमार में,
ससुरे ने पाये समाचार रे, लोग ॥५॥

तर्ज—राधेश्याम

पत्र निमंत्रण का भेजा, द्विज[1] सुंसुमार पुर लाया है।
सौंपा नृप को पढ़कर उसने समाचार यह पाया है ॥१॥
करली काफी खोज न लेकिन, नल राजा की मिली खवर।
अत: स्वयंवर पुनरपि होगा, आप पधारें कर सुमहर ॥२॥
जान स्वयंवर सुंसुमार पति, रूं-रूं में हुलसाया है।
पर रास्ता लम्बा समय अल्प लख, फिक्र हृदय में छाया है ॥३॥
वोला कुबड़ा पहुंचा दूंगा, टाइम से पहले प्रभुवर !
रथारूढ़ हो विदा हुए, दौड़ाए कुबड़े ने हयवर[2] ॥४॥
गिरा वस्त्र नृप ने वतलाया, इतने में योजन पच्चीस।
दौड़ गए घोड़े सुन मन में, विस्मय पाया वसुधाधीश ॥५॥
संख्या विद्या से वतलाए, नृप ने अक्ष[3] वृक्ष के फल।
कुवड़े ने हयहृदया दे, ली संख्या विद्या हर्ष अतुल[4] ॥६॥

तर्ज—अमर रहेगा धर्म हमारा

अव दोनो कुंडिनपुर आए, वहां न किन्तु स्वयंवर पाए॥ध्रुवपद॥

---

१. राजपुरोहित।
२. अखहृदया विद्या से।
३ वेहड़ा वृक्ष के १८ हजार फल थे।
४. सूर्यपाकादि।

सुंसुमार पति चकित हुआ है सोच रहा उपहास्य किया है ।
कुवड़े ने सब खेल दिखाए, अब० ॥१॥
फिर कूबर से युद्ध किया है, वापस अपना राज्य लिया है ।
व्रत ले आखिर सुरपद[1] पाए, अब० ॥२॥
सुन यह वर्णन धर्म करो तुम ! सुख-दुख में समभाव धरो तुम !
वंकट संकट सब कट जाए, अब० ॥३॥
दो हजार पांच शुभ संवति, फाल्गुन सित पांचम मंजुल तिथि ।
'धन मुनि' ने दो वचन सुनाए, अब० ॥४॥

---

१. वैश्रवण और देवी ।

मणि उनहत्तरवां दुखिया संसार

सारा संसार दु:खी है, ज्ञान के बिना कहीं भी सुख नहीं है। इस विषय पर सत्यव्रत राजा का रुचिकर वर्णन पढ़िये !

तर्ज—मेरा दिल तोड़ने वाले

सुखी कोई नहिं जग में, दुखी संसार सारा है।
अगर है तो वही केवल, जिसे सद्ज्ञान प्यारा है ॥ध्रुवपद॥
बड़े-छोटे सभी प्राणी, सुखी आते नजर जो भी।
अगर अंदर घुसें उनके, दुख का ही पसारा है, सुखी० ॥१॥
सत्यव्रत भूप का नन्दन घिर गया घोर रोगों से।
किए उपचार काफी पर निराशा का नजारा है, सुखी० ॥२॥
शोक संतप्त राजा ने, तजे आराम सारे ही।
नहीं खाता नहीं पीता, इधर सोना विसारा है, सुखी० ॥३॥

तर्ज—किस फिक्र में बैठे हो ?

मरने की दशा में अब, युवराजा आया है।
राजा के महलों में, हाहारव छाया है ॥ध्रुवपद॥
सत्यव्रत विलख रहा, फिर-फिर सिर पटक रहा।
लाए हैं पुरोहित जी, एक वैद्य सुहाया है, मरने० ॥१॥
वैद्य राजन ! मत घबराओ ! सुत मुझको दिखलाओ !
रोते हुए राजा ने, लड़का दिखलाया है, मरने० ॥२॥
उसने सुविचार किया, रोगों पर ध्यान दिया।
फिर सब ही के सम्मुख, ऐसे फरमाया है, मरने० ॥३॥

तर्ज—असली आजादी अपनाओ

पैसा एक सुखी का लाओ !
उसके साथ दवा देते ही, रोग मुक्त सुत पाओ ॥ध्रुवपद॥

थैली पैसों की की हाजिर, किन्तु वैद्य ने शीष हिलाकर।
कहा न यह[1] पैसा ले सकता, सुखियों के घर जाओ, पैसा० ॥१॥
धनीराम[2] है सुखी शहर में, जाकर खुद ला दूं छिन भर में।
ज्यों त्यों कर उपचार वैद्यजी! प्यारा पुत्र बचाओ! पैसा० ॥२॥

तर्ज—चले आना हमारे अंगना

दौड़ा दौड़ कर के, राजा घोड़े चढ़ के,
चल आया है चौधरी के घर ॥ध्रुवपद॥
ऊंचे सिंहासन पै उसने बिठाया,
कैसे पधारे! यों झुक करके गाया-२।
सुखी सुना है तुझे एक पैसा दे मुझे, चल० ॥१॥
अरे भाई! बच जाएगा पुत्र मेरा,
पल-पल स्मरूंगा मैं उपकार तेरा-२।
हाल सारा ही कहा, गद्गद चौधरी हुआ, चल० ॥२॥

तर्ज—मेरा रंग दे तिरंगी चोला

महाराज! दुखी हूं भारी, प्रतिकूल[3] है घर में नारी ॥ध्रुवपद॥
सुख से रोटी भी न खिलाती, उठकर छाती रोज जलाती।
मेरी बरबादी कर डारी, महाराज! ॥१॥
नगर सेठ सुखिया है प्रभुवर! तुरत दौड़कर आया नरवर।
पैसे की मांग निकारी, महाराज! ॥२॥
सेठ बात सुन रोने लगा है, बोला प्रभु! धन-लोभ जगा है[4]।
है सचिव सुखी सुविचारी, महाराज! ॥३॥

तर्ज—आजा आजा! आजा मेरे

पहुंचा-पहुंचा, पहुंचा नरेश्वर शीघ्र ही मन्त्री के सदन पर।
कहने लगा दे दे मुझे, एक पैसा दयाकर! ॥ध्रुवपद॥

---

१. तू दुखी है।
२. चौधरी धनीराम।
३. प्रतिकूल कलत्रस्य नरको नाऽत्रसंशयः।
४. असंतोषी महादुःखी।

तू है सुखी पूरा, कहा है सेठ जी ने यों-२ ।
बोला सचिव सुत मूर्ख है[1], दुख पूरा है प्रभुवर ! कहने० ॥१॥
सुखिया अगर है तो, विजयपुर का नरेश्वर है-२ ।
चलकर गए महाराज, उसी एक पैसे के खातिर, कहने० ॥२॥

तर्ज—अफसाना लिख रही हूं

विजयपुर नरेश दुख से मैं जल रहा हूं, संतान है नहीं ।
राजा बनेगा कौन, हरदम फिक्र है यही ॥ध्रुवपद॥
सुत के बिना घर शून्य है, श्मशान की तरह-२ ।
राजा घर आ गया है, आशा अब ना रही, राजा० ॥१॥
किस्सा सुनाया वैद्य से, सुन वैद्य ने कहा-२ ।
महाराज ज्ञान से समझो ! सुख न किसी को कहीं, राजा० ॥२॥
रोते हो सुत के खातिर, दिन-रात पागल बन-२ ।
पर सोचो! सुत यह किसका, किसके तुम हो सही, राजा ॥३॥

तर्ज—जब तुम ही चले परदेश

आ गया भूप को ज्ञान, हो गया भान, झूठ है माया ।
मैं नाहक ही ललचाया ॥ध्रुवपद॥
नंदन तो दिन में मर गया है, राजा ने शोक नहीं किया है ।
लेकर संयम अजर अमर-पद पाया, मैं० ॥१॥
अयि भव्य जनो! यह वर्णन सुन, दुख से न डरो तुम ज्ञानी बन ।
सुगुरु कृपा से 'धन मुनि' ने ज्ञान सुनाया, मैं० ॥२॥
द्विसहस्र पांच संवत आया, फाल्गुन सित अष्टम दिन भाया ।
ग्राम नाम 'साणंद' विशेष सुहाया, मैं० ॥३॥

---

१. कुग्रामवासः कुलहीन सेवा, कुभोजनं क्रोधमुखी च भार्या ।
पुत्रश्चय मूर्खो विधवा च कन्या, विनाग्निना षट् प्रदहन्ति कायम् ॥

उस ही नर ने ये कंकण, बेशक दिलाये हैं-२ ।
फल अभी दिखा देता हूं, गुस्सा यों बढ़ रहा, कुलटा० ॥२॥
निर्दय चर के कानों में, यत् किंचित् कह दिया-२ ।
मिपकर बिठलाई रथ में, रथ वन को चल रहा, कुलटा० ॥३॥

तर्ज—जीवन पल-पल मां जायरे

आया जंगल महान, जहां कोई न त्राण
वहां लाकर के रथ से उतार दी-२ ॥ध्रुवपद॥
प्रगटी इतने में भीषण दो नारियां,
पास उनके थी तीखी कटारियां ।
काटे दोनों ही हाथ, न सुनी बिल्कुल ही बात, वहां० ॥१॥
साथ वलयों[1] के कर भी उड़ा गई,
पूणमासा सती तो मूर्च्छा गई ।
पीड़ा[2] प्रगटी अपार, इत सुत जन्मा उदार, वहां० ॥२॥
बिना हाथों के काम कैसे हो कहो !
बोली रानी जो मेरा शील सत्य हो,
तो फिर आ जाएं हाथ, रो रहा बच्चा अनाथ, वहां० ॥३॥

तर्ज—असली आजादी अपनाओ

शासनसुर ने हाथ बनाये-२ ।
सत्य-शील के बल से सारे, दोहग दूर पलाये, शासन ॥ध्रुवपद॥
भाग्याकृष्ट एक ऋषि आया, मान सुता आश्रम में लाया ।
इधर हाथ पाकर राजा ने, ऐसे वचन सुनाये, शासन० ॥१॥
देखो इन वलयों के कारण, हाथ कटाये कर मूरखपन ।
चिल्लाया अवनीश्वर वलये, इत नामांकित पाये, शासन० ॥२॥

तर्ज—पीहरियुं सांभरे

अन्याय कर दिया, हाय! मैंने अन्याय कर दिया ।
धिग् मेरा अवतार, अन्याय ॥ध्रुवपद॥

---

१. कंकण ।

२. होश में आने पर ।

भाई ने कंकण ये भेजे थे प्रेम से,
भगिनी ने पहने उदार, अन्याय० ॥१॥
की थी प्रसंसा उसने पीहर के प्रेम की,
नहिं किया मैंने विचार, अन्याय० ॥२॥
रोता अपार ऐसे, दौड़ा नरेन्द्र वर,
पर प्यारी का न मिला दीदार, अन्याय० ॥३॥
वर्षों के बाद मिले पुण्यो से दंपती,
हर्षित हृदय अपार, अन्याय० ॥४॥

तर्ज—गाये जा गीत मिलन के

ग्रामों ग्राम विचरते, दुरितमल हरते, ज्ञानी गुरु आये है ॥ध्रुवपद॥
राजा-प्रजा मिल वंदन को आये, गुरु ने सुनाया ज्ञान ।
मैंने कटाये रानी के हाथ क्यों ? कहिये सुकरुणा निधान !
दुर्मति ऐसी क्यों मन में, आई उस छिन में, ज्ञानी ॥१॥

तर्ज—राधेश्याम

पिछले भव में तू था तोता, इसने तेरे काटे पर ।
बनकर राजा पूर्व वैर वश, तूने भी कटवाये कर ।
शील धर्म की महिमा से, शासनसुर ने कर युगल दिये ।
संयम लेकर महासती ने, सकल मनोरथ सिद्ध किये ॥१॥
पाल सुसंयम सुर सुख पाये, सुन वर्णन ब्रह्मचर्य धरो !
वैर न बांधो किसी जीव से, शिक्षा युग पर अमल करो !
दो हजार पांच संवत, फाल्गुन सित दसमी सुर गुरुवार ।
गांव छारोड़ी में गुरु कृपया 'धनमुनि' के मन हर्ष अपार ॥२॥

मणि इकहत्तरवां — मतलबी दुनिया

जिस स्त्री को बिन्दु सर्वस्व समझ रहा था। वह स्त्री उसे मृत मानकर भी मजे से लड्डू खाती रही। इससे बढ़कर स्वार्थपरायणता और क्या हो सकती है। वर्णन वैराग्योत्पादक है। पढ़कर वैरागी बनिए।

तर्ज—अफसाना लिख रही हूं

सच-सच सुना रहा हूं, झूठा संसार है।
कोई किसी का है नहीं, मतलब के यार हैं ।।ध्रुवपद।।
स्त्री-माता-पिता के प्रेम में, अज्ञानी पागल बन-२।
कहता है प्राण पियारा, मेरा परिवार है, कोई०।।१।।
इन्दु-बिन्दु एक पुर में, दो मित्र रहते थे-२।
कहते थे लोग सच्चा, दोनों का प्यार है, कोई० ।।०२।।

तर्ज—गाए जा गीत मिलन के

बिन्दु दिन और रात, पियारी के साथ,
मगन बन रहता था ।।ध्रुवपद।।
कहता था फिर-फिर वह बात में, झूठा है संसार।
सच्ची है केवल मेरी पियारी, असली है उसका प्यार।
आए मुनि गुणखान, सुना रहे ज्ञान, मगन०।।१।।
सुनता था इन्दु आता न बिन्दु, कहता था, इन्दु व्यक्त।
आसक्ति त्याग ! प्रेम स्त्री का है झूठा, मत बन तू आसक्त।
जरा करके विचार, धरम दिल धार, मगन० ।।२।।

तर्ज—ज्ञानी गुरु अमने संभार जो !

बिन्दु अरे भाई ! तुझको न है खबर,
मेरी प्यारी का सच्चा है प्यार रे ।।ध्रुवपद।।

मेरे विना वह खाती न खाना,
पीती न विन्दु एक वार रे, अरे०॥१॥
जव तक न निद्रा आती है मुझको,
रहती है सेवा में त्यार रे, अरे०॥२॥
तकलीफ जरा यदि हो जाए मेरे,
वह देती है जीवन उवार रे, अरे०॥३॥
वोला है इन्दु भ्रम में क्यों भूला,
कर तू परीक्षा एक वार रे, अरे०॥४॥

तर्ज—सुना दे-३ किसना !

सिखाया, सिखाया, सिखाया इन्दु ने,
सांस चढ़ाना विन्दु को सिखाया ! इन्दु ने ॥ध्रुवपद॥
चिल्लाहट वेहद करना, घर में जा फौरन गिरना-२।
श्वास चढ़ाना वाद में वताया इन्दु ने, सांस०॥१॥
सहचर की मानी शिक्षा, करने को प्रेम-परीक्षा-२।
घर आकर के झूठा ढोंग वनाया विन्दु ने, सांस ॥२॥

तर्ज—आजा-आजा, आजा मेरे

दौड़ो-दौड़ो !दौड़ो पियारी ! आज मेरा मरना ही आया।
अंगन में कह यों गिर गया, फिर सांस चढ़ाया ॥ध्रुवपद॥
सुनते ही अन्दर से सुन्दरी दौड़ आयी है-२।
देखा पिया का जिस्म विलकुल ठंडा लखाया, अंगन०॥१॥
एक वार तो दिल पर, लगा धक्का गिरी भू पर-२।
आ होश में कहने लगी, वालम तो सिधाया,अंगन०॥२॥
रोऊंगी अव ही तो, पड़ेगा रात भरा रोना-२।
भूखी हूं थक जाऊंगी, रोना मुश्किल कहाया, अंगन०॥३॥

तर्ज—म्हारी रस सेलड़ी

वस ! द्वार-वंद कर, चूल्हा सुलगाया, स्त्री ने एकदम ॥ध्रुवपद॥
आटा घूंद रोटियां की, फिर चूर खांड-घी डाले।
वांधे लड्डू भाए जितने, खाए अति रस वाले जी, वस० ॥१॥

मणि इकहत्तरवां   मतलबी दुनिया

जिस स्त्री को बिन्दु सर्वस्व समझ रहा था। वह स्त्री उसे मृत मानकर भी मजे से लड्डू खाती रही। इससे बढ़कर स्वार्थपरायणता और क्या हो सकती है। वर्णन वैराग्योत्पादक है। पढ़कर बैरागी बनिए।

तर्ज—अफसाना लिख रही हूं

सच-सच सुना रहा हूं, झूठा संसार है।
कोई किसी का है नहीं, मतलब के यार हैं ।।ध्रुवपद।।
स्त्री-माता-पिता के प्रेम में, अज्ञानी पागल बन-२।
कहता है प्राण पियारा, मेरा परिवार है, कोई०।।१।।
इन्दु-बिन्दु एक पुर में, दो मित्र रहते थे-२।
कहते थे लोग सच्चा, दोनों का प्यार है, कोई० ।।०२।।

तर्ज—गाए जा गीत मिलन के

बिन्दु दिन और रात, पियारी के साथ,
मगन बन रहता था ।।ध्रुवपद।।
कहता था फिर-फिर वह बात में, झूठा है संसार।
सच्ची है केवल मेरी पियारी, असली है उसका प्यार।
आए मुनि गुणखान, सुना रहे ज्ञान, मगन०।।१।।
सुनता था इन्दु आता न बिन्दु, कहता था, इन्दु व्यक्त।
आसक्ति त्याग ! प्रेम स्त्री का है झूठा, मत बन तू आसक्त।
जरा करके विचार, धरम दिल धार, मगन० ।।२।।

तर्ज—ज्ञानी गुरु अमने संभार जो !

बिन्दु अरे भाई ! तुझको न है खबर,
मेरी प्यारी का सच्चा है प्यार रे ।।ध्रुवपद।।

मेरे बिना वह खाती न खाना,
पीती न बिन्दु एक बार रे, अरे०॥१॥
जब तक न निद्रा आती है मुझको,
रहती है सेवा में त्यार रे, अरे०॥२॥
तकलीफ जरा यदि हो जाए मेरे,
वह देती है जीवन उबार रे, अरे०॥३॥
बोला है इन्दु भ्रम में क्यों भूला,
कर तू परीक्षा एक बार रे, अरे०॥४॥

तर्ज—सुना दे-३ किसना !

सिखाया, सिखाया, सिखाया इन्दु ने,
सांस चढ़ाना बिन्दु को सिखाया ! इन्दु ने ॥ध्रुवपद॥
चिल्लाहट बेहद करना, घर में जा फौरन गिरना-२।
श्वास चढ़ाना बाद में बताया इन्दु ने, सांस०॥१॥
सहचर की मानी शिक्षा, करने को प्रेम-परीक्षा-२।
घर आकर के झूठा ढोंग बनाया बिन्दु ने, सांस ॥२॥

तर्ज—आजा-आजा, आजा मेरे

दौड़ो-दौड़ो !दौड़ो पियारी ! आज मेरा मरना ही आया।
अंगन में कह यों गिर गया, फिर सांस चढ़ाया ॥ध्रुवपद॥
सुनते ही अन्दर से सुन्दरी दौड़ आयी है-२।
देखा पिया का जिस्म बिल्कुल ठंडा लखाया, अंगन०॥१॥
एक बार तो दिल पर, लगा धक्का गिरी भू पर-२।
आ होश में कहने लगी, बालम तो सिधाया,अंगन०॥२॥
रोऊंगी अब ही तो, पड़ेगा रात भरा रोना-२।
भूखी हूं थक जाऊंगी, रोना मुश्किल कहाया, अंगन०॥३॥

तर्ज—म्हारी रस सेलड़ी

बस ! द्वार-बंद कर, चूल्हा सुलगाया, स्त्री ने एकदम ॥ध्रुवपद॥
आटा घूंद रोटियां की, फिर चूर खांड-घी डाले।
बांधे लड्डू भाए जितने, खाए अति रस वाले जी, बस० ॥१॥

वड़े-वड़े दो लड्डू रक्खे, लाकर के छींके पर ।
फिर कुछ निद्रा भी ले ली है, सुख शय्या में सोकर जी, वस०॥२॥
देख अनूठी लीला विस्मित, विन्दु हुआ है दिल में ।
थोड़ी रात रही तव स्त्री ने, धूम मचाई घर में जी, वस०॥३॥

तर्ज—राधेश्याम

लड्डू एक गोद में रक्खा, पड़ा दूसरा छींके पर ।
वैठ गई छींके के नीचे, फिर चिल्लाई दीन स्वर ॥
लोग सैकड़ों हुए इकट्ठे, सवही के मन फिक्र अपार ।
रोती-रोती युवती ने इत, की है ऐसी करुण पुकार ॥१॥

तर्ज—मेरा दिल तोड़ने वाले

स्वर्ग[1] जाते समय साहिव! सीख कुछ तो सुना जाना!
विन्दु गोद वाला खतम हो तव, अरी! छींके से ले खाना ॥ध्रुवपद॥
अचंभित हो गए सारे, न लेकिन वात कुछ समझे ।
हकीकत विन्दु ने सारी, सुनाई तत्व पहचाना, स्वर्ग०॥१॥
कहा फिर इन्दु से जाकर, कथन सव सत्य है तेरा ।
परीक्षा हो गयी अव तो, करूंगा धर्म मन माना, स्वर्ग०॥२॥
गया संतों के चरणों में, सुनी सद्ज्ञानमय शिक्षा ।
हुआ वैराग्य दिल पैदा, लिया चारित्र सुखदाना, स्वर्ग०॥३॥

तर्ज— राधेश्याम

अनशन कर मुनि स्वर्ग सिधाए, अव देखो दुनिया का स्वार्थ ।
ममता माया से मुख मोड़ो! ज्ञानी वन साधो! परमार्थ ॥
दो हजार पांच शुभ संवत, फाल्गुन सित वारस पहचान ।
जखवाड़ा में 'धन मुनि' ने गुरुकृपया जोड़ा यह व्याख्यान ॥

---

१. स्वर्गं जातां साहिवा ! कांयक तो कहजाज्यो जी ।
खोलां मांयलो खूटै जद थे, छींकै परलो खाज्यो जी ॥

मणि बहत्तरवां श्रेणिक की कसौटी

साधु-साध्वियों का रूप बनाकर देव ने राजा श्रेणिक की विचित्र परीक्षा की लेकिन राजा का एक भी रूं विचलित नहीं हुआ। निम्नलिखित वर्णन पढ़िए और धर्म में दृढ़ श्रद्धावान बनिए !

तर्ज—नरम बनो जी नरम बनो !

बन जाओ जी बन जाओ ! दृढ़ सम्यक्त्वी बन जाओ! ॥ध्रुवपद॥
ठग कितने ही आते हैं, झूठे ढोंग रचाते हैं।
उनसे धोखा मत खाओ ! दढ़०॥१॥
सच्चे देव सुगुरु सद् धर्म, रत्न तीन ये हैं अनुपम।
शंका इनमें मत लाओ, दृढ़०॥२॥
सुनते हैं श्रेणिक महाराज, थे दृढ़ सम्यक्त्वी-सिरताज।
सुन वर्णन गुण अपनाओ! दृढ़०॥३॥

तर्ज—आजा-आजा-आजा मेरे

भगवान-भगवान, भगवान श्री महावीर राजगृह में पधारे।
पाकर खबर पुलकित हुए हैं, पुरलोक सारे॥ध्रुवपद॥
श्रेणिक नरेश्वर ने, किए हैं शीघ्र जा दर्शन-२।
सुन रहे तल्लीन बन, प्रभुवचन पियारे, पाकर०॥१॥
कुष्ठी अचानक ही, वहां पर एक आया है-२।
रस्सी लगाकर नाथ के, फिर बैठा किनारे, पाकर०॥२॥

तर्ज—दिल्ली चलो !

छींक आयी, छींक आयी, छींक आयी जी।
इतने ही में वीर प्रभु को, छींक आयी जी ॥ध्रुवपद॥
कुष्ठी बोला शीघ्र मर, काहे को जी रहा।

महाराज को छींकने पर, 'मत मर' यों कहा ।
छींका मंत्री 'मर चाहे जी', ऐसी गाई जी, इतने०॥१॥
'मत मर-मत जी', काल सूकर सोनिक से कहा ।
मगधाधीश्वर इस चेष्टा से, विस्मित-सा हुआ ।
सोच रहा है कितनी वेहद, है मूर्खाई जी, इतने०॥२॥

तर्ज—रहमत के बादल छाए

आंखों से सैन कर, सुभटों को सज्ज बनाया ॥ध्रुवपद॥
कुष्ठी उठकर लगा निकलने, सुभट सिधाए उसे पकड़ने ।
लेकिन न पकड़ में आया, आंखों ॥१॥
पूछा नृप ने विस्मय पाकर, था यह कौन ? बताएं प्रभुवर ।
प्रभु ने सब हाल सुनाया, आंखों ॥२॥

तर्ज—हीरा मिसरी का

नगरी कौशांबी, था विप्र[1] गरीब अपार ॥ध्रुवपद॥
शतानीक नृप को विरुदाया, तुष्ट नृपति ने वर बकसाया ।
मांगा खूब विचार, नगरी०॥१॥
नित्य नये घर में हो भोजन, दो मुद्राओं का हो वितरण ।
माने वसुधाधार, नगरी०॥२॥
ब्राह्मण के दिल लोभ बढ़ गया, खा-खाकर फिर वमन कर रहा ।
प्रगटा कोढ़-विकार, नगरी०॥३॥

तर्ज—तन नहीं छूता कोई

कोढ़िया अवलोक द्विज को, तुरत घर बाहर किया ।
स्वजन बदले हैं सकल, अथ हार वनवासा लिया ॥ध्रुवपद॥
हाय ! जिन स्वजनों के खातिर, कुष्ट रोगी मैं बना ।
उन कृतघ्नों ने मुझे, इस तरह धक्का दे दिया, कोढ़िया०॥१॥
विप्र ने अज एक पाला, वैर लेने के लिए ।
निज वमन उसको खिलाता, अमित हुलसाता हिया, कोढ़िया०॥२॥

---

१. सेडुक ब्राह्मण ।

तर्ज—मेरा दिल तोड़ने वाले

महोत्सव के समय सुत को, बुलाकर विप्र ने गाया।
मारकर आज अज खाओ ! सही कुल धर्म कहलाया ॥ध्रुवपद॥
मान कहना उसी अज को, मारकर कर गए भक्षण।
कर्मवश वदन में सबके, कोढ़ विकराल है छाया, महोत्सव०॥१॥
महा दुःखित हुए परिजन, इधर द्विज भाग निकला है।
भ्रमण करते हुए गंधक-सुमिश्रित नीर है पाया, महोत्सव०॥२॥
तृषावश पी लिया काफी, लगे हैं दस्त बीसों ही।
मिट गई कोढ़ की व्याधि, हर्षवश हृदय हुलसाया, महोत्सव०॥३॥
गया स्वजनों से मिलने को, सभी कुष्ठी नजर आए।
निकाला दुष्ट को सबने, भटकता राजगृह आया, महोत्सव०॥४॥

तर्ज—राधेश्याम

करता उग्र विहार इधर, मैं भी राजगृह पुर आया।
द्विज देवी के मंदिर में जा, नेवज खाता मन भाया ॥१॥
अधिक खा लिया एक रोज, अति तृषा लगी घुट गया गला।
आर्तध्यान में मरण हुआ, मेंढक का उसको जन्म मिला ॥२॥
सुन मेरा आगमन चला वह, दर्शन हित जाति-स्मृति पा।
घोड़े के पग से दबकर मर, मेंढक दुर्दुर देव बना ॥३॥

तर्ज—रंगवा दे चुंदड़ियां

गाई-गाई सभा में कीर्ति इन्द्र ने गाई रे,
तेरी समकित बहुत सराही रे, पर इसके मन नहिं भाई रे ॥ध्रुवपद॥
करने परीक्षा फौरन धाया, परिषद् में कुष्ठी बन आया।
मेरे पैरों में राध लगाई रे, तेरे मन न सुहाई रे,
(पर) था चन्दन सुखदाई रे, गाई०॥१॥

तर्ज—हरिगीत

छींक जब आयी मुझे, उसने कहा तू शीघ्र मर !
क्यों अशुचि के पुतले में, फंस रहा शिवशांति वर !
न मर तेरे से कहा, कारण नरक में जाएगा।
यहां सब आनन्द है, पर मार आगे खाएगा ॥१॥

जी ! भले मर! देवता ने अभय मंत्री से कहा।
अर्थ इसका यहां सुख है, देवपद[1] हाजिर वहां।
जी न तू! मर भी न तू, यों काल सूकर से कहा।
यहां दुष्कृत कर रहा, आगे नरक दुख है वहां ॥२॥

तर्ज—अफसाना लिख रही हूं

नगरी में आ रहे हैं, नम कर जिनराज को।
रास्ते में मुनिजी आ मिले श्रेणिक महाराज को ॥ध्रुवपद॥
गज से उतर कर नृप ने, मुनि को, किया वंदन-२।
शिक्षा यहां मिल रही है, श्रावक समाज को, रास्ते०॥१॥
पात्रों में मांस देखा, महाराज चौंके हैं-२।
पूछा मुनिजी! यह कैसे, खाना मुनिराज को? रास्ते०॥२॥

तर्ज—ज्ञानी गुरु अमने संभार जो !

बोले ऋषि खाना तो है नहीं,
(पर) रुकता न मन का विकार रे, बोले ॥ध्रुवपद॥
थे राजपुत्र हम, संसार-वास में,
खाते थे मांस हर बार रे, बोले०॥१॥
अब भी कभी मन चलता है तब हम,
ले आते मांस का आहार रे, बोले०॥२॥
इक हम क्या ? गुपचुप खाते हैं और भी,
राजन् क्या कर रहे विचार रे, बोले०॥३॥
रे दुष्ट ! सच्चे हैं संत सारे,
तू ही है सिर्फ बदकार रे, बोले०॥४॥
'मिच्छामि दुक्कडं' की मैंने वंदना,
कह यों चले हैं घर प्यार रे, बोले०॥५॥
सतियों का जोड़ा इतने में आ मिला,
नृप ने किया है नमस्कार रे, बोले०॥६॥

---

१. विजय विमान में।

तर्ज—किस फिक्र में बैठे हो

सतियां वे सगर्भा थीं, नृप-मन विस्मय पाया।
अयि पापिनियों! यह क्या! गुस्से हो फरमाया ॥ध्रुवपद॥

सतियों ने हंस के कहा, राजन्! क्यों चौंक रहा!
विलसे हुए भोगों का, सुमिरन फिर हो आया, सतियां० ॥१॥
चंदनबाला आदि, सबके है यही व्याधि।
हमने तो दया करके, शिशु को नहिं गिरवाया, सतियां० ॥२॥

तर्ज—राधेश्याम

राजा ने सुनकर फिटकारा, क्यों बकती हो बिना विचार!
दुराचरिणी हो तुम दोनों, सतियों में नहिं दूषण तार॥
करके फिर मिच्छामि दुक्कड़ं, हुए रवाना हर्ष अपार।
धन्य-धन्य! श्रद्धालु श्रेणिक, संशय का न हुआ संचार ॥१॥
प्रगट हुआ सुर पड़ा चरण में करने यों तारीफ लगा।
तेरी महिमा सुरपति ने की, संशय मेरे चित्त जगा।
कुष्टी बनकर आया फिर, मुनि-आर्याओं का वेष लिया।
अजब गजब है दृढ़ता तेरी, कह यों गोलक-हार दिया[1] ॥२॥
गया देवता देवलोक में, अब सुन वर्णन भव्यजनों।
रत्नत्रय में धरो न शंका, श्रेणिक सम निःशंक बनो!
दो हजार पांच शुभ संवत, चैत्र अष्टमी पहला पक्ष।
सदगुरु-कृपया 'लखतर' ग्रामे 'धन मुनि' का इक संयम लक्ष ॥३॥

---

१. राजा ने गोला अभय की माता सुनंदा को एवं हार चेलना रानी को दिया। गोले में से दिव्य कुंडलों की जोड़ी निकली। हार आखिर विहल्ल कुमार के पास पहुंचा। इसी हार एवं सेचनक हाथी के लिए चेटक-कोणिक का महायुद्ध हुआ, जिसमें एक करोड़ अस्सी लाख आदमी मरे।

मणि तिहत्तरवां सामायिक की कीमत

सोने चांदी की छप्पन पहाड़ियां देने पर भी सामायिक की दलाली पूरी नहीं होती। पूणिया श्रावक के वर्णन से यह बात समझिए !

तर्ज—हीरा मिसरी का

पूणिये श्रावक का, फैला यश चहुं ओर ॥ध्रुवपद॥
नहिं था वह राजा-महराजा, नहिं था वह लक्ष्मीधर ताजा।
था लेकिन धर्म चकोर, पूणिए० ॥१॥
वर सामायिक करता था वह, ध्यान प्रभु का धरता था वह।
कर तत्त्वों पर गौर, पूणिए० ॥२॥
महावीर प्रभु एक दिन आए, सतियां संत हजारों लाए।
फूले जन मन मोर, पूणिए० ॥३॥

तर्ज—आजादी का दीवाना था

व्याख्यान में भगवान ने, अमृत बरसाया है।
व्यवहारिक और आत्मिक धर्म, पृथक् दिखलाया है ॥ध्रुवपद॥
अजब रसीली वाणी ने, जादू-सा कर दिया।
यथाशक्ति लोगों ने, त्याग-विराग बढ़ाया है, व्याख्यान० ॥१॥
पूछा श्रेणिक राजा ने, क्या गति होगी मेरी ?
प्रथम नरक, यह कैसे ? सुन प्रभु ने फरमाया है, व्याख्यान० ॥२॥
हरिणि-हत्या के समय, दुष्कर्म कमाए थे।
बंध निकाचित हो गया, सुन नृप घबराया है, व्याख्यान० ॥३॥

तर्ज—मेरा दिल तोड़ने वाले

दया कर नरक-दुःखों से बचा दोगे तो क्या होगा !
अगर इक डूबती नैया, तरा दोगे तो क्या होगा! ॥ध्रुवपद॥

आखिर कहा पूणिए श्रावक से, सामायिक इक दे दे।
बच जाऊं मैं नरक दु:ख से, तू मन चाहा धन ले ले ! ॥४॥

तर्ज—ज्ञानी गुरु अमने संभार जो !

अरे सेठ ! जल्दी से मान ले ! मीठी है मेरी मनुहार रे ॥ध्रुवपद॥
(पूणिया) अनमोल सामायिक कैसे दूं मोल से,
राजेन्द्र कीजिए विचार रे, अरे० ॥१॥
राजा गरम-सा होने लगा है,
तब बोला यों पूणिया विचार, अरे० ॥२॥
जिनवर से इसकी किम्मत करा लें,
बस ! आए हैं वीर-दरबार रे, अरे० ॥३॥
(राजा) भगवान ! सामायिक की कीमत बतायें !
हाजिर है सामने दातार रे, अरे० ॥४॥

तर्ज—चले आना हमारे अंगना !

ऐसी बानी सुनके राजा ज्ञानी जन के,
महाराजा से बोले भगवान-२ ॥ध्रुवपद॥
कीमत सामायिक की बेशुमार है,
दी जा सकेगी न मेरा विचार है-२।
सारा राज्य दे दूंगा, भिक्षावृत्ति ले लूंगा, महाराजा० ॥१॥
सोने और चांदी की छप्पन पहाड़ियां
दे दे अगर राज्य संपत् अपारियां-२।
फिर भी दलाली महान, सामायिक की सुजान, महाराजा० ॥२॥
सुनते ही श्रेणिक दिलगीर हो गया,
बोले हैं नाथ फिक्र क्यों व्यर्थ कर रहा-२।
पद्मनाभ अभिधान, तू बनेगा, भगवान, महाराजा० ॥३॥

तर्ज—राधेश्याम

शांत हुआ श्रेणिक महाराजा, अब भव्यों ! तुम ज्ञान करो ?
कर सच्चा सामायिक, पुण्यक श्रावक का इतिहास स्मरो ?
दो हजार पांच शुभ संवत, चैतवदी नवमी आई।
सद्गुरु-कृपया लखतर ग्रामे, रचना 'धन मुनि' ने गाई ॥१॥

मणि चौहत्तरवां — सच्चा सामायिक

देखते-देखते लाखों रुपयों का कंठा चला गया फिर भी निश्चल मन से सामायिक करता रहा। मुंह बांधकर मोची आदि के घरों में भटकने वाले श्वसुर को पुत्रवधू ने उपरोक्त कथा कहकर समझाया। वर्णन पढ़िए और शुद्ध सामायिक कीजिए !

तर्ज—आजादी का दीवाना

शुद्ध सामायिक करने वाले, श्रावक विरले हैं।
हां ! हां ध्यान धर्म का धरने वाले श्रावक विरले हैं ।।ध्रुवपद।।
मुंह बांधकर बैठे, बस ! सामायिक हो गया।
किन्तु तत्त्व को स्मरने वाले, श्रावक विरले हैं, शुद्ध०।।१।।
चार कर लिए पांच कर लिए, गिनते रहते हैं।
(पर) मन वश करके तरनेवाले, श्रावक विरले हैं, शुद्ध।।२।।

तर्ज—राधेश्याम

धर्मदास धनवान सेठ इक, धर्मपुरी में रहता था।
सामायिक करता था पहले, पीछे भोजन लेता था।
तत्त्वज्ञा थी पुत्रवधू, जो सत्य-शील में पूरी थी।
मधुरभाषिणी थी स्फुट वक्ता, पुर में कीर्ति सनूरी थी ।।१।।

तर्ज—रहमत के बादल छाए

सामायिक कर रहा, एक रोज सेठ दिल ला के, सामायिक ।।ध्रुवपद।।
था कमरा एकांत निराला, बैठा था लेकर जप माला।
आंखों के पटल मिला के, सामायिक०।।१।।
पुरुष एक बाहर से आया, लेकिन सेठ न घर में पाया।
पूछा बहुवर से आ के, सामायिक० ।।२।।

कहा बहू ने फौरन हंसकर, सेठ गए हैं मोची के घर।
जूतों में ध्यान लगा के, सामायिक० ॥३॥

तर्ज—मेरा दिल तोड़ने वाले

जरूरी काम था कोई, बेचारा तुरत धाया है।
निरर्थक पैर ही तोड़े, न लेकिन सेठ पाया है ॥ध्रुवपद॥
बहू कहने लगी अब वे, बजाजों की दुकानों में।
गए हैं वस्त्र लेने को, बेचारा फिर सिधाया है, जरूरी० ॥१॥
भटककर आ गया वापस, कहा फिर केस के कारण।
गए हैं कोर्ट में सुनकर, चक्र पुनरपि लगाया है, जरूरी० ॥२॥
सेठ जी हाट के अन्दर, रुपैये गिन रहे हैं अब।
काम इन्कम का करते हैं, अधिक दिल फिक्र छाया है, जरूरी० ॥३॥

तर्ज—राधेश्याम

भटक-भटक कर हार गया, पर सेठ नजर नहिं आया है।
कहा बहू ने अब वे करते, सामायिक मनभाया है ॥१॥
पूर्ण हो गया सामायिक, हो क्रुद्ध सेठ ने यों गाया।
अयि मूर्खे ! क्यों झूठ बोलकर, आगंतुक को भटकाया? ॥२॥

तर्ज—आजा-आजा, आजा मेरे

बोली-बोली, बोली बहू कर जोड़ सुनाए, ससुर पियारे !
क्यों झर रहे हैं आप मुख से, कुवचन अंगारे ॥ध्रुवपद॥
मैंने कहा जो कुछ, न अक्षर एक झूठा था-२।
मोची के घर पहुंचे नहीं क्या ? सच सच उचारे ! क्यों० ॥१॥
मुख बांधने से ही कहां, होता है सामायिक-२।
तत्त्व उंडे शास्त्र के कुछ, अंदर उतारें ! क्यों० ॥२॥
कुछ भी बने दिल को, न विचलित चाहिए करना-२।
उस सेठ का वर्णन, जरा-सा मन से विचारे ! क्यों० ॥३॥

तर्ज—अफसाना लिख रही हूं

सामायिक कर रहा था, मुनियों के स्थान में।
बैठा था मन-वच-तन को, वश करके ध्यान में ॥ध्रुवपद॥

गल से निकाल रक्खा, पन्नों का कंठा भी-२।
श्रावक वह लीन हो गया, प्रभु के गुनगान में, बैठा० ॥१॥
देख कीमती कंठा, एक श्रावक ने लिया-२।
लेकर के भाग गया है, था हर्ष अमान में, बैठा० ॥२॥

तर्ज—किस फिक्र में बैठे हो ?

मालिक ने देख लिया, लेकिन दिल न हिलाया।
समता में लीन रहा, एक रूं भी न चलाया ॥ध्रुवपद॥
सामायिक पूर्ण हुआ, फिर भी न किसी से कहा।
परदेश गया इत वह, ले कंठा मनभाया, मालिक० ॥१॥
गिरवी रखने से मिले, रुपये एक लाख भले।
व्यापार किया उसने, धनलाभ अधिक पाया, मालिक० ॥२॥
दो वर्ष निकलने पर, कंठा वह छुड़वाकर।
लाकर के सौंप दिया, किस्सा सब बतलाया, मालिक० ॥३॥

तर्ज—राधेश्याम

अहो श्वसुरजी ! ज्ञान दृष्टि से, देखो ! उसका सामायिक।
गया लाख का कंठा फिर भी, निर्मल रक्खा सामायिक ॥१॥
विस्मित होकर कहा श्वसुर ने, धन्य ! धन्य है ! तेरा ज्ञान।
मानव-जन्म सफल है तेरा, तू पाएगी पद निर्वाण ॥२॥
सुन यह वर्णन भव्य जनो ! सामायिक शुद्ध करो हर बार।
सद्गुरु-कृपया 'धनमुनि' कहता, तर जाओ ! भीषण भवपार[१] ॥३॥

---

१. वि० सं० २००५ चैत वदी १०।

मणि पचहत्तरवां — सत्य की ताकत

पुत्र के प्राणों की बाजी लग गई, फिर भी सेठ जिनदास ने असत्य वचन नहीं बोला। धन्य है ! वह सत्य का सच्चा पुजारी ! कथा पढ़िए और सच्चे बनिए !

तर्ज—हीरा मिसरी का

सत्य के विश्वासी हैं, विरले संसार ।।ध्रुवपद।।
न्यायालय में झूठ भरा है, देवालय में झूठ भरा है।
झूठा सब व्यापार, सत्य० ।।१।।
सत्य बराबर धर्म नहीं है, यों सब दुनिया बोल रही है।
फिर भी झूठ से प्यार, सत्य०।।२।।
शक्ति सत्य की सुनो! ध्यान से, तजो! झूठ कुछ समझ ज्ञान से।
ज्ञानी रहे पुकार, सत्य०।।३।।

तर्ज—कलदार रुपइया चांदी का

अति सुन्दर चंपा नगरी में, जिनदास सेठ एक भारी था ।।ध्रुवपद।।
नहिं झूठ कभी उच्चरता था, नहिं झूठ कभी आचरता था।
अवितथ का एक पुजारी था, जिनदास०।।१।।
श्रीमंतों में अग्रेसर था, विश्वासी जन-शिरशेखर था।
पर पुत्र बिना दुखियारी था, जिनदास ।।२।।

तर्ज—श्रीमहावीर प्रभु के चरणों में

करते-करते दिल में फिक्र, भाग्य से नन्दन आया है।
आनंद मनाया मंगल गाया है ।।ध्रुवपद।।
लेकिन वह तस्कर, बन गया कुसंगति में पड़,
पाकर श्रेष्ठी ने अवसर।
समझाया लेकिन समझ न पाया है, करते०।।१।।

राजा का मंदिर, फाड़ा है उसने जाकर,
ले आया हार मनोहर।
पुरपति ने उसका पता लगाया है, करते० ॥२॥
फौरन बुलवाया, सुनते ही दिल घबराया,
चल शरण पिता की आया।
उसने नन्दन को यों समझाया है, करते० ॥३॥

तर्ज—और कहीं पर जाओ !

बेटा सच्ची-सच्ची बात सुना देना !
की है मैंने चोरी, ऐसे गा देना ! ॥ध्रुवपद॥
सत्य वचन से बच जाएगा, वरना प्राण गवां आएगा।
किन्तु तात का सुत ने नहिं माना कहना, बेटा०॥१॥
क्रुद्ध नृपति ने प्रश्न किया है, क्या तूने मेरा हार लिया है ?
अगर लिया हो तो सच-सच बतला देना, बेटा०॥२॥

तर्ज—म्हारी रस सेलड़ी

क्या करूं हार का, हारों की गिनती घर में है नहीं ॥ध्रुवपद॥
घर में इतना धन है जो मैं, खुल्ले हाथ उड़ाऊं।
तो भी खूट न सकता फिर मैं, क्यों चोरी को जाऊंजी, क्या० ॥१॥
राजा ने काफी धमकाया, फिर भी नहिं स्वीकारा।
सेठ साहब पर आखिर नृप ने, रक्खा सब निपटाराजी, क्या० ॥२॥

तर्ज—सुना दे-३ किसना !

बचा दो ! बचा दो ! बचा दो ! मुझको,
दया-मया कर बापजी ! बचा दो मुझको ॥ध्रुवपद॥
मन में संतोष धरूंगा, चोरी अब नहीं करूंगा-२।
हाथ तुम्हारे ही हैं, शीघ्र छुड़ा दो ! मुझको, दया०॥१॥
कह देना चोर नहीं है, नहिं इसने चोरी की है-२।
सच्चा प्रेम पिता का, आज दिखा दो ! मुझको, दया०॥२॥
घर आ यों रोया नन्दन, बरसाया आंखों से घन-२।
बोला कृपया जीवन दान, दिला दो! मुझको दया० ॥३॥

तर्ज—दिल्ली चलो !

नहिं बोलूंगा, नहिं बोलूंगा, नहिं बोलूंगा मैं ।
अपने मुख से झूठ वचन तो, नहिं बोलूंगा मैं ।।ध्रुवपद।।
दबा रहे हैं स्वजन सेठजी ! हठ मत ठानिए !
झूठ बोलने में न हर्ज है, पुत्र के लिए ।
कहा सेठ ने सत्य वचन से, नहिं डोलूंगा मैं, अपने०।।१।।
बुलवाया राजा ने, सेठ कचहरी आया है ।
रो रहा है पुत्र, परिजन गण बिलखाया है ।
सोच रहा है सेठ फिर भी, सच तोलूंगा मैं, अपने०।।२।।

तर्ज—आया-२ मेरे

पूछा-पूछा-पूछा नृपति ने सेठजी से कर के इशारा ।
करता है चोरी या नहीं, यह लड़का तुम्हारा ।।ध्रुवपद।।
करता है अयि राजन् ! मेरा लड़का सदा चोरी-२।
चोरा है ताजेतर में प्रभु का, हार पियारा, करता०।।१।।
सुनते ही दरबारी, चकित-से हो गए सारे-२।
छा रहा नृप के हृदय में, विस्मय अपारा, करता०।।२।।
कहने लगा मेरा, शहर यह धन्य है ! जिसमें-२।
है चमकता सत्य का यह, अद्भुत सितारा, करता०।।३।।

तर्ज—अखियां मिला के

सत्य की ताकत, अजब लियाकत, अब तुम देखो ! ।।ध्रुवपद।।
मांगो वरदान सेठजी ! प्रमुदित मन बोला नरवर ।
छोड़ो! सुत मेरा जो पकड़ा गया, यदि देना है वर, सत्य०।।१।।
तूने कर के मुग्ध सत्य पर, छोड़ा है लड़का फौरन ।
लड़के ने त्याग किए हैं, चोरी के अहो! यावज्जीवन, सत्य०।।२।।

तर्ज—राधेश्याम

सुन कर के यह वर्णन भव्यों ! सत्य वचन पर अडिग रहो !
संकट में भी सेठ तुल्य तुम, वितथ वचन मुख से न कहो !
दो हजार पांच शुभ संवत, चैत्र कृष्ण ग्यारस पहचान ।
नखतर ग्राम में गुरु-कृपया, 'धन मुनि' ने जोड़ा यह व्याख्यान ।।१।।

चौधरी ! राह भूले हम, बता दे! हो अगर मर्जी ।
अभी आता हूं कह कर यों, चला दिल में खुशी छाई, तुरत०॥२॥
चढ़ाकर पंथ पर ऋषि को, लगा है लौटने ज्यों ही ।
दया करके ऋषिश्वर ने, सुनाई सीख सुखदाई, तुरत०॥३॥

तर्ज—दुनिया में बाबा !

भैया ! तू जरा-सा, धर्म का ध्यान लगा ले !
भैया ! तू जरा-सा, माया से मोह हटा ले!॥ध्रुवपद॥
मात-पिता भ्राता सुत नारी, है दुनिया मतलब से प्यारी ।
अंतर ज्योति जगा ले ! भैया ! ॥१॥
बार-बार नर जन्म न पाता, धर्म न करता वह पछताता ।
पाप से पिंड छुड़ा ले ! भैया ? ॥२॥
दयाशील संतोष धार ले ! ममता और विकार मार ले !
कुछ नित्य-नियम अपना ले ! भैया ! ॥३॥

तर्ज—आजादी का दीवाना

महाराज ! कोई सीधा-सा, रास्ता दिखा दो जी !
इतने नियम न पल सकते, कोई एक बता दो जी ! ॥ध्रुवपद॥
बोले मुनिश्वर एक नियम तो, है महा मुश्किल ।
हो मुश्किल का बाप भले खुश हो सुना दो जी! महाराज! ॥१॥
मन का जाना काम न करना, है सीधा यह पंथ ।
पाल सके तो ले ले! जी हां! अभी दिला दो जी! महाराज!॥२॥

तर्ज—दिल्ली चलो !

नियम दिलाया, नियम दिलाया, नियम दिलाया जी !
'मन जाना नहिं करना', मुनि ने नियम दिलाया जी ॥ध्रुवपद॥
अगर शुद्ध यह पाल लेगा, तो तेरा उद्धार ।
शर्तिया हो जाएगा, नहिं फर्क पड़ेगा तार ।
बेशक पालूंगा कृपक ने खुश हो गाया जी, मन जाना० ॥१॥
आत्मार्थी मुनिवर ने, अपना पंथ ले लिया ।
जाकर काटूं खेत, कृपक यों मन में ध्या रहा ।

होने लगा रवाना, ज्योंही कदम उठायाजी, मन जाना० ॥२॥

तर्ज—और कहीं पर जाओ!

याद आ गया काम हुआ यह मन जाना।
नियम लिया था, काम न करना मन जाना ॥ध्रुवपद॥
खड़ा रह गया तुरत वहां ही, घड़ियां दो या तीन बिताई।
इधर खेत में आयी नारी ले खाना, याद० ॥१॥
पति नहिं पाया शब्द किया है, कृपक बंधु ने सुन तो लिया है।
किन्तु न बोला काम जान कर मन जाना, याद० ॥२॥
इधर समीप जाटनी आयी, अच्छी-मंदी कई सुनाई।
रहा कृपक तो मौन, अजब धीरज ठाना, याद० ॥३॥

तर्ज—रहमत के बादल छाए

बेचारी हार कर चौधरण गांव में आई ॥ध्रुवपद॥
लगा बैठने ज्यों ही थककर, याद प्रतिज्ञा आयी तब फिर।
खड़ा रहा वह भाई, बेचारी० ॥१॥
लगे काटने निशि जब, मच्छर लगा उड़ाने हाथ उठाकर।
बस ! स्मरा नियम सुखदाई, बेचारी० ॥२॥
मुनि ने यह क्या नियम दिलाया, सभी तरफ से स्तब्ध बनाया।
अहो ! कैसी अक्ल चलाई, बेचारी० ॥३॥

तर्ज—चले आना हमारे अंगना

ऐसे छान करते. दिल ध्यान धरते।
चौधरी को हुआ है वहीं ज्ञान[1] ॥ध्रुवपद॥
पिछला जन्म शीघ्र अपना निहाला,
संयम अहो ! मैंने चिरकाल पाला-२।
लेकिन गल्ती करके[2] यहां आया मर के, चौधरी को० ॥१॥

---

१. जाति स्मरण।

२. साधुपने में।

बस ! ले चरण फिर सद् ध्यान ध्याया,
आठों ही कर्म काट शिव सौख्य पाया-२।
देखो एक ही नियम, खेला कर गया खतम, चौधरी को ॥२॥

तर्ज—राधेश्याम

इस वर्णन का सार यही है, चंचल मन को वश कर लो !
सिर्फ एक इस मन को वश कर, कृपक तुल्य शिवपद वरलो!
दो हजार पांच शुभ संवत, चैत कृष्ण बारस शनिवार।
सद्गुरु-कृपया 'लखतर' ग्रामे, 'धनमुनि' करता धर्मप्रचार ॥१॥

मणि सितत्तरवां किस्मती खेल

भाग्यहीन जाट परिवार तीन बार वरदान देने पर भी कुछ नहीं पा सका जब कि भाग्यवान अंधा भिखारी एक ही वरदान में आंख, धन, पुत्र, पौत्रादि से संपन्न हो गया। यह वर्णन मन को आकृष्ट करने वाला है।

तर्ज—मेरा दिल तोड़ने वाले

विना तकदीर दमड़ी भी, नहीं मिलती, नहीं मिलती।
भले हों ढेर रत्नों के नहीं मिलती, नहीं मिलती ॥ध्रुवपद॥
घड़ा जितना बड़ा होता, समाता नीर उतना ही।
भले वरदान दें सुरवर, अंत तकदीर ही फलती, विना०॥१॥
अगर तकदीर हो ताजा, संपदा दौड़ आती है।
प्रगट सुख सात ही होते, वगीची बुद्धि की खिलती, विना०॥२॥
स्वर्ग में देवता दो[1] थे, परस्पर प्रेम था भारी।
वात सुरशक्ति की उनमें, एक दिन थी सुखद चलती, विना०॥३॥
कहा मणिचूड़ ने दैविक-शक्ति, किस्मत के पीछे है।
(पर) न माना मित्र सुर बोला, यहां तू कर रहा गलती, विना०॥४॥

तर्ज—आजादी का दीवाना

करने परीक्षा दोनों ही, पृथ्वी पर आए हैं।
तीन[2] आदमी खेत जाते, उनको पाए हैं ॥ध्रुवपद॥
धनी बना दे! इन तीनों को, बोला है मणिचूड़।
चन्द्रचूड़ ने स्वर्ण-रत्न के, ढेर लगाए हैं, करने०॥१॥
व्यक्ति तीन ही हैं हम घर में, कदा बनें सब अंध।
फिर क्या हो? हतभाग्यों ने, यों प्रश्न उठाए हैं, करने०॥२॥

---

१. मणिचूड़ और चन्द्रचूड़।
२. जाट, जाटनी और एक उनका पुत्र।

करने को अभ्यास सभी वे, चले नयन कर बंद।
निकल गए हैं रत्नपुंज, लेने न पाए हैं, करने०॥२॥

तर्ज—तू है प्राण पियारो म्हारो

इनको मैं धनवान बना दूं, देकर के वरदान-दान।
चन्द्रचूड़ से रत्नचूड़ ने, ऐसा किया बयान-यान ॥ध्रुवपद॥
न बनेंगे, हैं भाग्यहीन नर, किन्तु न माना[1] सर-पाली पर।
आ बैठे धर ध्यान-ध्यान, इनको०॥१॥
तीनों कृषक खेत में आए, जो सुत मात-पिता कहलाए।
हर्षित मन असमान-मन, इनको०॥२॥
भरने नीर चौधरण आई, पूछा अरे कौन हो भाई ?
(देव) हैं हम सिद्ध सुजान-जान, इनको० ॥३॥

तर्ज—म्हारी रससेलड़ी

वरदान मांग ले ! जो भी मांगेगी देंगे प्रेम से ॥ध्रुवपद॥
कहा जाटनी ने सिद्धों से, रूप दीजिए साईं !
कहा तथास्तु ! बन गई रंभा, तुरत खेत में आई जी, वर०॥१॥
देवी जान जाट बेचारा, मां! मां ! मुख से बोला।
हूं नंदू की मां यों कहकर, भेद सकल ही खोलाजी, वर०॥२॥
बात सुनी पति लाल हो गया, सर-पाली पर आया।
कर दो ! मेरी स्त्री को गदही, यों मूरख चिल्लाया जी, वर०॥३॥

तर्ज—म्हारो घणा मोल रो माणकियो

दे दिया देवों ने वरदान, बेचारी गदही बन गई रे ॥ध्रुवपद॥
इधर-उधर फिर रही खेत में, करती मुख बुंबाट।
लेकर लठिया पीट रहा है, गुस्से होकर जाट।
विकट संकट में पड़ गई रे, दे दिया० ॥१॥
दशा देख यह नंदू पहुंचा, उन सिद्धों के पास।
मुझे भी क्या वरदान मिलेगा ? पूछ रहा धर आश।
शीघ्र ही स्वीकृति मिल गई रे, दे दिया० ॥२॥

---

१. चन्द्रचूड़ देव।

तर्ज—सुना दे-३ किसना !

वना दो ! वना दो ! बना दो महाराज !
इस गदही को मेरी मां, वना दो महाराज ! ॥ध्रुवपद॥
कैसे गुजरान चलेगा, रोटी अव कौन करेगा-२।
दयादृष्टि धर संकट को मिटा दो महाराज ! इस०॥१॥
सारा ही वर भर पाया, खींचो अव अपनी माया-२।
जैसे थे वैसा ही रूप वना दो महाराज ! इस०॥२॥

तर्ज—राधेश्याम

मूल रूप कर दी है फौरन, अथ हंसकर बोला मणिचूड़।
देख ! भाग्य के विना इन्हें तू, दे न सका दो मुट्ठी धूड़ ॥
अव चल भाग्यवान वतलाऊं, वस ! नगरी में आए हैं।
देते हैं वरदान सिद्ध हैं, ऐस शब्द सुनाए हैं ॥१॥

तर्ज—धर्म पर डट जाना

शहर में चिल्लाता, फिर रहा अंधा एक।
गरीवी दिखलाता, फिर रहा अंधा एक ॥ध्रुवपद॥
सिद्ध पुरुषों की सुन आवाज, तुरत आ वोला अहो महाराज !
तुम्हीं मेरे त्राता, फिर०॥१॥
दया कर दो मुझको वरदान, तुम्हारा मानूंगा अहसान।
झूठ मैं नहिं गाता, फिर०॥२॥

तर्ज—दुनिया में वावा !

(मणिचूड़) दे दे रे भैया ! दे दे तू वरदान प्यारा ॥ध्रुवपद॥
भाग्यवान है यह अंधा नर, मांगेगा अति जोरदार वर।
अद्भुत देख नजारा, दे दे रे भैया ! ॥१॥
(चंद्रचूड़) अरे अंध! तू मांग-मांग वर,
एक वचन हम देंगे सुखकार।
अथ अंधे ने सुविचारा, दे दे रे भैया ! ॥२॥
धन मांगू तो आंख नहीं है, आंख मिले तो वात वही है।
नहिं दुख से छुटकारा, दे दे भैया ! ॥३॥

तर्ज—जीवन पल-पल मां जाय रे

अंधा करके विचार रे, बोला होकर तैयार,
मुझे इतना-सा केवल दीजिए-२ ! ॥ध्रुवपद॥
खाते पकवान खुशियां अपार में,
देखूं पोते को सोने के थाल में।
इच्छा मन में यही, ज्यादा चाहता नहीं, मुझे०॥१॥
चौंका शशिचूड़ मन में अपार है,
माना किस्मत का भारी चमत्कार है।
खोली आंखें उदार, भरे धन से भंडार, मुझे० ॥२॥
शादी होकर के लड़का भी पा गया,
आखिर पोता भी हाथों में आ गया।
सुरयुग पहुंचे हैं स्थान, करते किस्मत का गान, मुझे०॥४॥

तर्ज—राधेश्याम

तत्त्व विचारो भव्यजनों! अब विना भाग्य के कुछ भी नहीं।
तृष्णा में बन व्यग्र व्यर्थ की दौड़-धूप में कुछ भी नहीं॥
दो हजार पांच संवत, सितचैत्र पंचमी गुरु-कृपया।
'वणा' ग्राम में आनंदित मन 'धन मुनि' ने यह ज्ञान दिया॥१॥

मणि अठहत्तरवां — वैरानुबंधि पुत्र

ठाकुर ने ब्राह्मण का ऊंट एवं गहने कपड़े लूटकर उसे मार दिया। उसने बेटा बनकर अपना वैर लिया—यह घटना थली के रतनादेसर गांव में एक प्रमुख व्यक्ति ने आचार्यश्री तुलसी के सामने सुनाई थी। उसने गंगा-रिसाले के सिपाही (जिसके सामने उक्त घटना घटी थी) से सुनी थी। घटना आश्चर्यजनक एवं नास्तिक को आस्तिक बनाने वाली है।

तर्ज—मेरी नगरियां कभी आ जाना साधु !

वैर का बदला चुकाना पड़ेगा,
हां ! रो रो के पल्ला छुड़ाना पड़ेगा ।।ध्रुवपद।।
रिश्वत बिल्कुल भी न चलेगी,
कायदे से केस निपटाना पड़ेगा, वैर०।।१।।
हक पराया अगर हरोगे,
(तो) हक अपना भी हराना पड़ेगा, वैर०।।२।।
वैरी बदला लेके रहेगा,
होके हैरान पछताना पड़ेगा, वैर०।।३।।
घटना अद्‌भुत एक सुनो ! पर,
सुन करके दिल सुलझाना पड़ेगा, वैर०।।४।।

तर्ज—गाये जा गीत मिलन के

छोटा सा एक ग्राम, था कूदसु[1] नाम, बात एक दिन की है ।।ध्रुवपद।।
ठाकुर गणपतिसिंह जी का लड़का, मरने को हो रहा त्यार।
सन्निपात में बक वह रहा था, पैर रहा था पछाड़।
पकड़े बैठे थे, लोक, मिले वहां थोक, बात० ।।१।।

---

१. नागौर जिले में।

मिलने को एक द्विज आया अचानक, बैठा है आकर पास[1]
लड़का निहार रहा ब्राह्मण को गौर से, था मन परमोल्लास।
थोड़ी देर निहार, बोला धर प्यार, बात० ॥२॥

तर्ज—रखियां बंधाओ भैया !

काकाजी ! आज यहां तुम, कैसे पधारे हो ?
कैसे पधारे हो ? क्यों दुखियारे हो ? ॥ध्रुवपद॥
बेटा ! तुम्हारे तन, सख्त बीमार सुन।
मिलने को आया हूं तुम, प्राण पियारे हो, काकाजी० ॥१॥
है न बीमारी तिल, मार रहे सब मिल।
छुड़वा दो इनसे तुम ही, एक सहारे हो, काकाजी० ॥२॥

तर्ज—किस फिक्र में बैठे हो ?

ब्राह्मण के कहने से, सब ही ने छोड़ दिया।
उठकर उस लड़के ने, फौरन जलपान किया ॥ध्रुवपद॥
विस्मय सब धरने लगे, मिल बातें करने लगे।
बिच ही में लड़के ने ब्राह्मण से पूछ लिया, ब्राह्मण० ॥१॥
काला यह ऊंट अहो ! किसका है बात कहो !
बस ! ठाकुर साहब का, सुनते ही हिला हिया, ब्राह्मण० ॥२॥

तर्ज—राधेश्याम

द्विज ने पूछा ठाकुर साहब ! काला ऊंट वही है यह।
जिसे छिपाकर रखते थे तुम, शायद बात सही है यह।
गुस्से होकर गणपति बोले, द्विजवर! तजो निकम्मी बात।
लड़का बोला है न निकम्मी, सुन लो! अब सच्चा अवदात ॥१॥

तर्ज—हीरा मिसरी का

ऊंट यह मेरा है, जो लिया जान से मार ॥ध्रुवपद॥
पूर्व जन्म में मैं था ब्राह्मण, स्त्री को लेने गया मुदित मन[2]।
हो इस पर असवार, ऊंट० ॥१॥

---

१. गंगा रिसाले का सिपाही भी उस ब्राह्मण के साथ था।
२. सुनारी गांव में।

लेकिन शादी नयी हुई थी, मुकलावे में कुछ देरी थी।
मुड़ा तुरत धर प्यार, ऊंट० ॥२॥
ठाकुर ये करते थे धाड़ा, पता लग गया इनको सारा।
निकले हो हुशियार, ऊंट० ॥३॥

तर्ज—रहमत के बादल छाये

छिप बैठे थे पन्थ में, अवलोक मुझे झट आये ॥ध्रुवपद॥
बोले ठहर-ठहर रे ब्राह्मण! मारूंगा कर ले प्रभु सुमिरण।
मैंने काफी समझाये, छिप० ॥१॥
द्विजहत्या का महापाप है, राजपूत महाराज! आप हैं।
मत ऐसा कर्म कमायें, छिप० ॥२॥
जेवर ले लें! कपड़ा ले लें! फिर चाहें तो ऊंट भी ले लें!
(पर) प्राणदान बकसायें, छिप० ॥३॥

थी सोनारी, ठाकुर को जाकर सुलगाया था।
यों कहकर जल पी, पर भव में किया विहारा रे,' इस० ॥१॥
इस घटना को, देख लोक सब विस्मय पाये हैं।
नास्तिकता त्यागी है, आस्तिकता में आये हैं।
विज्ञजनों ने इस वर्णन को ऐसे ढारा रे, इस० ॥२॥

तर्ज—राधेश्याम

वैर किसी के साथ कभी तुम, किसी तरह से मत करना !
जितना भी भर सकते हो, तुम मित्र भाव दिल में भरना।
दो हजार पांच शुभ संवत, चैतवदी छठ सुगुरु-महर।
ग्राम वणा सौराष्ट्र देश में, लेता 'धनमुनि' ज्ञान लहर ॥१॥

मणि उनासीवां — जिनदास का घोड़ा

ढोंगी श्रावक ने रात भर भारी दौड़-धूप की, फिर भी घोड़े का अपहरण नहीं कर सका। घोड़े की तरह यदि मन को भी तीन स्थान (ज्ञान, दर्शन, चरित्र) में घूमने का अभ्यासी बना लो! तो फिर कामादि तस्करों का बल नहीं चलेगा।

तर्ज—म्हारी रससेलड़ी

मन को समझा के, घोड़ा बना लो! जिनदास का ॥ध्रुवपद॥

था चम्पा नगरी के अन्दर, शत्रुदमन महाराज।
श्रावक था जिनदास धर्मप्रिय, श्रावक कुल-सिरताज जी,
मन को० ॥१॥

शुभ लक्षण वाला इक घोड़ा, था राजा के पास।
करता था जिसकी रखवाली, दृढ़ श्रावक जिनदास जी,
मन को० ॥२॥

तर्ज—दुनिया में बाबा!

चढ़कर घोड़े पर, फिरने हमेशा सेठ जाता ॥ध्रुवपद॥

घर से मुनि के स्थान सिधाता, कर मुनिदर्शन सर पर जाता।
हवा वहां पर खाता, चढ़कर० ॥१॥

वापस मुनिस्थान में आकर, करता सामायिक दृढ़ता धर।
प्रवचन सुन सुख पाता, चढ़कर० ॥२॥

फिर घर आकर धंधा करता, कार्यक्रम ऐसे नित चलता।
(इत) अरि नृप इक दिन गाता, चढ़कर० ॥३॥

तर्ज—रहमत के बादल छाये

दुश्मन का राज्य क्यों? बढ़ता ही प्रतिदिन जाता ॥ध्रुवपद॥

कहा किसी ने है हुसियारी, कहा किसी ने है दल भारी।
अरि उस ही से जय पाता, दुश्मन०॥१॥
कहा ज्योतिषी ने है घोड़ा, जिसका मिल सकता नहिं जोड़ा।
है वही वृद्धि का दाता, दुश्मन०॥२॥
घोड़ा अगर यहां आ जाये, तो हम भी विजयी बन जाएं।
मेरा ज्योतिष यों बतलाता, दुश्मन० ॥३॥
बोला नृप जो घोड़ा लाए, वह दिलचाही दौलत पाये।
सुन मंत्री मोद मनाता, दुश्मन० ॥४॥

तर्ज—रखियां बंधाओ भइया !

बनकर कपट का श्रावक, सचिव सिधाया रे।
सचिव सिधाया से, जाल बिछाया रे ॥ध्रुवपद॥
श्रेष्ठी के मंदिर, पहुंचा है धृतिधर।
बन्धु स्वधर्मी जाना, मान बढ़ाया रे, बन० ॥१॥
पय का प्याला भर, तुरत किया हाजिर।
वर्षों से दूध न पीता, रस छिटकाया रे, बन० ॥२॥
करता हूं व्यासन, रसवर्जित भोजन।
आसन लगाया फौरन, भोजन आया रे, बन० ॥३॥

तर्ज—तन नहीं छूता कोई

आज तिथि के रोज भी क्या, आप सब्जी खा रहे[1] !
जानकर जिन धर्म को, क्यों अमल में नहिं ला रहे ॥ध्रुवपद॥
यों तड़क कर शीघ्र नीले-शाक बाहर रख दिए।
ढोंग करके बाद में, कुछ ग्रास ढोंगी ने लिए, आज० ॥१॥
सांझ को करके सामायिक, शुद्ध[2] पडिक्कमणा किया।
बाद में तल्लीन बनकर, स्तवन जिनवर के कहे, आज० ॥२॥
धर्म चर्चा में जुड़ा फिर, भान तन का भूलकर।
देख इसकी धर्मप्रियता, सभी विस्मय पा रहे, आज० ॥३॥

---

१. पंचमी की तिथि थी।
२. उच्चारण की दृष्टि से।

तर्ज—मेरा रंग दे तिरंगी चोला

ढोंगी को समझ न पाये, जिनदास ठगी में आए ॥ध्रुवपद॥
करके आग्रह रोक लिया है, खुश हो कपटी ठहर गया है।
फिर धार्मिक विषय चलाये, जिनदास० ॥१॥
था स्वजनों में व्याह सुहाना, चाहता था जिनदास सिधाना।
पर अश्व किसे संभलाये, जिनदास० ॥२॥
श्रावक को विश्वासी जाना, सौंपा घोड़ा हुए रवाना।
बिल्ली के बने मनचाहे, जिनदास० ॥३॥

तर्ज—आजा-३ मेरे

करके-करके, करके सवारी दुष्ट ने, फिर चाबुक लगाया।
घोड़ा तुरत ही दौड़कर के, मुनि-स्थान आया ॥ध्रुवपद॥
मारा है फिर चाबुक, रुका सर-पाल पर जाकर-२।
आगे चलाया तब मुड़ा, झट घर-तर्फ धाया, घोड़ा० ॥१॥
ऐसे बिना गिनती, लगाए रात को चक्कर-२।
आगे न सर से किन्तु हय ने, कदम उठाया, घोड़ा० ॥२॥
था तीन स्थानों का, सिर्फ वह अश्व अभ्यासी-२।
मन की रही मन में, न दंभी कर कुछ भी पाया, घोड़ा० ॥३॥
हैरान हो करके, सुबह के वक्त में आखिर-२।
लेकर के अपना मुंह, पापी श्रावक पलाया, घोड़ा० ॥४॥

तर्ज—म्हारा सतगुरु करत विहार

निकला इधर सूर्य श्रेष्ठी भी, अपने मन्दिर आए हैं ॥ध्रुवपद॥
लेकिन श्रावक नजर न आया, जा घोड़ा संभाला।
रूं-रूं से प्रस्वेद चल रहा, खड़ा उदास निहाला, करके० ॥१॥
लगे पड़ोसी लोग पूछने, इधर सेठ से आकर।
रात समय क्या करते थे तुम, घोड़े को दौड़ाकर, करके० ॥२॥
समझा सेठ धूर्त आया था, कोई अश्व चुराने।
लेकिन दृढ़ अभ्यासी[1] हय को, न सका वह ले जाने, करके० ॥३॥

---

१. तीन स्थानों का।

तर्ज—राधेश्याम

चेतन है जिनदास-तुल्य, इस मन को समझो अश्व समान
तीन स्थान सम दर्शन-ज्ञान-चरण पहचानो! सुन गुरुज्ञान ॥१॥
इन तीनों ही के अन्दर, करवाओ फिरने का अभ्यास।
फिर कामादिक चोरों का दल, कर न सकेगा इसका ह्रास ॥२॥
दो हजार पांच संवत, सित चैत्र सप्तमी मंगलवार।
सद्गुरु-कृपया 'वणा' ग्राम में 'धन मुनि' करता धर्म प्रचार ॥३॥

मणि अस्सीवां बोले ही क्यों ?

राजा की मोह-अनुकम्पा करके योगी ने पुत्र होने का वरदान दे दिया। फिर अपनी तपस्या को वेचकर राजपुत्र बना एवं काफी अर्से तक मौनी बनकर रहा। इस वर्णन से साधुओं को शिक्षा मिलती है कि वे संसार की मोह-माया में न पड़ें।

तर्ज—मेरा दिल तोड़ने वाले

जगत की मोह-माया में, साधुओं को नहीं पड़ना।
सदा सद्ध्यान में रहना, महाव्रत मौन का धरना ।।ध्रुवपद।।

जगत के जीव मायावी, बिछाकर जाल माया का।
भक्ति अद्भुत दिखाते हैं, किन्तु उनसे सदा डरना, जगत० ।।१।।

कई कहते हैं पैसे दो ! कई कहते हैं वेटा दो !
किन्तु ऐसे प्रसंगों में, न अक्षर एक उच्चरना, जगत० ।।२।।

बोल जाते हैं ऋषि जो भी, पतित होते हैं संयम से।
हेतु योगीन्द्र का सुनकर, जरा-सा गौर फिर करना! जगत० ।।३।।

तर्ज—तन नहीं छूता कोई

तरसता था एक नृप, सुत के विना आठों प्रहर।
यन्त्र-मन्त्र करा लिए, लड़का नहीं पाया मगर ।।ध्रुवपद।।

पुत्र के दुख से दुखी वन, एक दिन वन में गया।
पहाड़ी पर झोंपड़ी, महाराज के आयी नजर, तरसता० ।।१।।

ध्यान में था लीन ऋषि, पंचाग्नि साधन कर रहा।
कर नमन कर जोड़ वैठा, भूप ऋषि की आश धर, तरसता० ।।२।।

ध्यान घंटा तीन करके, वाद उस योगीन्द्र ने।
प्रश्न पूछा वोल वच्चा ! कर रहा काहे फिकर ? तरसता० ।।३।।

तर्ज—किस फिक्र में बैठे हो ?

प्रभु! पुत्र नहीं पीछे, निशि-वासर झूर रहा ।
पल भी नहीं चैन मुझे, दुखवासर पूर रहा ।।ध्रुवपद।।
अहो ! अमित उपाय किये, लेकिन सब व्यर्थ गए ।
अब तेरी शरन ली है, नृप ने यों स्पष्ट कहा, प्रभु! ।।१।।
दिलगीरी नरवर की, लख करके ऋषिवर की ।
कुछ पिघल गयी वृत्ति, आशीर्वच तुरत दिया, प्रभु ! ।।२।।
जा बेटा ! तेरे घर, होगा सुत पुण्य प्रवर ।
जय-जय करता राजा, खुश हो घर लौट गया, प्रभु ! ।।३।।

तर्ज—अफसाना लिख रही हूं

योगी पछता रहा है, हा! हा ! क्या कर लिया ।
फंस करके मायाजाल में, मुख से क्या कह दिया ।।ध्रुवपद।।
क्या है जरूरत ऋषियों को, दुनियावी झगड़ों से-२ ।
बन ज्ञानी इस दुनिया का, जब त्याग कर दिया, फंस० ।।१।।
अब क्या करूं ? कैसे करूं ? लड़का यदि नहीं होगा-२ ।
वाणी मेरी व्यर्थ गयी, यों हिल रहा हिया, फंस० ।।२।।
फल हो यदि मेरे तप का, नृप-पुत्र मैं बनूं-२ ।
यों बेच तपस्या अपनी, योगी वह मर गया, फंस० ।।३।।

तर्ज—राणा जी आया बाव सूं

राजा के घर में पुत्र बन आया,
सारी ही नगरी में मंगल छाया ।।ध्रुवपद।।
एक वर्ष का पुत्र हुआ,
नृप योगी की कुटिया में उसको लाया, राजा० ।।१।।
लेकिन योगी नजर न आया,
केवल लकड़ी-छानों का ढिग पाया, राजा० ।।२।।
बाबा की धूणी के अन्दर,
राजपुत्र को राजा ने लेटाया, राजा० ।।३।।
राख लगी बच्चे को परिचित,
जातिस्मरण हुआ दिल दुख न समाया, राज० ।।४।।

सोच रहा है व्यर्थ बोलकर,
हा ! हा! मैंने अद्भुत योग गंवाया, राजा० ॥५॥
अब इस भव में नहिं बोलूंगा,
बस बालक ने ऐसा प्रण अपनाया, राजा० ॥६॥

तर्ज—रघुपति राघव राजा राम

हारा राजा कर उपचार, किन्तु न बोला राजकुमार ॥ध्रुवपद॥
आये वैद्य-हकीम अनेक, पर न उपाय लगा है एक ।
रहा पुत्र तो चुप्पी मार, हारा० ॥१॥
एक दिन हो घोड़े असवार, जा रहा करने सैर उदार ।
नौकर थे पीछे दो-चार, हारा० ॥२॥
बोला खग[1] दक्षिण की ओर, भृत्यों ने तत्क्षण कर दौड़ ।
मार दिया[2] न लगाई वार, हारा० ॥३॥

तर्ज—रखिया बंधाओ भैया !

बोले ही क्यों ? यों हंसकर, कुंवर ने गाया रे ।
कुंवर ने गाया रे, विस्मय छाया रे ॥ध्रुवपद॥
दौड़े हैं किंकर, आये जहां नरवर ।
किस्सा सुनाया नृप ने, सुत को बुलाया रे, बोले० ॥१॥
रे कुल आनन्दन ! बोल जरा नन्दन !
तू ही है मेरा जीवन, क्यों रीसाया रे ? बोले० ॥२॥
लेकिन नहिं बोला, मौन नहीं खोला ।
झूठे समझ भृत्यों को, झट पिटवाया रे, बोले० ॥३॥

तर्ज—श्री महावीर प्रभु के चरणों में

ज्यों ही मार लगी है पड़ने, नौकर-गण चिल्लाया है ।
बोले ही क्यों ? फिर शिशु ने गाया है ॥ध्रुवपद॥
समझा है नरवर, सुत मूक नहिं है तिल भर ।
कारण वश मौन रहा धर,
समझाकर ज्यों-त्यों मौन खुलाया है, ज्योंही० ॥१॥

---
१. तीतर ।
२. अपशकुन मानकर ।

सब हाल सुनाया, मैंने निज योग गंवाया¹।
अतएव मौन अपनाया।
सुन दर्शक जन-मन इचरज पाया है, ज्योंही० ॥२॥

तर्ज—राधेश्याम

इस वर्णन का तत्त्व समझकर, मुनियों को संयम धरना।
भूलचूक कर भी दुनियावी-झगड़ों में न कभी पड़ना।
दो हजार पांच संवत, सित चैत्र अष्टमी दिन पहचान।
सद्गुरु-कृपया 'चणा' ग्राम में 'धनमुनि' करता मंगल गान ॥१॥

---

¹ बोलकर।

मणि इकासीवां — अविश्वासी भक्त

चक्रेश्वरी देवी ने ब्राह्मण को पांच रत्न देकर विश्वास रखने के लिए कहा। लेकिन लोगों की बातों में पड़कर मूर्ख ब्रह्मा-विष्णु आदि को लाया। आखिर रत्न चोरे जाने पर रोया। इसी प्रकार गुरु के अविश्वासी सम्यक्त्व-व्रत को खोकर ब्राह्मणवत् रोते हैं।

तर्ज—नरम बनो जी नरम बनो !

बन जाओ जी, बन जाओ! दृढ़ विश्वासी बन जाओ !
बन जाओ जी बन जाओ ! दृढ़ धर्मी तुम बन जाओ ।।ध्रुवपद।।
गंगाजी में गंगादास, जमुनाजी में जमुनादास ।
ऐसे भक्त न कहलाओ ! दृढ़० ।।१।।
अस्थिर मन वाले नर-नार, कभी न पा सकते भवपार।
सुन वर्णन मन समझाओ ! दृढ़० ।।२।।

तर्ज—रावन सुनो सुमति हिय धार

घर से निकल गया परदेश, ब्राह्मण एक गरीब बेचारा ।।ध्रुवपद।।
आया धनपुर शहर, जहां पर कर रही लक्ष्मी लहर।
कहा श्रीमंतों से कर महर, मुझे भी दो कुछ! चले गुजारा, घर०।।१।।
चक्रेश्वरी' अभिधान, देवी है यहां गुण की खान।
बैठ जा! मंदिर में धर ध्यान, दुःख से कर देगी छुटकारा, घर० ।।२।।

तर्ज—अय बाबुजी !

ध्यान ब्राह्मण ने जाकर लगाया रे, उसी वक्त में।
ताप के हेतु आसन जमाया रे, उसी वक्त में ।।ध्रुवपद।।
प्रगटी है देवी रतन पांच लेकर,
हो तुष्ट ब्राह्मण के हाथों में देकर।

ने सलाह दी।

ऐसा आदेश फौरन सुनाया रे, उसी वक्त में, ध्यान० ॥१॥
अरे विप्र ! मेरा सदा ध्यान धरना ।
मेरे विषय में तू शंका न करना !
मान कर विप्र घर को सिधाया रे, उसी वक्त में, ध्यान० ॥२॥
खोदा गृहांगण तुरत गांव आकर,
रक्खे हैं वे रत्न अंदर छिपाकर ।
भेद इसका किसी ने पाया रे, उसी वक्त में, ध्यान० ॥३॥

तर्ज—बोल मेरे प्यारे !

धरता है देवी का ध्यान-२,
ध्यान अब ब्राह्मण, धरता है देवी का ध्यान ॥ध्रुवपद॥
मिट्टी की मंजुल प्रतिमा बनाकर,
आले में रक्खी सुजान-जान, अब० ॥१॥
करता है धूप-दीप दोनों ही टाइम,
गाता है खूब गुणगान-गान, अब० ॥२॥
होती थी बातें एक दिन बाजार में,
ब्रह्मा के गुण असमान-मान, अब० ॥३॥
करते जो सेवा वे तो पलक में,
बनते बड़े धनवान-वान, अब० ॥४॥

तर्ज—रहमत के बादल

ब्रह्मा के बखान सुन, ब्राह्मण का मन ललचाया ।
ब्रह्मा के बखान सुन, ब्रह्मा को घर में लाया ॥ध्रुवपद॥
देवी को आगे सरकाया, ब्रह्मा को विधियुत पधराया ।
सेवा में चित्त लगाया, ब्रह्मा० ॥१॥
फिर एक दिन जन-शब्द सुने हैं, अब ब्रह्मा तो शिथिल बने हैं ।
जग सुयश विष्णु का छाया, ब्रह्मा० ॥२॥
मूर्ति विष्णु की ब्राह्मण लाया, कर रहा पूजा हर्ष सवाया ।
ब्रह्मा से प्रेम हटाया, ब्रह्मा० ॥३॥

विष्णु स्तुति—प्रमाणिका वृत्तानि

भजे व्रजैक मण्डनं, समस्त पाप खंडनम् ।
स्वभक्त चित्त रंजनं, सदैव नन्दनन्दनम् ।।१।।
सुपिच्छ-गुच्छ मस्तकं, सुनाद वेणुहस्तकम् ।
अनंगरंग-सागरं, नमामि कृष्ण नागरम् ।।२।।
कदम्व सून कुण्डलं, सुचारुगण्डमण्डलम् ।
व्रजाङ्गनैकवल्लभं, नमामि कृष्ण दुर्लभम् ।।३।।
गुणाकरं सुखाकरं, कृपाकरं कृपानरम् ।
त्वरं सुखैकदायकं, नमामि कृष्ण नायकम् ।।४।।
समस्त दोष शोषणं, समस्त लोक तोषणम् ।
समस्त दास मानसं, नमामि कृष्ण लालसम् ।।५।।

तर्ज—तुमको लाखों प्रणाम

महादेव भजो ! अरे सज्जनों प्यारे ![1] ।।ध्रुवपद।।
और देव झूठे हैं सारे, सच्चे शंकर जग रखवारे ।
भवजल तारन हारे, महादेव० ।।१।।
ब्राह्मण ने केशव छिटकाये, महादेवजी घर में आये ।
फिर गौरी-गजानन धारे, महादेव० ।।२।।

महादेव-स्तुति : तर्ज—मैं वन की चिड़िया

ॐ हर-हर शिव-शिव-शंकर, वंबंभोला रे !
जो ध्यावे भव तर जावे, शिव वंभोला रे ।।ध्रुवपद।।
त्रैलोक्यपति त्रिपुरारी, महादेव की महिमा भारी ।
शिव गौरी संग, सिर सोहे गंग, नित पीवत भंग का गोला,
शिव० ।।१।।
शिवभक्त भये रघुराई, जग को शिवभक्ति सिखाई ।
शिव सुख की खान, धरो ॐ का ध्यान, शिव कर दे निर्मल चोला,
शिव० ।।२।।

---

१. एक दिन लोग वात कर रहे थे ।

पार्वती-स्तुति

अयि गिरिनंदिनि! नंदित मेदिनी! विश्व विनोदिनि! नंदिनुते!
गिरिवर विन्ध्यशिरोधिनिवासिनि! विष्णु विलासिनि! विष्णुनुते!
भगवति! हे शिति कण्ठ कुटुंबिनि! भूरि कुटुंबिनि! भूरि कृते!
जय-जय! हे महिषासुरमर्दिनि! रम्य कपर्दिनि! शैलसुते! ॥१॥
अयि जगदम्बक! दमनदयिते! वासनिवास निवास रते!
शिखर शिरोमणि तुण्ड हिमालय-शृंग निजालयमध्यगते!
मधु मधुरे मधुरे मधुरे! मधु-कैटभ भंजिनि! वासरते!
जय-जय! हे महिषासुर मर्दिनि! रम्यकपर्दिनि! शैल सुते! ॥२॥

तर्ज—तुमको लाखों प्रणाम

सीताराम तदनु रीझाये, पवनपुत्र के गाने गाये।
फिर भैरव स्वीकारे, महादेव भजो ॥१॥

हनुमान स्तुति : इंदव छंद

बाल समय रवि भक्ष लियो, तब तीनहि लोक भयो अंधियारो।
ताहि सों त्रास भई जग कूं, यह संकट काहु सों जात न टारो॥
देवन आन करी विनती, तब छोड़ दियो रवि संकट टारो।
को नहिं जानत है जग में, कपि! संकट मोचन नाम तिहारो॥१॥
बन्धु समेत जबै अहिरावन, ले रघुनाथ पताल सिधारो।
देवी ही पूजी भली विधि सों, बलि देहों सभी मिल मंत्र उचारो॥
जाय सहाय भये तबही, अहिरावन सेन समेत संहारो।
को नहिं जानत है जग में, कपि संकट मोचन नाम तिहारो॥२॥

तर्ज—बना मन मंदिर आलीशान

गया ब्राह्मण इक दिन गाम, कर दिया चोरों ने इतकाम॥ध्रुवपद॥
पांचों रत्न ले गये भारी, बिगड़ी द्विज की बाजी सारी।
किये देवी के गुणग्राम, कर० ॥१॥
अयि चक्रेश्वरी! महर नजर धर, चोर ले गये रत्न मनोहर।
मैं रंक हुआ बे दाम, कर० ॥२॥

तर्ज—हीरा मिसरी का

कहा है देवी ने, जा ब्रह्मा के द्वार ! कहा है ।।ध्रुवपद।।
रत्न दिए थे मैंने तुझको, फिर भी छोड़ा तू ने मुझको ।
कर ब्रह्मा से प्यार, कहा है० ।।१।।
मुझे न मतलव है अव तिल भर, रोया द्विज ब्रह्मा को नम कर ।
दी उसने फिटकार, कहा है० ।।२।।

तर्ज—अलवेला छैला

मुझको न पता है, चुपके यहां से चला जा ! ।।ध्रुवपद।।
निकट विष्णु के रोता आया, उसने भी धमकाया ।
सुनी-अनसुनी की शंकर ने, फिर चंडी-गुण गाया, मुझको० ।।१।।
चंडी ने भी आंख दिखाई, पहुंचा जहां गणेश ।
भैरव जी से विप्र मिला है, आखिर दुःख विशेष रे, मुझको० ।।२।।
वोला भैरव निकल यहां से, कर दूंगा संहार ।
पहले क्यों नहिं आया, आया अव सव पै झख मार रे, मुझको० ।।३।।

तर्ज—राधेश्याम

दिया सभी ने रूखा उत्तर, ब्राह्मण मन पछताया है ।
खींच कथा का सार सुज्ञ लोगों ने यों समझाया है ।।१।।
समकित-व्रतमय रत्न अमोलक, जो सद्गुरुओं से पाकर ।
नहिं रखते इकतारी वे नर, ब्राह्मण सम रोते आखिर ।।२।।
दो हजार पांच शुभ संवत, रामजयन्ती दिन सुखकार ।
सद्गुरु-कृपया गाम 'वणा' में 'धन मुनि' करता धर्मप्रचार ।।३।।

पार्वती-स्तुति

अयि गिरिनंदिनि! नंदित मेदिनी! विश्व विनोदिनि! नंदिनुते !
गिरिवर विन्ध्यशिरोधिनिवासिनि! विष्णु विलासिनि! विष्णुनुते!
भगवति! हे सनि! कण्ठ कुटुम्बिनि! भूरि कुटुंबिनि! भूरि कृते!
जय-जय! हे महिषासुरमर्दिनि! रम्य कपर्दिनि! शैलसुते ! ॥१॥
अयि जगदम्बक ! दंभनदयिते ! वासनिवास निवास रते !
शिखर शिरोमणि तुण्ड हिमालय-शृंग निजालयमध्यगते !
मधु मधुरे मधुरे मधुरे ! मधु-कैटभ भंजिनि ! वासरते !
जय-जय! हे महिषासुर मर्दिनि ! रम्यकपर्दिनि! शैल सुते! ॥२॥

तर्ज—तुमको लाखों प्रणाम

सीताराम तदनु रीझाये, पवनपुत्र के गाने गाये ।
फिर भैरव स्वीकारे, महादेव भजो ॥१॥

हनुमान स्तुति : इंदव छद

बाल समय रवि भक्ष लियो, तब तीनहि लोक भयो अंधियारो ।
ताहि सों त्रास भई जग कूं, यह संकट काहु सों जात न टारो ॥
देवन आन करी विनती, तब छोड़ दियो रवि संकट टारो ।
को नहिं जानत है जग में, कपि! संकट मोचन नाम तिहारो ॥१॥
बन्धु समेत जबै अहिरावन, ले रघुनाथ पताल सिधारो ।
देवी ही पूजी भली विधि सों, बलि देहों सभी मिल मंत्र उचारो ॥
जाय सहाय भये तबही, अहिरावन सेन समेत संहारो ।
को नहिं जानत है जग में, कपि संकट मोचन नाम तिहारो ॥२॥

तर्ज—बना मन मंदिर आलीशान

गया ब्राह्मण इक दिन गाम, कर दिया चोरों ने इतकाम ॥ध्रुवपद॥
पांचों रत्न ले गये भारी, बिगड़ी द्विज की बाजी सारी ।
किये देवी के गुणग्राम, कर० ॥१॥
अयि चक्रेश्वरी! महर नजर धर, चोर ले गये रत्न मनोहर ।
मैं रंक हुआ बे दाम, कर० ॥२॥

तर्ज—हीरा मिसरी का

कहा है देवी ने, जा ब्रह्मा के द्वार ! कहा है ।।ध्रुवपद।।
रत्न दिए थे मैंने तुझको, फिर भी छोड़ा तू ने मुझको ।
कर ब्रह्मा से प्यार, कहा है० ।।१।।
मुझे न मतलब है अब तिल भर, रोया द्विज ब्रह्मा को नम कर ।
दी उसने फिटकार, कहा है० ।।२।।

तर्ज—अलबेला छैला

मुझको न पता है, चुपके यहां से चला जा ! ।।ध्रुवपद।।
निकट विष्णु के रोता आया, उसने भी धमकाया ।
सुनी-अनसुनी की शंकर ने, फिर चंडी-गुण गाया, मुझको० ।।१।।
चंडी ने भी आंख दिखाई, पहुंचा जहां गणेश ।
भैरव जी से विप्र मिला है, आखिर दु:ख विशेष रे, मुझको० ।।२।।
बोला भैरव निकल यहां से, कर दूंगा संहार ।
पहले क्यों नहिं आया, आया अब सब पै झख मार रे, मुझको० ।।३।।

तर्ज—राधेश्याम

दिया सभी ने रूखा उत्तर, ब्राह्मण मन पछताया है ।
खींच कथा का सार सुज्ञ लोगों ने यों समझाया है ।।१।।
समकित-व्रतमय रत्न अमोलक, जो सद्गुरुओं से पाकर ।
नहिं रखते इकतारी वे नर, ब्राह्मण सम रोते आखिर ।।२।।
दो हजार पांच शुभ संवत, रामजयन्ती दिन सुखकार ।
सद्गुरु-कृपया गाम 'वणा' में 'धन मुनि' करता धर्मप्रचार ।।३।।

मणि बयासीवां सद्गुरु की जरूरत

सेठ ने मरते समय चारों पुत्रों से कहा—न्याय नीति से चलना। घर में धन की कमी नहीं है। कदाच गरीबी आ जाए तो पुरानी वही खोलकर देख लेना! बाप मरा, गरीबी आयी, वही खोली, शिवशिखर तोड़ा, बदनाम हुए किंतु धन नहीं मिला। फिर सेठ के मित्र ने तत्त्व समझाया। धर्म का तत्त्व समझने के लिए भी सेठ-मित्रवत् सुगुरु की जरूरत है।

तर्ज—मेरा दिल तोड़ने वाले

धर्म का मर्म नहिं मिलता, बिना गुरुदेव के कब ही।
ज्ञान का दीप नहिं जलता, बिना गुरुदेव के कब ही ॥ध्रुवपद॥

खजाना ज्ञान का भारी, भरा है शास्त्र के अन्दर।
किन्तु ताला नहीं खुलता, बिना गुरुदेव के, कब ही० ॥१॥
प्रशंसा एक रसना से करूं गुरुदेव की कितनी।
बोधि का वृक्ष नहिं फलता, बिना गुरुदेव के, कब ही० ॥२॥

तर्ज—म्हारी छोटी-सी वैरागण नै

तुम तार सुगुरु से जोड़ो रे, शास्त्रों की सुन वानी।
तुम भ्रम का पर्दा तोड़ो रे, शास्त्रों की सुन वानी ॥ध्रुवपद॥

नगर इन्द्रपुर भारी, था सेठ बड़ा धनधारी।
सुत चार न दुःख-निशनी रे, शास्त्रों० ॥१॥
अंत समय जब आया, सारा परिवार बुलाया।
फिर दी शिक्षा सुखदानी रे, शास्त्रों० ॥२॥

तर्ज—हीरा मिसरी का

सब ही सुन लेना, मेरी शिक्षा सार।
सब ही सुन लेना, है घर में द्रव्य अपार ॥ध्रुवपद॥

शुद्ध नीति में तुम सब रहना, बुरी नीति में पग मत देना।
होगा जय-जयकार, सब० ॥१॥
यों रहते भी कदाच दौलत, चली जाये तो घबराना मत !
करना एक विचार, सब० ॥२॥
खोल देखना वही पुरानी, मिलेगी माया परम सुहानी।
इसमें फर्क न तार, सब० ॥३॥

तर्ज—तू है प्राण पियारो म्हांरो

सेठ तुरत परलोक सिधाया, करके यों फरमान-मान।
चलते चारों न्याय नीति से, धर शिक्षा पर ध्यान-ध्यान ॥ध्रुवपद॥
फिर भी विलय हुई सब माया, पुण्य कर्म ने पलटा खाया।
फिक्र हुआ असमान-मान, सेठ० ॥१॥
स्मरी सेठ की सीख सुहानी, खोल निहारी वही पुरानी।
लेख मिला सुविधान-धान, सेठ० ॥२॥

तर्ज—राधेश्याम

चैत शुक्ल दसमी के वासर, ठीक बजे दस के अनुमान।
शिवमंदिर का शिखर खोदना, वहां धरा है महानिधान ॥
धर न सके दिल धैर्य उसी दिन, लगे तोड़ने शैव शिखर।
कोलाहल मच गया शहर में, मिले हजारों नारी-नर ॥१॥

तर्ज—गाए जा गीत मिलन के

पुर के लोगों ने मिल के, काफी कह-सुन के,
तुरत घर भेजे हैं ॥ध्रुवपद॥
फिर रात के वक्त तोड़ा शिखर को, लेकिन न पाया माल।
सब हाल सुनाया श्रेष्ठी के मित्र से, कहा उसने वही को निहाल।
रहो धीरज धर के, समय अनुसर के, तुरत० ॥१॥

तर्ज—म्हारो घणा मोल रो माणकियो

धीरज धरते-धरते चैत सुदी दसमी चल आई रे।
आई-आई-आई रे, सबके मन भाई रे ॥ध्रुवपद॥
दस बजने का समय हुआ, अथ सेठ [illegible]कार।

आगे और बुलाये फौरन, पुत्र सेठ के चार।
सभी के खुशियां छाई रे, धीरज० ॥१॥
इस टाइम में शिखर कहां है, बोलो अब तुम सोच ?
समझ सके नहिं चारों भाई, रहे सभी आलोच।
सेठ ने विधि बतलाई रे, धीरज० ॥२॥

तर्ज—दुनिया में बाबा !

खोदो रे भैया ! है जहां शिखर की छाया ॥ध्रुवपद॥
बस ! सबने मिल जोर लगाया, खोदा स्थान अमित धन पाया।
दोहग दूर पलाया, खोदो० ॥१॥
मिले तुरत आ स्वजन सगे सब, सेठ मित्र के चरण लगे सब।
रूं-रूं आनन्द छाया, खोदो० ॥२॥

तर्ज—राधेश्याम

इस वर्णन का सार यही है, बिना सुगुरु के ज्ञान नहीं।
भले हजारों पढ़ी पुस्तकें, होता तात्त्विक भान नहीं ॥१॥
चार घड़ों वाला वर्णन भी, बात यही बतलाता है[1]।
सुज्ञजनों ! तुम सद्गुरु धारो ! समय अमोलक जाता है ॥२॥
दो हजार पांच शुभ संवत, वीर-जयंती हर्ष अपार।
गुरु-कृपया सौराष्ट्र देश में, 'धन मुनि' करता धर्म-प्रचार ॥३॥

---

१. सेठ ने मरते समय पुत्रों से कहा—चारों भाई प्रेम से रहना। न रह सको तो घर के चारों ओर नामांकित चार घड़े दाटे हुए हैं, उन्हें लेकर अलग हो जाना। सेठ मरा, भाइयों ने घड़े निकाले। एक में सवा लाख का धन था, दूसरे में कागजात थे, तीसरे में हड्डियां, चमड़ा एवं केश थे और चौथे में मिट्टी के कंकर आदि थे। धन वाले घड़े पर जिसका नाम था, वह तो खुश हो गया। किन्तु तीनों लड़ने लगे। सेठ के मित्र ने मर्म समझाया कि चारों घड़ों में बराबर धन है। देखो ! कागजात वाले घड़े के मालिक के हिस्से में सारी उगाही है। हड्डी वाले के भाग में सारा पशुधन है और मिट्टी वाले की पांती में सारी जमीन-जायदाद है। हिसाब लगाने पर स्पष्ट हो गया कि चारों की सम्पत्ति सवा-सवा लाख की है।

मणि तयासीवां — गोबर के खंभे

जैन मुनि का वेष पहन कर "देपाला" भोजक ने भोले श्रावकों के एक गांव में चौमासा किया। भगवती सूत्र की असज्झाई करके श्रावकों को कई उल्टे पाठ पढ़ाए। फिर विहार के समय गोबर के कुंडे मंगवाकर सारा मर्म समझाया। कथा रोचक एवं शिक्षा-प्रद है।

तर्ज—हीरा मिसरी का

ऐसे भक्तों का, कैसे हो उद्धार।
ऐसे भक्तों का, कैसे हो निस्तार ॥ध्रुवपद॥
जिनको तात्त्विक ज्ञान नहीं है, सांच-झूठ का भान नहीं है।
हैं सब एकाकार, ऐसे० ॥१॥
जो भी कहो मुख जी हां! गाते, हर कोई उनको ठग जाते।
सुनो एक अधिकार, ऐसे० ॥२॥
एक साल दुष्काल पड़ा था, फिक्र पेट का बहुत बढ़ा था।
मचा था हाहाकार, ऐसे० ॥३॥

तर्ज—किस फिक्र में बैठे हो?

एक गांव में बसता था, भोजक एक देपाला।
मर गई उसकी प्यारी, छाया दुख असराला ॥ध्रुवपद॥
उसके दो लड़के थे, झगड़े कई घर के थे।
काफी हैरान हुआ, पथ कोई न निहाला, एक० ॥१॥
बेटे और बाप सभी, कर मुनि का वेष तभी।
निकले दिल जल रही है, ठगविद्या की ज्वाला एक० ॥२॥

तर्ज—आजादी का दीवाना

छोटे से एक गांव में, चल तीनों आए हैं।
अर्ज हो गई चौमासे की, मन हुलसाये हैं ॥ध्रुवपद॥

ग्रामनिवासी श्रावक सारे, थे भोले भाले।
सुनने को व्याख्यान, मुनिजी का ललचाये हैं, छोटे० ॥१॥
सूत्र सुनोगे कौन-सा तुम, बड़ा भगवती है।
वही सुनेंगे स्वामिन्! अच्छा अवसर पाये हैं, छोटे० ॥२॥
है उसका सुमूहूर्त, चौमासे की चौदस का।
मिल-जुल के सब आना, उस दिन यों समझाये हैं, छोटे०॥३॥

तर्ज—वन जोगी मन भटकाई ना !

चौमासे की चौदस आई है, सबके मन खुशियां छाई है ॥ध्रुवपद॥
सब ग्रामनिवासी आये हैं, सुनने भगवती उमाहे हैं।
भोजक जी मन अकुलाये हैं, चिंता से मति चकराई है, चौमासे०॥१॥
अक्षर का मुझको ज्ञान नहीं, शास्त्रों का बिलकुल भान नहीं।
चौमासा करना मुझे यहीं, यों सोच कुबुद्धि चलाई है, चौमासे०॥२॥

तर्ज—हो भाभी ! तमे थोड़ा-थोड़ा थावो

हो भाई ! जरा सावधान हो के तुम रहना ! ॥ध्रुवपद॥
उच्चारण शास्त्र जी का सुनना सब ध्यान धर के,
छींक या उबासी खांसी लेना मत भूल कर के।
हंसने बिलकुल किसी को मत देना ! हो भाई ! ॥१॥
छींक या उबासी-खांसी अगर किसी को आई,
चौमासे भर रहेगी फिर उसकी असज्झायी।
मेरा फिर-फिर के तुम से यही कहना, हो भाई ! ॥२॥

तर्ज—पल-पल छिन-छिन

यों कहकर विकराल रूप से, महामंत्र उच्चारा है।
खिल-खिल करने लगा ठिकाना, आया हास्य अपारा है ॥ध्रुवपद॥
कहा क्रुद्ध हो ढोंगी मुनि ने, यहां क्या खेल निहारा है।
कितना ज्ञान दिया था फिर भी, सारा काम विगाड़ा है, यों० ॥१॥
तीनों टाइम हो न सकेगा, अब व्याख्यान पियारा है।
बतलाओ कैसे निकलेगा, वर्षाकाल हमारा है, यों० ॥२॥

तुम हो सब गोबर के खंभे, जो भी कहो हां ! हां ! करते ।
कह यों हुआ रवाना, सारे लोग रह गये कर मलते ॥२॥
सुन यह वर्णन सज्जन लोगों ! सुगुरु-कुगुरु का ज्ञान करो !
वेष देख मत भूलो भैया ! सच्चाई पर ध्यान धरो !
दो हजार पांच शुभ संवत, चैत सुदी चौदस सुखकार ।
ग्राम 'खांभड़ा' में गुरु-कृपया 'धनमुनि' मन आनन्द अपार ॥३॥

मणि चौरासीवां काचर का वैर

किसी भी काम को करते समय अनासक्त रहो ! देखो स्कंदक ऋषि के जीव ने किसान के भव में काचर को छीलकर अत्यन्त खुशी दिखलाई थी। फलस्वरूप उनकी खाल उतारी गई। वर्णन पढ़कर मनन करने लायक है।

तर्ज—रहमत के बादल

हंस-हंस के पाप तुम, क्यों बांध रहे हो भाई ! ॥ध्रुवपद॥
पाप बांधते पता न पाता, किंतु उदय होकर जब आता।
बनता है अति दुखदाई, हंस० ॥१॥
सावत्थी नगरी का राजा, कनक केतु बल-वाहन ताजा।
मलया महारानी गाई, हंस०॥२॥
स्कंदक पुत्र सुनंदा प्यारी, थी पुत्री मन मोहन गारी।
नृप[1] पुरुषसिंह से व्याही, हंस० ॥३॥

तर्ज—रावन सुनो ! सुमति हिय धार

आये विजयसेन गुरुराज, मोक्ष का राज्य दिलाने वाले ॥ध्रुवपद॥
राजा राजकुमार, वंदन आये लोग अपार।
गुरु ने ज्ञान सुनाया सार,
तार भव पार लगाने वाले, आये० ॥१॥
व्रत में सच्चा धर्म, होता है अव्रत में अधर्म।
पुण्य और पाप हैं दोनों कर्म,
जगत में भ्रमण कराने वाले, आये० ॥२॥
लो संयम सुखकार, अथवा श्रावक धर्म उदार।
त्याग के विना नहीं निस्तार,
समझो! प्रभु के वचन निराले, आये० ॥३॥

---

१. कुंती नगरी-पति।

तर्ज—बंशी वाले श्याम

स्कंदक ने संयम भार लिया, सुन गुरु का उपदेश ।।ध्रुवपद।।
राजा ने समझाया, लेकिन सुत समझ न पाया ।
आखिर नृप ने आदेश दिया, सुन० ।।१।।
सुभट[1] सुरक्षा करने, रखे मुनि सह नरवर ने ।
यह काम मोह के विवश किया, सुन० ।।२।।
पढ़-लिख बन गुणधारी, फिर एकल प्रतिमाधारी ।
मुनि वज्र समान अडोल हुआ, सुन० ।।३।।

तर्ज—चले आना हमारे अंगना

वन में ध्यान धरते, तप घोर करते ।
कुंती नगरी में आये मुनिवर ।।ध्रुवपद।।
सुभट पांच सौ पुर के बाहर रहे हैं,
स्कंदक ऋषीश्वर शहर में गये हैं-२।
भिक्षा लेने के लिए, घर-घर घूम वे रहे, कुंती० ।।१।।
रानी के साथ नृप महलों के अंदर,
करते थे क्रीड़ा आनन्द रंग भर[2]-२।
फिरते संत वे प्रवर, आये दूर से नजर, कुंती० ।।२।।
अच्छी तरह से तो ओ लख न पाई,
रानी को लेकिन स्मरा अपना भाई-२।
धारा अस्रु की चली, विरह-ज्वाला प्रजली, कुंती० ।।३।।

(रानी को रोती देखकर राजा सोच रहा है)

तर्ज—म्हारो घणा मोल रो माणकियो

इसने आकर के मेरी रानी पर, कोई जादू कर दिया रे ।
कर दिया, कर दिया, कर दिया रे, कोई मंतर कर दिया रे ।।ध्रुवपद।।
खिल-खिल करती खेल रही थी, कर डाली बेहाल ।
तुरत सभा में आ राजा ने, बुलवा के चांडाल ।
कान में ऐसे कह दिया रे, इसने० ।।१।।

---

१. पांच सौ सुभट ।
२. सारी-पाशा खेल रहे थे ।

जा श्मशान में इस मुनि का, तुम कर डालो संहार।
एड़ी से चोटी तक सारी, लेना खाल उतार।
श्वपच ने फौरन चल दिया रे, इसने० ॥२॥

तर्ज—मेरा दिल तोड़ने वाले

पकड़ कर के ऋषीश्वर को, श्वपच शमशान में आये।
रहे सब लोग चिल्लाकर, छुड़ाने किन्तु नहिं पाये ॥ध्रुवपद॥
उतारी खाल काया की, हुए ऋषि ध्यान में तत्पर।
नहीं महाराज के ऊपर, तनिक वे रोप दिल लाये, पकड़० ॥१॥
अलग है जीव और काया, न मरता जीव कब ही भी।
अगर पिंजरे को लेते हैं, भले खुश होके ले जायें, पकड़० ॥२॥
निर्विकल्पत्व में आये, हटा है मोह का पर्दा।
पलक में तोड़कर बंधन, मुनीश्वर सिद्ध कहलाये, पकड़० ॥३॥
क्षमा का चित्र दुनिया को, दिखाया त्याग कर तन को।
अगर हम सब को तरना है, तो यही मार्ग अपनायें, पकड़० ॥४॥

तर्ज—दिल्ली चलो!

क्यों नहिं आये, क्यों नहिं आये, क्यों नहिं आये हैं ?
फिक्र कर रहे सुभट सभी, मुनि क्यों नहिं आये हैं? ॥ध्रुवपद॥
पता लगाने हा! हा! करते, आये नृप के पास।
बात सुनी पहचाना शाला, राजा हुआ उदास।
मूर्च्छित थी महारानी, विविध इलाज कराये हैं, फिक्र० ॥१॥
ज्ञानी मुनि से जाकर पूछा, प्रभु! मैंने यह काम!
बिना विचारे क्यों कर डाला, कहिये हाल तमाम!
पूर्वजन्म के मुनि ने ऐसे भाव सुनाये हैं, फिक्र० ॥२॥

तर्ज—हीरा मिसरी का

जीव तेरा काचर था, मुनि था कर्षणकार ॥ध्रुवपद॥
चाकू से करके हुशियारी, सारी तेरी छाल उतारी।
फिर खुश हुआ अपार, जीव० ॥१॥
कर्म निकचित बांध लिए तब, तू हुआ राजा द्वेष जगा अब।
उतरा डाली खाल, जीव० ॥२॥

सुन महाराजा शांत हुआ है, यथाशक्ति व्रत-नियम लिया है।
मुनि ने किया विहार, जीव० ॥३॥

तर्ज—राधेश्याम

इस वर्णन को सुनकर भव्यो! जो भी करो सांसारिक काम।
उदासीनता रक्खो उसमें, नहीं बंधेगा पाप प्रकाम।
दो हजार पांच संवत, सित चैत्री चौदस सोरठ देश।
ग्राम 'खांभड़ा' सद्गुरु-कृपया 'धनमुनि' मन आनंद विशेष ॥१॥

मणि पचासीवां — सच्चा बालक

आम खाने के इच्छुक बच्चों में से एक के हाथ से एक पत्थर राजा के सिर में लगा। सिपाही बच्चों को पकड़ने लगे। उस बच्चे ने कहा—मैं हूं दोषी। उसे राजा के पास लाया गया। बालक ने सच्ची बात कही। राजा ने प्रसन्न होकर उसे मंत्री एवं उसके मास्टर को कुलपति बनाया। इस कहानी में सत्य की महिमा दिखाई गई है।

तर्ज—असली आजादी अपनाओ !

अपना दोष कभी न छिपाओ !
झूठ बोलकर औरों के सिर, मत इल्जाम लगाओ ! ॥ध्रुवपद॥
चार दिनों का है यहां जीना, बाद करेगा काल चबीना।
सच्चाई सम चीज कहीं ना, इसको सब अपनाओ! अपना० ॥१॥
चाहे हथकड़ियां पड़ जायें, चाहे प्राणक्षय हो जाये।
फिर भी अपना दोष पराये, सिर पर मत सरकाओ! अपना० ॥२॥

तर्ज—हीरा मिसरी का

बाग में आये हैं, मणिपुर के महाराज ॥ध्रुवपद॥
साथ अनेक कर्मचारी जन, अजब सजा मणिमय सिंहासन।
बैठे नरसरताज, बाग० ॥१॥
नाना विधि नट नाच कर रहे, गायक जन-मन लीन बन रहे।
गाने में सज साज, बाग० ॥२॥

तर्ज— अय बाबु जी !

वक्त छुट्टी का बच्चों के आया जी, इतने ही में।
वृंद बच्चों का वन में सिधाया जी, इतने ही में ॥ध्रुवपद॥
कई लड़ रहे थे कई पड़ रहे थे, कई रो रहे थे, कई हंस रहे थे।
रंग बचपन का अद्भुत जमाया जी, इतने ही में० ॥१॥

तर्ज—श्री महावीर चरण में

क्रीड़ा करते-करते, निकट बाग के बच्चे आये हैं।
वर वृक्ष आम के देख लुभाए हैं।।ध्रुवपद।।
फल पीले-पीले, थे कठिन कई थे ढीले,
एक-एक से अजब रसीले।
लेने लड़कों ने उपल चलाए हैं, क्रीड़ा० ।।१।।
एक शिशु का पत्थर, आ पड़ा भूप के सिर पर,
लगा चलने लोही सररर।
मच गया शोर नृप लाली लाये हैं, क्रीड़ा० ।।२।।
बोले झट जाओ! दोषी को लेकर आओ!
फल गलती का दिखलाओ!
सुनते ही राजसिपाही धाए हैं, क्रीड़ा० ।।३।।

तर्ज—दिल्ली चलो!

बोल जाओ, बोल जाओ! बोल जाओ रे!
पत्थर किसने मारा सच्चे बोल जाओ रे! ।।ध्रुवपद।।
लाल आंख कर राजसिपाही पूछने लगे,
डर के मारे लड़के सारे धूजने लगे।
कहा चरों ने मत घबराओ सत्य सुनाओ रे! पत्थर० ।।१।।
इसने मारा, इसने मारा बच्चे कर रहे,
एक-एक के ऊपर यह इल्जाम धर रहे।
कहा एक ने इधर जरा-सा ध्यान लगाओ रे! पत्थर० ।।२।।

तर्ज—मेरा दिल तोड़ने वाले

मेरे हाथों से यह पत्थर, लगा महाराज के सिर पर।
भले मुझको पकड़ लो तुम, तुम्हारे पास हूं हाजिर।।ध्रुवपद।।
किसलिए तुम पकड़ते हो, अन्य बच्चों को बेमतलब।
गुनह यह सर्व मेरा है, फर्क इसमें नहीं तिल भर, मेरे० ।।१।।
सचावट देख बालक की, सिपाही चित्त चमके हैं।
लगे कहने तू नट जाना, लगे जब पूछने नरवर, मेरे० ।।२।।

तर्ज—राधेश्याम

झूठ कभी न कहूंगा मैं तो, मरना चाहे मुझे पड़े ।
अपने बदले सब लड़कों को, कौन कहो हैरान करे ।
राजपुरुष ले आए शिशु से, क्रुद्ध नृपति ने प्रश्न किया ।
रे पापी ! क्यों पत्थर मारा, शिशु ने सत्य बयान दिया ॥१॥
क्रीड़ा करते हम सब लड़के, आए थे यहां हर्ष प्रकाम ।
मार रहे थे मिल-जुल पत्थर, खाने परम रसीले आम ॥२॥
उसी समय मेरे हाथों से, लगा आपके सिर पत्थर ।
दोष नहीं है और किसी का, गुनहगार मैं हूं नरवर ! ॥३॥

तर्ज—दुनिया राम नाम नहीं जान्यो

देखो ! अजब सत्य की महिमा,
खुश-खुश हुआ तुरत महाराजा ॥ध्रुवपद॥
रे बेटा ! बतला यह किसने, तुझको पाठ पढ़ाया है ।
मास्टर साहब ने प्रभु ! मुझको, एक रोज फरमाया, देखो! ॥१॥
गुनह अगर कोई हो जाए, न कभी उसे छिपाना रे ।
अथवा दोष अन्य के सिर पर, भूलचूक न लगाना, देखो! ॥२॥
साधारण मास्टर को नृप ने, कुलपति-पद बकसाया है ।
पढ़ा-लिखाकर उस लड़के को, अपना सचिव बनाया, देखो! ॥३॥
सुनकर यह वर्णन बच्चों को, सिखलाओ सच्चाई जी ।
"ध्रांगध्रा" की हाई स्कूल में, 'धन' ने सीख सुनाई, देखो ! ॥४॥

मणि छयासीवां   स्वादिष्ट शाक

संतान के अभाव में सेठ ने पुन: शादी की। नई वहू आते ही लड़ाई शुरू हुई। बड़ी को अलग होना पड़ा। दीपावली के दिन आग्रह करने से खाने के लिए पति बड़ी के घर गया किंतु शाक पसद नहीं आया। छोटी ने छाने का शाक बना कर दिया, कामांध पति ने बड़े प्रेम से खाया आखिर भेद खुलने से शर्मिन्दा हुआ।

तर्ज—असली आजादी अपनाओ !

कामी कुछ न समझने पाते, प्रेमी कुछ न समझने पाते।
मोहअन्ध हो भान भूल कर, पागल-से वन जाते ॥ध्रुवपद॥
धनपुर शहर सेठ धनधारी, सेठानी थी रूप पिटारी।
भोग रहे सुख-भोग किन्तु, नन्दन के विन अकुलाते, कामी० ॥१॥
देवी-देव अनेक मनाए, यंत्र-मंत्र काफी करवाए।
फिर भी सुत-दर्शन नहिं पाए, प्रियतम अथ फरमाते, कामी० ॥१॥

तर्ज—हो भाभी ! तमे थोड़ा थोड़ा थावो

हे प्यारी! तेरा मन हो तो नई वहू लाऊं ॥ध्रुवपद॥
दिनोंदिन लक्ष्मी घर में खुश होकर फैल रही,
तेरे उदर से बच्चा होने की आशा नहीं।
नई पत्नी से पुत्र उपजाऊं, प्यारी ! ॥१॥
प्रभु की दया से वच्चा वेशक मिलेगा प्यारी !
दोहग दटेंगे खुल्ली घर की रहेगी वारी।
जो भी आज्ञा हो शीश पै चढ़ाऊं, हे प्यारी ! ॥२॥

तर्ज—हीरा मिसरी का

पियाजी! ले आओ, नई वहू घर प्यार ॥ध्रुवपद॥

बस ! अब फौरन खबर लगाई, कन्या एक सुरूपा पाई ।
की शादी सुखकार, पियाजी! ॥१॥
आते ही कर डाला जादू, बने सेठजी सुख-आस्वादू ।
(अब) बड़ी हुई बेकार, पियाजी ! ॥२॥
निकल रहे हैं संकट में दिन, छोटी के फिर हो गया नंदन ।
शुरू हुई तकरार, पियाजी ! ॥३॥

तर्ज—श्री महावीर चरण में

कर के झगड़ा अथ छोटी ने, घर करवा लिया खाली है ।
चुपचाप दूसरी जगह निहाली है ॥ध्रुवपद॥
निज मन को वश कर, रहती है बड़ी धीरज धर,
है सचित पापों के फल ।
यों समझ धर्म में वृत्ति लगा ली है, करके०॥१॥
पति कभी न आता, घर छोटी के नित खाता,
सोता उठ वहीं नहाता ।
आ गया एकदा पर्व दीवाली है, करके० ॥२॥

तर्ज—पिया घर आजा !

अब न विरह मैं सह सकती, बारह महीने बीते,
पिया घर आजा-आजा, पिया ॥ध्रुवपद॥
लिए क्लेश के शादी नहिं करवाई थी-२
मैंने तो कुछ और ही बात जंचाई थी-२ ।
लेकिन किस्मत बदल गयी,
इक रोज आकर फिर भी, खाना तो खा जा, आजा० ॥१॥
पति ने आना-कानी की है काफी पर,
बैठ गयी है सेठानी अति आग्रह कर-२ ।
आखिर प्रियतम बोला है,
आऊंगा आज जरूरी, मन्दिर तू जा-जा ! आजा० ॥२॥

तर्ज—धर्म की पूंजी कमा ले !

सेठानी हुलसाई, हुलसाई आकर की है तैयारियां ॥ध्रुवपद॥

मणि छयासीवां — स्वादिष्ट शाक

संतान के अभाव में सेठ ने पुनः शादी की। नई बहू आते ही लड़ाई शुरु हुई। बड़ी को अलग होना पड़ा। दीपावली के दिन आग्रह करने से खाने के लिए पति बड़ी के घर गया किंतु शाक पसंद नहीं आया। छोटी ने छाने का शाक बना कर दिया, कामांध पति ने बड़े प्रेम से खाया आखिर भेद खुलने से शर्मिन्दा हुआ।

तर्ज—असली आजादी अपनाओ !

कामी कुछ न समझने पाते, प्रेमी कुछ न समझने पाते।
मोहअन्ध हो भान भूल कर, पागल-से बन जाते ॥ध्रुवपद॥
धनपुर शहर सेठ धनधारी, सेठानी थी रूप पिटारी।
भोग रहे सुख-भोग किन्तु, नन्दन के बिन अकुलाते, कामी० ॥१॥
देवी-देव अनेक मनाए, यंत्र-मंत्र काफी करवाए।
फिर भी सुत-दर्शन नहिं पाए, प्रियतम अथ फरमाते, कामी० ॥१॥

तर्ज—हो भाभी ! तमे थोड़ा थोड़ा थावो

हे प्यारी! तेरा मन हो तो नई बहू लाऊं ॥ध्रुवपद॥
दिनोंदिन लक्ष्मी घर में खुश होकर फैल रही,
तेरे उदर से बच्चा होने की आशा नहीं।
नई पत्नी से पुत्र उपजाऊं, प्यारी ! ॥१॥
प्रभु की दया से बच्चा बेशक मिलेगा प्यारी !
दोहुग दटेंगे खुल्ली घर की रहेगी बारी।
जो भी आज्ञा हो शीश पै चढ़ाऊं, हे प्यारी ! ॥२॥

तर्ज—हीरा मिसरी का

पियाजी! ले आओ, नई बहू घर प्यार ॥ध्रुवपद॥

वस ! अव फौरन खवर लगाई, कन्या एक सुरूपा पाई ।
की शादी सुखकार, पियाजी! ॥१॥
आते ही कर डाला जादू, वने सेठजी सुख-आस्वादू ।
(अव) वड़ी हुई वेकार, पियाजी ! ॥२॥
निकल रहे हैं संकट में दिन, छोटी के फिर हो गया नंदन ।
शुरू हुई तकरार, पियाजी ! ॥३॥

तर्ज—श्री महावीर चरण में

कर के झगड़ा अथ छोटी ने, घर करवा लिया खाली है ।
चुपचाप दूसरी जगह निहाली है ॥ध्रुवपद॥
निज मन को वश कर, रहती है वड़ी धीरज धर,
है संचित पापों के फल ।
यों समझ धर्म में वृत्ति लगा ली है, करके० ॥१॥
पति कभी न आता, घर छोटी के नित खाता,
सोता उठ वहीं नहाता ।
आ गया एकदा पर्व दीवाली है, करके० ॥२॥

तर्ज—पिया घर आजा !

अव न विरह मैं सह सकती, वारह महीने वीते,
पिया घर आजा-आजा, पिया ॥ध्रुवपद॥
लिए क्लेश के शादी नहिं करवाई थी-२
मैंने तो कुछ और ही वात जंचाई थी-२ ।
लेकिन किस्मत वदल गयी,
इक रोज आकर फिर भी, खाना तो खा जा, आजा० ॥१॥
पति ने आना-कानी की है काफी पर,
वैठ गयी है सेठानी अति आग्रह कर-२ ।
आखिर प्रियतम वोला है,
आऊंगा आज जरूरी, मन्दिर तू जा-जा ! आजा० ॥२॥

पांचों ही पकवान सुहाये, बढ़िया चावल-दाल बनाये।
पूरी-शाक की शोभा सवाई-सवाई, आकर० ॥१॥
सुंदर गद्दी-पट्टे लगाये, थाली-कटोरे अति मनभाये।
की है अनूठी सझाई-सझाई, आकर० ॥२॥

तर्ज—रहमत के बादल छाये

इतने में सेठ भी, मुख से बड़बड़ाता आया ॥ध्रुवपद॥
ग्रास एक ले मुख में डारा, बोल पड़ा क्यों माल बिगाड़ा।
नहीं स्वाद किसी में पाया, इतने० ॥१॥
जा! छोटी के घर पर जा तू, शाक जरा-सा उससे ला तू।
तेरा शाक न मुझे सुहाया, इतने० ॥२॥
बेचारी झट उठकर धाई, मांगा शाक मिली है मनाही।
तब दीन भाव दिखलाया, इतने० ॥३॥

तर्ज—मेरा दिल तोड़ने वाले

दया करके अरी बहनी ! बना दे शाक थोड़ा-सा।
पियाजी! अड़ के बैठे हैं, बना दे शाक थोड़ा-सा ॥ध्रुवपद॥
मेरी रोटी वे खा लेंगे, अगर तू शाक दे देगी।
लिए इस ही के आई हूं, बना दे शाक थोड़ा-सा ॥१॥
निकम्मी हूं नहीं मैं तो, करम तेरे तू ही जाने।
न कर ऐसे अरी बहनी ! बना दे शाक थोड़ा-सा ॥२॥
नहीं है चीज कुछ हाजिर, बनाऊं बोल मैं किसका ?
कृपा कर जिस किसीका भी, बना दे शाक थोड़ा-सा ॥३॥

तर्ज—सुना दे-३ किसना !

बनाया, बनाया, बनाया छोटी ने।
बस ! छाने का शाक, बनाया छोटी ने ॥ध्रुवपद॥
थोड़े-से मिर्च मसाले, ले कर के उसमें डाले-२।
प्याला भर के शीघ्र पकड़ाया छोटी ने, बस ! ॥१॥
हाजिर ला तुरत किया है, प्रियतम ने स्वाद लिया है-२।
अहा ! शाक [illegible] स्वाद, रचाए छोटी ने, बस! ॥२॥

करता तारीफ फिर-फिर, छाना गा गया अधिकतर-२।
तब गुस्से हो किस्सा खोल सुनाया मोटी ने, बस! ॥३॥

तर्ज—राधेश्याम

स्वाद नहीं है शाक किन्तु तुम मोह-अन्ध हो मान रहे।
छाना खाकर के भी अपना, जीवन सफल पिछान रहे॥
सुनकर आंखें खुलीं सेठ की, क्षमा बड़ो से मांगी है।
उसी रोज से ज्ञान हो गया, मोह विकलता त्यागी है॥१॥
इस वर्णन का सार यही है, राग जीतना पढ़ जाओ!
वीतराग भगवान बनो तुम, अजर-अमर पद अपनाओ!
दो हजार पांच संवत, सित वैशाखी बारस शनिवार।
ग्राम 'लूणसर' में गुरु-कृपया 'धनमुनि' मन आनन्द अपार॥२॥

पांचों ही पकवान सुहाये, बढ़िया चावल-दाल बनाये।
पूरी-शाक की शोभा सवाई-सवाई, आकर० ॥१॥
सुंदर गद्दी-पट्टे लगाये, थाली-कटोरे अति मनभाये।
की है अनूठी सझाई-सझाई, आकर० ॥२॥

तर्ज—रहमत के बादल छाये

इतने में सेठ भी, मुख से बड़बड़ाता आया ॥ध्रुवपद॥
ग्रास एक ले मुख में डारा, बोल पड़ा क्यों माल बिगाड़ा।
नहीं स्वाद किसी में पाया, इतने० ॥१॥
जा! छोटी के घर पर जा तू, शाक जरा-सा उससे ला तू।
तेरा शाक न मुझे सुहाया, इतने० ॥२॥
बेचारी झट उठकर धाई, मांगा शाक मिली है मनाही।
तब दीन भाव दिखलाया, इतने० ॥३॥

तर्ज—मेरा दिल तोड़ने वाले

दया करके अरी बहनी ! बना दे शाक थोड़ा-सा।
पियाजी! अड़ के बैठे हैं, बना दे शाक थोड़ा-सा ॥ध्रुवपद॥
मेरी रोटी वे खा लेंगे, अगर तू शाक दे देगी।
लिए इस ही के आई हूं, बना दे शाक थोड़ा-सा ॥१॥
निकम्मी हूं नहीं मैं तो, करम तेरे तू ही जाने।
न कर ऐसे अरी बहनी ! बना दे शाक थोड़ा-सा ॥२॥
नहीं है चीज कुछ हाजिर, बनाऊं बोल मैं किसका ?
कृपा कर जिस किसीका भी, बना दे शाक थोड़ा-सा ॥३॥

तर्ज—सुना दे-३ किसना!

बनाया, बनाया, बनाया छोटी ने।
बस ! छाने का शाक, बनाया छोटी ने ॥ध्रुवपद॥
थोड़े-से मिर्च मसाले, ले कर के उसमें डाले-२।
प्याला भर के शीघ्र पकड़ाया छोटी ने, बस ! ॥१॥
हाजिर ला तुरत किया है, प्रियतम ने स्वाद लिया है-२।

करता तारीफ फिर-फिर, छाना खा गया अधिकतर-२ ।
तब गुस्से हो किस्सा खोल सुनाया मोटी ने, बस ! ॥३॥

तर्ज—राधेश्याम

स्वाद नहीं है शाक किन्तु तुम मोह-अन्ध हो मान रहे ।
छाना खाकर के भी अपना, जीवन सफल पिछान रहे ॥
सुनकर आंखें खुलीं सेठ की, क्षमा बड़ी से मांगी है ।
उसी रोज से ज्ञान हो गया, मोह विकलता त्यागी है ॥१॥
इस वर्णन का सार यही है, राग जीतना पढ़ जाओ !
वीतराग भगवान बनो तुम, अजर-अमर पद अपनाओ !
दो हजार पांच संवत, सित वैशाखी बारस शनिवार ।
ग्राम 'लूणसर' में गुरु-कृपया 'धनमुनि' मन आनन्द अपार ॥२॥

हाथ जोड़ कर बोली बाई, कृपा कीजिये प्रभुवर !
दुर्बल तन है दूर न जायें, है सब चीजें हाजिर, रवि०॥१॥
धाणा-मिसरी की उबकाली, सूंठ-मिरच की मोई।
दूध और घी ताजा देखो, खुल्ली पड़ी रसोई, रवि०॥२॥
दाल मूंग की पतला-पतला, दलिया सरस विचारो !
पापड़ गोली चूरण पीपल, है तैयार पधारो ! रवि० ॥३॥

तर्ज—धर्म की पूंजी कमा ले !

अर्जी सुन मुनि आये, आये हैं घर में, लेने को पारणा ॥ध्रुवपद॥
देख सजावट शंका आई, पूछा सब बतलाओ बाई !
क्यों खाने इतने बनाये-बनाये, घर में० ॥१॥
बोली बाई मैं हूं पुरानी, सुनते-सुनते आपकी वानी।
वर्ष पचास विताये-विताये, घर में० ॥२॥
जो मुनियों के हेतु बनाऊं, तो प्रभु सीधी नरक सिधाऊं।
ऐसे कर्म न कब ही कमाये-कमाये, घर में० ॥३॥

तर्ज—मेरा दिल तोड़ने वाले

बनाई बात यों काफी, लगे सुन सोचने मुनिवर।
अगर पूछूंगा ज्यादा तो, कहीं हो जाएगी गड़बड़ ॥ध्रुवपद॥
न चीजें एक ही घर में, मिलेगी सूझती इतनी।
यहीं पर गोचरी कर लूं, कहां भटकूंगा जा घर-घर, बनाई०॥१॥
हाय ! ऐसे तपस्वी भी, हिल गए देखकर खाना।
लिया जो कुछ भी लेना था, कहा बाई ने फिर नमकर, बनाई०॥२॥
द्रव्य हो जाएंगे ठंडे, यहीं प्रभु! पारणा कर ले !
संत कमरे में बैठे हैं, पतित पड़ते ही हैं फिर-फिर, बनाई०॥३॥

तर्ज—पीहरियुं सांभरे

करते हैं पारणा,
हो ! मुनिजी वहीं करते हैं पारणा ॥ध्रुवपद॥
उपवासी मास के थे गबागब खा गए,
जितना भी लाए आहार, करते हैं०॥१॥

पेटी के पास वहां खूंटी पर था पड़ा,
चमकीला मोती का हार, करते हैं०॥२॥
मुनिजी का चित्त अहो ! उस पर बिगड़ गया,
ले कर छिपाया उदार, करते हैं०॥३॥
आए हैं स्थान ऋषि कमरे को छोड़कर,
बीती है थोड़ी-सी वार, करते हैं०॥४॥

तर्ज—हीरा मिसरी का

उलटी हो गई है, निकला सब आहार ॥ध्रुवपद॥
अब वे मुनि मन सोच रहे हैं, हा ! हा ! मैंने गजब किए हैं।
धिग् मेरा अवतार, उलटी०॥१॥
चोरी करने की मन आई, क्या थी ऐसी बुरी कमाई ?
अहो ! थी भिक्षा बेकार, उलटी०॥२॥
बस ! फौरन उसके घर आकर, पूछा बार-बार समझाकर।
निकला आखिर तार[1], उलटी०॥३॥

तर्ज—धर्म पर डट जाना

कभी फिर मत करना, ऐसा काम दुवारा ॥ध्रुवपद॥
तूने हो मोहांध दिया था, मैंने होकर गृद्ध लिया था।
हो गया दिल कारा, ऐसा०॥१॥
कह यों हार तुरत लौटाया, बहन ने विस्मय बेहद पाया।
नियम दृढ़ अब धारा[2], ऐसा० ॥२॥

तर्ज—राधेश्याम

प्रायश्चित्त किया मुनिवर ने, अब तुम तत्त्व समझ लेना !
कभी अशुद्ध न देना ! मुनि को, कभी अशुद्ध नहिं लेना।
दो हजार पांच संवत, वदि दूज जेठ की रविसुत वार।
बांकानेर सुगुरु-करणा से 'धन मुनि' करता धर्म प्रचार ॥१॥

---

१. बहन ने स्वीकार कर लिया कि मैंने सब कुछ आपके लिए ही बनाया था।
२. साधुओं के लिए न बनाने का नियम लिया।

हाथ जोड़ कर बोली बाई, कृपा कीजिये प्रभुवर !
दुर्बल तन है दूर न जायें, है सब चीजें हाजिर, रवि०॥१॥
धाणा-मिसरी की उबकाली, सूंठ-मिरच की मोई।
दूध और घी ताजा देखो, खुल्ली पड़ी रसोई, रवि०॥२॥
दाल मूग की पतला-पतला, दलिया सरस विचारो !
पापड़ गोली चूरण पीपल, है तैयार पधारो ! रवि० ॥३॥

तर्ज—धर्म की पूंजी कमा ले !

अर्जी सुन मुनि आये, आये हैं घर में, लेने को पारणा ॥ध्रुवपद॥
देख सजावट शंका आई, पूछा सब बतलाओ बाई !
क्यों बाने इतने बनाये-बनाये, घर में० ॥१॥
बोली बाई मैं हूं पुरानी, सुनते-सुनते आपकी वानी।
वर्ष पचास बिताये-बिताये, घर में० ॥२॥
जो मुनियों के हेतु बनाऊं, लो प्रभु सीधी नरक सिधाऊं।
ऐसे कर्म न कब ही कमाये-कमाये, घर में० ॥३॥

तर्ज—मेरा दिल तोड़ने वाले

बनाई बात यों काफी, लगे सुन सोचने मुनिवर।
अगर पूछूंगा ज्यादा तो, कहीं हो जाएगी गड़बड़ ॥ध्रुवपद॥
न चीजें एक ही घर में, मिलेगी सूझती इतनी।
यहीं पर गोचरी कर लूं, कहां भटकूंगा जा घर-घर, बनाई०॥१॥
हाय ! ऐसे तपस्वी भी, हिल गए देखकर खाना।
लिया जो कुछ भी लेना था, कहा बाई ने फिर नमकर, बनाई०॥२॥
द्रव्य हो जाएंगे ठंडे, यहीं प्रभु! पारणा कर ले !
संत कमरे में बैठे हैं, पतित पड़ते ही हैं फिर-फिर, बनाई०॥३॥

तर्ज—पीहरियुं मांयरे

करते हैं पारणा,
हो ! मुनिजी वहीं करते हैं पारणा ॥ध्रुवपद॥
उपवासी मास के थे गपागप खा गए,
जितना भी लाए आहार, करते हैं०॥१॥

पेटी के पास वहां खूंटी पर था पड़ा,
चमकीला मोती का हार, करते हैं०॥२॥
मुनिजी का चित्त अहो ! उस पर बिगड़ गया,
ले कर छिपाया उदार, करते हैं०॥३॥
आए हैं स्थान मुनि कमरे को छोड़कर,
बीती है थोड़ी-सी वार, करते हैं०॥४॥

तर्ज—हीरा मिसरी का

उलटी हो गई है, निकला सब आहार ॥ध्रुवपद॥
अब वे मुनि मन सोच रहे हैं, हा ! हा ! मैंने गजब किए हैं।
धिग् मेरा अवतार, उलटी०॥१॥
चोरी करने की मन आई, क्या थी ऐसी बुरी कमाई ?
अहो ! थी भिक्षा बेकार, उलटी०॥२॥
बस ! फौरन उसके घर आकर, पूछा बार-बार समझाकर।
निकला आखिर तार[1], उलटी०॥३॥

तर्ज—धर्म पर डट जाना

कभी फिर मत करना, ऐसा काम दुबारा ॥ध्रुवपद॥
तूने हो मोहांध दिया था, मैंने होकर गृद्ध लिया था।
हो गया दिल कारा, ऐसा०॥१॥
कह यों हार तुरत लौटाया, बहन ने विस्मय बेहद पाया।
नियम दृढ़ अब धारा[2], ऐसा० ॥२॥

तर्ज—राधेश्याम

प्रायश्चित्त किया मुनिवर ने, अब तुम तत्त्व समझ लेना !
कभी अशुद्ध न देना ! मुनि को, कभी अशुद्ध नहिं लेना।
दो हजार पांच संवत, वदि दूज जेठ की रविसुत वार।
वांकानेर सुगुरु-करणा से 'धन मुनि' करता धर्म प्रचार ॥१॥

---

१. बहन ने स्वीकार कर लिया कि मैंने सब कुछ आपके लिए ही बनाया था।
२. साधुओं के लिए न बनाने का नियम लिया।

मणि नवासीवां चन्दन का व्यापारी

सेठ के मन में राजपरिवार के प्रति दुर्भावना होने से राजा का मन भी बिगड़ गया। मंत्री ने चन्दन से रसोई बनवाकर ज्योंही सेठ का दिल बदला, इधर राजा का दिल स्वयमेव बदल गया और उसने सेठ को पोशाक आदि देकर सम्मानित किया।

तर्ज—मेरा दिल तोड़ने वाले

राग उत्पन्न होता है, नजर चढ़ते ही रागी नर।
तुरत गुस्सा उमड़ता है, दीख पड़ते ही द्वेषी नर ॥ध्रुवपद॥
बुरा चिन्तन अगर कोई, किसी के हेतु करता है।
तार फौरन चला जाता, द्वेष उसके भी जगता फिर, राग० ॥१॥
नगर था रम्य कंचनपुर नृपति नीतिज्ञ कनकेश्वर।
बड़ा चन्दन का व्यापारी, वहां था सेठ कंचनधर, राग० ॥२॥
प्रवर दीपावली के दिन, प्रजाजन मिल रहे नृप से।
दृष्टि पड़ते ही कंचन पर क्रुद्ध-सा हो गया नरवर, राग० ॥३॥

तर्ज—रखिया बंधाओ भैया!

बिगड़ी है मन की वृत्ति, ईर्ष्या छाई है।
ईर्ष्या छाई है, दुर्मति आई है ॥ध्रुवपद॥
मरवा दूं इसको, तो सुख हो मुझको।
दुर्भावना यह, मंत्रीश्वर से जताई है, बिगड़ी० ॥१॥
मेरा न बिगाड़ा, इसने एक तारा।
दुर्भावना फिर दिल पर, क्यों मंडराई है? बिगड़ी० ॥२॥

तर्ज—राधेश्याम

पता लगाने मंत्री ने, कंचन को मित्र बनाया है।
प्रतिदिन मिलने लगे सेठ ने, एक रोज फरमाया है ॥१॥

पड़ा स्टोक में चन्दन काफी, मौत न होती नृप के घर।
कैसे हो बिक्री अब कहिए, फिक्र हो रहा है फिर-फिर ॥२॥
राज समझ कर मन्त्री ने, फौरन चन्दन मंगवाया है।
करो रसोई इससे प्रतिदिन, ऐसा हुक्म लगाया है ॥३॥
अब चन्दन से बनता खाना, इक दिन नृप ने पूछ लिया।
(मंत्री) राज वैद्य की आज्ञा से, प्रभु! मैंने यह सब शुरू किया ॥४॥
कहा वैद्य ने स्वास्थ्य हेतु, चन्दनी की लकड़ी हितकर है।
सुन वसुधापति हुआ मुदित मन, बदला इधर धनीश्वर है ॥५॥

तर्ज—नरम बनोजी नरम बनो !

बदल गये जी बदल गये, भाव सेठ के बदल गये ॥ध्रुवपद॥
अब बिकता है चन्दन रोज, मिटने लगा फिक्र का खोज।
मंत्रीश्वर से वचन कहे, भाव० ॥१॥
अमर बनें अपने महाराज, सुख से करें राज का काज।
तन इनका नीरोग रहे, भाव० ॥२॥
पर्व प्रसंग पुनः पाकर, मिलने आया श्रेष्ठि प्रवर।
खुश हो रुपये नजर किये, भाव० ॥३॥

तर्ज—धर्म की पूंजी कमा ले !

राजा भी सुख पाया, सुख पाया मन में, कंचन को देखकर ॥ध्रुवपद॥
सोच रहा श्रेष्ठी है सज्जन, इसको दे कुछ हृष्ट करूं मन।
मेरे पुर में प्रमुख कहाया-कहाया, मन में० ॥१॥
दी पोशाकें परम मनोहर, राजसभा में कुर्सी सुखकर।
देकर मान बढ़ाया-बढ़ाया, मन में० ॥२॥
फिर मन्त्री से बात सुनायी, क्यों मनसा परिवर्तन पाई।
अथ उसने भेद बताया-बताया, मन में० ॥३॥

तर्ज—राधेश्याम

चन्दन नहिं बिकने से श्रेष्ठी, मरण आपका चाहता था।
इधर आपके दिल में भी, दुर्भाव प्रकट हो आता था।
खाना पकवाने के मिष से, मैंने चन्दन बिकवाया।

मणि नवासीवां चन्दन का व्यापारी

सेठ के मन में राजपरिवार के प्रति दुर्भावना होने से राजा का मन भी बिगड़ गया। मंत्री ने चन्दन से रसोई बनवाकर ज्योंही सेठ का दिल बदला, इधर राजा का दिल स्वयमेव बदल गया और उसने सेठ को पोशाक आदि देकर सम्मानित किया।

तर्ज—मेरा दिल तोड़ने वाले

राग उत्पन्न होता है, नजर चढ़ते ही रागी नर।
तुरत गुस्सा उमड़ता है, दीख पड़ते ही द्वेषी नर ।।ध्रुवपद।।
बुरा चिन्तन अगर कोई, किसी के हेतु करता है।
तार फौरन चला जाता, द्वेष उसके भी जगता फिर, राग० ।।१।।
नगर था रम्य कंचनपुर नृपति नीतिज्ञ कनकेश्वर।
बड़ा चन्दन का व्यापारी, वहां था सेठ कंचनवर, राग० ।।२।।
प्रवर दीपावली के दिन, प्रजाजन मिल रहे नृप से।
दृष्टि पड़ते ही कंचन पर क्रुद्ध-सा हो गया नरवर, राग० ।।३।।

तर्ज—रखिया बंधाओ भैया !

बिगड़ी है मन की वृत्ति, ईर्ष्या छाई है।
ईर्ष्या छाई है, दुर्मति आई है ।।ध्रुवपद।।
मरवा दूं इसको, तो सुख हो मुझको।
दुर्भावना यह, मंत्रीश्वर से जताई है, बिगड़ी० ।।१।।
मेरा न बिगाड़ा, इसने एक तारा।
दुर्भावना फिर दिल पर, क्यों मंडराई है? बिगड़ी० ।।२।।

तर्ज—राधेश्याम

पता लगाने मंत्री ने, कंचन को मित्र बनाया है।
प्रतिदिन मिलने लगे सेठ ने, एक रोज फरमाया है ।।१।।

पड़ा स्टोक में चन्दन काफी, मौत न होती नृप के घर।
कैसे हो विक्री अव कहिए, फिक्र हो रहा है फिर-फिर ॥२॥
राज समझ कर मन्त्री ने, फौरन चन्दन मंगवाया है।
करो रसोई इससे प्रतिदिन, ऐसा हुक्म लगाया है ॥३॥
अव चन्दन से वनता खाना, इक दिन नृप ने पूछ लिया।
(मंत्री) राज वैद्य की आज्ञा से, प्रभु! मैंने यह सव शुरू किया ॥४॥
कहा वैद्य ने स्वास्थ्य हेतु, चन्दनी की लकड़ी हितकर है।
सुन वसुधापति हुआ मुदित मन, वदला इधर धनीश्वर है ॥५॥

तर्ज—नरम वनोजी नरम वनो !

वदल गये जी वदल गये, भाव सेठ के वदल गये ॥ध्रुवपद॥
अव विकता है चन्दन रोज, मिटने लगा फिक्र का खोज।
मंत्रीश्वर से वचन कहे, भाव० ॥१॥
अमर वनें अपने महाराज, सुख से करें राज का काज।
तन इनका नीरोग रहे, भाव० ॥२॥
पर्व प्रसंग पुन: पाकर, मिलने आया श्रेष्ठि प्रवर।
खुश हो रुपये नजर किये, भाव० ॥३॥

तर्ज—धर्म की पूंजी कमा ले !

राजा भी सुख पाया, सुख पाया मन में, कंचन को देखकर ॥ध्रुवपद॥
सोच रहा श्रेष्ठी है सज्जन, इसको दे कुछ हृष्ट करूं मन।
मेरे पुर में प्रमुख कहाया-कहाया, मन में० ॥१॥
दी पोशाकें परम मनोहर, राजसभा में कुर्सी सुखकर।
देकर मान वढ़ाया-वढ़ाया, मन में० ॥२॥
फिर मन्त्री से वात सुनायी, क्यों मनसा परिवर्तन पाई।
अथ उसने भेद वताया-वताया, मन में० ॥३॥

तर्ज—राधेश्याम

चन्दन नहिं विकने से श्रेष्ठी, मरण आपका चाहता था।
इधर आपके दिल में भी, दुर्भाव प्रकट हो आता था।
खाना पकवाने के मिष से, मैंने चन्दन विकवाया।

मणि नवासीवां

चन्दन का व्यापारी

सेठ के मन में राजपरिवार के प्रति दुर्भावना होने से राजा का मन भी बिगड़ गया। मंत्री ने चन्दन से रसोई बनवाकर ज्योंही सेठ का दिल बदला, इधर राजा का दिल स्वयमेव बदल गया और उसने सेठ को पोशाक आदि देकर सम्मानित किया।

तर्ज—मेरा दिल तोड़ने वाले

राग उत्पन्न होता है, नजर चढ़ते ही रागी नर।
तुरत गुस्सा उमड़ता है, दीख पड़ते ही द्वेषी नर ।।ध्रुवपद।।
बुरा चिन्तन अगर कोई, किसी के हेतु करता है।
तार फौरन चला जाता, द्वेष उसके भी जगता फिर, राग० ।।१।।
नगर था रम्य कंचनपुर नृपति नीतिज्ञ कनकेश्वर।
बड़ा चन्दन का व्यापारी, वहां था सेठ कंचनवर, राग० ।।२।।
प्रवर दीपावली के दिन, प्रजाजन मिल रहे नृप से।
दृष्टि पड़ते ही कंचन पर क्रुद्ध-सा हो गया नरवर, राग० ।।३।।

तर्ज—रखिया बंधाओ भैया !

बिगड़ी है मन की वृत्ति, ईर्ष्या छाई है।
ईर्ष्या छाई है, दुर्मति आई है ।।ध्रुवपद।।
मरवा दूं इसको, तो सुख हो मुझको।
दुर्भावना यह, मंत्रीश्वर से जताई है, बिगड़ी० ।।१।।
मेरा न बिगाड़ा, इसने एक तारा।
दुर्भावना फिर दिल पर, क्यों मंडराई है ? बिगड़ी० ।।२।।

तर्ज—राधेश्याम

पता लगाने मंत्री ने, कंचन को मित्र बनाया है।
सेठ ने, एक रोज फरमाया है ।।१।।

मणि नब्बेवां प्रमाणिकता

सेठ ने शिशु-भिखारी को रेजगी करवाने के लिए एक रुपया दिया दुकानदार वट्टा मांगने लगे। ईमानदार बालक ने नहीं दिया। इधर विलंब होने से सेठ घर चला गया। पीछे से बच्चा रेजगारी लेकर आया। सेठ नहीं मिला, बारह महीनों तक खोजता रहा। मिलने पर रुपया लौटाया। विस्मित सेठ ने उस बच्चे को पढ़ा-लिखाकर योग्य बनाया। उक्त कथा प्रमाणिकता बनने की प्रेरणा देती है।

तर्ज—मेरा दिल तोड़ने वाले

जरूरी चीज है जग में, प्रमाणिकता-प्रमाणिकता।
अरे सज्जन जनों! सीखो, प्रमाणिकता-प्रमाणिकता ॥ध्रुवपद॥
कलह का मूल कट जाए, वृत्ति मन की सुधर जाये।
अगर सब लोग अपना लें, प्रमाणिकता-प्रमाणिकता ॥१॥
कचहरी-कोर्ट न रहें फिर, पुलिस का काम न रहे फिर।
अगर रूं-रूं में रम जाये, प्रमाणिकता-प्रमाणिकता ॥२॥
किसी से झूठ नहिं कहना, विना हक का नहीं लेना।
इसे कहते हैं ज्ञानी जन, प्रमाणिकता-प्रमाणिकता ॥३॥

तर्ज—असली आजादी अपनाओ !

पुर के बाहर लग रहा मेला,
नगरनिवासी बीच बाग के, कर रहे मिलजुल केला ॥ध्रुवपद॥
रकम-रकम की लगी दुकानें, घूम रहे जन मन हुलसाने।
नाच हो रहा गान हो रहा, इधर अनूठा खेला, पुर० ॥१॥
तरु के नीचे सिंहासन पर, बैठा था श्रेष्ठी लक्ष्मीधर।
दीन स्वर से बाल-भिखारी, बोला देकर हेला, पुर० ॥२॥
बाप नहीं माता और मैं हूं, अरे सेठ! काफी दुख में हूं।
दयादृष्टि धर फर्जमान कर, दे दो! पैसा-धेला, पुर० ॥३॥

तर्ज—कलदार रुपइया चांदी का

मेरे पास न खुल्ले पैसे हैं, तुझे क्या दूं रुपया पूरा है ।।ध्रुवपद।।
सुनते ही बच्चा ललचाया, गदगद हो मुख से चिल्लाया ।
करवा के रेजगी ला दूंगा, क्या हर्ज जो रुपया पूरा है, मेरे०।।१।।
मैं भाग कहीं नहिं जाऊंगा, ले पैसे फौरन आऊंगा ।
विश्वास करो सुन श्रीधर ने, उसे दे दिया रुपया पूरा है,
मेरे० ।।२।।

तर्ज—गाये जा गीत मिलन के

आशा पैसे की धर के, मुदित मन बन के,
तुरत शिशु दौड़ा है ।।ध्रुवपद।।
आ एक हाट पर बच्चा यों बोला, रुपये की दीजिए खरीज !
आनी लगेगी बट्टे की एक, सुन बच्चा चला है खीझ ।
आगे बढ़ता गया, बट्टा घटता गया है, तुरत० ।।१।।
बट्टा तो देना जायज नहीं हैं, करता यों बच्चा विचार ।
मेले में इत-उत चक्कर लगाते, लग गई काफी वार ।
आखिर उठ गया सेठ, सका नहिं बैठ, तुरत० ।।२।।

तर्ज—रंगवा दे चुंदड़ियां

आया-आया इधर से, बच्चा वापस आया रे,
रुपया तुड़ाकर लाया रे ।।ध्रुवपद।।
आगे सेठ न नजर चढ़ा है, बेचारा चिन्ता में पड़ा है ।
अरे! मालिक किधर सिधाया रे, देकर हाथ में माया रे,
आया० ।।१।।
शिशु ने काफी दौड़ लगायी, किन्तु सेठ की खबर न पाई ।
फिक्र अधिक दिल छाया रे, मैंने यह क्या पाप कमाया रे,
आया० ।।२।।

तर्ज—म्हारी छोटी सी वैरागण नै

अब कैसे मुख दिखलाऊंगा, माता को घर जाके ।
माता को घर जाके, शिशु सोच रहा अकुला के ।।ध्रुवपद।।

चोरी कभी न करना, नहिं झूठ कभी उच्चरना।
कहा माता ने समझा के, माता० ॥१॥
भीख मांगकर खाना, पर विन हक का पावना।
नहिं लेना कभी भुला के, माता० ॥२॥
यों दुख धरता आया, माता से हाल सुनाया।
कहा उसने गोद बिठा के, माता० ॥३॥

तर्ज—पिया घर आजा !

बेटा ! भूल हुई तेरी, अब भी तू खबर लगाने,
जल्दी चला जा ! जा-जा ! जल्दी ॥ध्रुवपद॥
यह रुपया है अपने लिए हराम का-हराम का,
ज्यों-त्यों वापस लौटा दे, नहिं काम का-काम का।
लड़का घर-घर घूम रहा,
जाता बगीचे में भी रुपया ले ताजा, जा-जा ! ॥१॥
लेकिन रुपये वाला सेठ न पाया है, पाया है,
पता लगाते शिशु ने वर्ष बिताया है-बिताया है।
एक दिन रुपया लेकर के,
मेले में आया पाया, श्रेष्ठी विराजा, जा जा! ॥२॥

तर्ज—भलाई देख लेना !

बच्चे ने शीश झुकाया, रुपैया पकड़ाया।
सब किस्सा खोल सुनाया, रुपैया पकड़ाया ॥ध्रुवपद॥
श्रेष्ठिन् ! उस दिन आप पधारे-२
मैं वापस आ नहिं पाया, रुपैया० ॥१॥
भटक रहा हूं एक साल से-२,
नहिं सुख से खाना खाया, रुपैया० ॥२॥
सच्चाई अवलोक सेठ ने,
घर लाकर उसे पढ़ाया, रुपैया० ॥३॥
आगे चलकर रंकतनय वह,
इक योग्य पुरुष कहलाया, रुपैया० ॥४॥

तर्ज—राधेश्याम

इस बच्चे के वर्णन पर, सब सज्जन लोगों ! ध्यान धरो !
नेकी और प्रमाणिकता धर, भवसागर से पार तरो !
दो हजार पांच संवत, आषाढ़ सुदी सातम रविवार !
'मेसरिया' में सद्गुरु-कृपया 'धन' ने जोड़ा यह अधिकार ॥१॥

मणि इक्कानबेवां तल्लीनता

भंगी सेठ की कन्या को देखकर मूच्छित हुआ। भंगिन के निवेदन पर कन्या ने कहा—यदि सात दिन तक तल्लीन बनकर नवकार मंत्र का जाप कर ले तो मैं उससे शादी कर लूंगी। भंगी ने साधु का वेष लेकर जाप किया, जाति स्मरण हुआ और संयमी बनकर वह संसार से पार हो गया।

तर्ज—हीरा मिसरी का

दुनियादारी में, हो जैसे तल्लीन, दुनिया।
तुम बनो! भजन में लीन, दुनिया ।।ध्रुवपद।।
भजन-स्मरण में जुड़ जाओगे, तो तुम ईश्वर बन जाओगे।
दुरित बनेंगे दीन, दुनिया० ।।१।।
विक्रम नगर सेठ धनधारी, पुत्री रूपवती अति प्यारी।
थी जो धर्म प्रवीन, दुनिया० ।।२।।
क्रमशः वह यौवन वय पाई, वर न मिला[1] अति चिंता छाई।
सेठ हो रहा क्षीण, दुनिया० ।।३।।

तर्ज—भलांई देख लेना

मैं[2] दृढ़ ब्रह्मचर्य धरूंगी, पिताजी! देख लेना।
तप से मन शुद्ध करूंगी, पिताजी! देख लेना! ।।ध्रुवपद।।
नाहक क्यों तुम कर रहे चिंता, मैं नीति नहीं बदलूंगी,
पिताजी०।।१।।
योग्य मिलेगा तो नाथ करूंगी, वरना प्रभु नाम स्मरूंगी,
पिताजी० ।।२।।

---

१. चार वर्ष तक।
२. पुत्री का निवेदन।

आत्म-भाव में लीन बनूंगी, परभाव से दूर टलूंगी,
पिताजी० ।।३।।
षड् द्रव्यों की छान करूंगी, नव तत्त्वों में उतरूंगी,
पिताजी० ।।४।।

तर्ज—धर्म की पूंजी कमा ले !

मंजुल[1] महल बनाया, बनाया जिसमें रहती है बालिका ।।ध्रुवपद।।
बैठी थी गोखे में एक दिन, झाड़ू लगाने भंगी खुश मन ।
इधर अचानक आया-आया है, जिसमें० ।।१।।
रूप निरखकर हो गया पागल, फट गई आंखें बन गया निश्चल ।
सारा ही दिवस बिताया-बिताया, जिसमें० ।।२।।
खबर लगाती भंगिन आई, देख दशा पति की घबराई ।
ज्यों-त्यों वहां से हटाया-हटाया, जिसमें० ।।३।।

तर्ज—पिया घर आ जा

घर लाकर के पूछ रही, लेकिन पिया तो मुख से,
बिल्कुल न बोला-बोला, बिल्कुल ।।ध्रुवपद।।
नहिं खाया नहिं पीया और न लेटा है-लेटा है ।
आंख फाड़कर एक ध्यान में बैठा है-बैठा है ।
मंत्रिक कई बुलाए हैं,
लेकिन किसी ने इसका, मर्म न खोला-खोला, बिल्कुल०।।१।।
रूपवती के कारण मेधा बिगड़ रही-बिगड़ रही,
बहुत यत्न करने पर सारी बात कही-बात कही ।
कहता-कहता धरती पर,
बेभान बन के गिरा है, भंगी का चोला-बोला, बिल्कुल०।।१।।

तर्ज—किस फिक्र में बैठे हो

झट रूपवती के घर, भंगिन चल कर आई ।
रोकी है दासी ने, कन्या ने बुलवाई ।।ध्रुवपद।।
लेकिन नहिं कह पाई, छाती तो भर आई ।

---

१. पिता ने व्यवस्था की ।

कन्या ने भंगिन को कुछ, हिम्मत बंधवाई, झट० ॥१॥
(भंगिन) तुम से होकर विह्वल, पतिदेव बने पागल।
स्वामिनि! अब कैसे करूं? विपदा शिर मंडराई, झट० ॥२॥

तर्ज—तरकारी ले लो!

बोली है कन्या, जाकर समझा दे अपने ईश को ॥ध्रुवपद॥
एक शर्त पर शादी करने, है कन्या तैयार।
सात रोज यदि महामंत्र को, स्मर ले बन एक तार रे, बोली०॥१॥
भंगिन ने जा कहा पिया से, सुनकर फूल गया है।
वेष धारकर मुनि का वन में, जाकर ध्यान किया है, बोली० ॥२॥

तर्ज—धर्म पर डट जाना

न लेकिन दूर गई, दिल से शाहकुमारी।
के फिर-फिर दीख रही, दिल में शाहकुमारी ॥ध्रुवपद॥
दे रहा मन ही मन धिक्कार, आखिर जुड़ गया प्रभु से तार।
हृदय में शांति हुई, दिल में० ॥१॥
दूसरे दिन ग्वालों ने मिलकर, प्याला रक्खा पय से भरकर।
पर परवाह नहीं, दिल में० ॥२॥

तर्ज—हो भाभी! तमे थोड़ा-थोड़ा!

हो[1] भाई! आज वन में अनूठे मुनि आये ॥ध्रुवपद॥
ना कुछ वे खाते-पीते, ना कुछ वे बोलते हैं।
बैठे हैं ध्यानी वन के, बिल्कुल ना डोलते हैं।
सुनकर लोगों ने शीश आ झुकाये, हो भाई! ॥१॥
बीते हैं सात वासर, कन्या ने बात सुनी।
दिल से विचारा शायद, होगा वह भंगी मुनि।
आकर हाजिर हूं शब्द यों सुनाये, हो भाई०! ॥२॥

तर्ज—नरम बनो जी नरम बनो!

मिल[2] गई, मिल गई, मिल गई है, चीज अनूठी मिल गई है॥ध्रुवपद॥

---

१. ग्वालों ने शहर में खबर दी।
२. भंगी मुनि का उत्तर।

जिसके आगे तेरा तेज, लगता है बिल्कुल निस्तेज।
लौ समकित की जल गयी है, चीज० ॥१॥
पूर्व जन्म का ज्ञान हुआ, फौरन संयम धार लिया।
दिल से विकृति निकल गई है, चीज० ॥२॥
कन्या ने भी चरण लिया, शुद्ध पाल शिव शरण लिया।
नैया मुनि की तर गई है, चीज० ॥३॥

तर्ज—राधेश्याम

सुनकर यह व्याख्यान सज्जनो! प्रभु-सुमिरन में लीन बनो!
भौतिक प्रेम हटा करके, तुम आध्यात्मिक गुण पीन बनो!
षडधिक संवत दो हजार, भाद्रव कृष्णा वारस रविवार।
सद्गुरु-कृपया 'ध्रांगध्रा' में 'धनमुनि' करता धर्मप्रचार ॥१॥

मणि बानवेवां — सच्चा पारस

राम नाम का मंत्र देकर चेले ने सेठ का बेटा बचा दिया। गुरु ने उलाहना दिया, चेला उदास हुआ। गुरु ने पारस पत्थर देकर कीमत करवाने भेजा। उसकी कीमत दो सेर मूली से लेकर एक अरब तक आंकी गई। आखिर उसे अमूल्य कहा गया। राम का नाम पारसवत् अमूल्य है, इसे दवा के रूप में मत बरतो। यों गुरु ने चेले को समझाया।

तर्ज—हीरा मिसरी का

सच्चा पारस है, परमेश्वर का नाम ।।ध्रुवपद।।
कीमत इसकी कही न जाती, जग में चीज अमूल्य कहाती।
हरने को कष्ट तमाम, सच्चा० ।।१।।
चन्द्रपुरी नगरी के बाहर, तापस विविध सिद्धियों का घर।
था जग में सुयश प्रकाम, सच्चा० ।।२।।
इक दिन एक धनिक वहां आया, लेकिन तापसपति नहिं पाया[1]।
चेले ने पूछा काम, सच्चा० ।।३।।

तर्ज—रहमत के बादल छाये

सुत मेरा मर रहा, रोकर श्रेष्ठी ने गाया।
सुत मेरा मर रहा, वैद्यों ने छेह दिखाया।।ध्रुवपद।।
पास आपके यदि कुछ हो तो, मंत्र-यंत्र प्रभु! मुझको दे दो!
प्रभु[2]-नाम मंत्र बतलाया, सुत०।।१।।
तीन बार लिख जल में धोकर, शीघ्र पिला दो! बस घर आकर।
श्रेष्ठी ने नीर पिलाया, सुत०।।२।।

१. गांव गया हुआ था।
२. राम।

भाग्ययोग से बच गया नंदन, किया सेठ ने गुरु का कीर्तन।
फिर सारा हाल सुनाया, सुत०॥३॥

तर्ज— मेरा दिल तोड़ने वाले

ऋषीश्वर शिष्य पर गुस्से, हुआ सुन हाल यह सारा।
अरे रे मूर्ख ! यह तूने, महामूर्खत्व कर डाला॥ध्रुवपद॥
अनंतानन्त जन्मों के, दुष्कृतों का विनाशक जो।
दवा के तुल्य गिन फेंका, नाम भगवान का प्यारा, ऋषीश्वर०॥१॥
यहां पर तत्त्व मिलता है, धर्म और ईश का सुमिरन।
लिए परमार्थ के करना, त्याग सुख-स्वार्थ की ज्वाला, ऋषीश्वर।

तर्ज—राधेश्याम

शिष्य हो गया दुमना सा, तब गुरु ने पत्थर एक दिया।
पुर में जाकर इसकी कीमत, करवा लाओ ! हुक्म किया॥१॥
गया शहर में मालिनियों ने, मूल्य कहा मूली दो सेर।
कहा कसेरों ने हम देंगे, एक पतीली गुरु-गुण हेर॥२॥
सोनी बोले तोला सोना, अब आया जौहरी-बाजार।
जौहरियों ने पत्थर के आंके हैं रुपये लाख उदार॥३॥

तर्ज—चले आना हमारे अंगना

पत्थर हाथ धर के, चेला मोद भर के,
चल आया राजा के दरबार॥ध्रुवपद॥
पत्थर नरेश के कर में दिया फिर,
जौहरी-समूह शीघ्र बुलवा लिया फिर-२।
पूछा बोलो ! कर जांच, इसकी कीमत क्या सांच ? चल०॥१॥
उनमें से एक ने दस लाख हांके-२।
तत्क्षण अपर ने करोड़ एक हांके-२।
बोला तीसरा तभी, दस कोटि लो अभी, चल०॥२॥
चौथे ने उससे दुगुने कहे हैं,
उछल एक ने झट अरब धर दिये हैं-२।
आखिर एक ने कहा, भैया ! मर्म न लहा, चल०॥३॥

तर्ज—श्री महावीर चरण में सादर

तुम सब थूक बिलो रहे नाहक, पारस यह अनमोला है।
सुनते ही नरपति का दिल डोला है ॥ध्रुवपद॥
बोला अवनीश्वर, करता हूं राज्य की ओफर,
गुरु का न हुक्म यों कह कर।
आकर आश्रम में व्यतिकर खोला है, तुम० ॥१॥
राजा भी आया, गुरुजी को शीश झुकाया,
कहा ले लो ! राज्य सुहाया।
तापसपति हंसकर नृप से बोला है, तुम० ॥२॥

तर्ज—तुमको लाखों प्रणाम

मैंने काम किया, चेले को समझाने, मैंने ॥ध्रुवपद॥
जैसे इसका मूल्य नहीं है, वैसे ही प्रभु-नाम सही है।
सद्‌गुण अमित कहाने, मैंने० ॥१॥
अजब बुद्धि है गुरुवर तेरी, भूल हुई है बेशक मेरी।
(यों) शिष्य लगा गुन गाने, मैंने० ॥२॥
गुरु ने दिया नृपति को पारस, महल गया महाराजा खुश-खुश।
अब भवि तत्त्व पिछानें ! मैंने० ॥३॥

तर्ज—राधेश्याम

सच्चा पारस प्रभु का सुमिरन, सुगुरु-कृपा से मिलता है।
परमारथ के लिए भजो ! प्रभु, तत्त्व अपर झलहलता है ॥
दो हजार षडधिक शुभसंवत, भाद्र-कृष्ण तेरस सुखकार।
सद्‌गुरु-कृपया 'ध्रांगध्रा' में 'धन मुनि' करता धर्मप्रचार ॥१॥

मणि तिरानवेवां — बात का असर

दासी बादशाह का पलंग बिछाकर पांच मिनट के लिए उस पर सो गई। एक घंटा व्यतीत हो गया। बादशाह और बेगम क्रुद्ध हुए, बेगम चाबुक मारने लगी। दासी ३० चाबुक तक तो रोयी, बाद में हंसने लगी। पूछने पर कहा—इस शय्या पर ६० मिनट सोने के बदले ६० चाबुक लगे तो फिर आपका क्या होगा, जो जीवन भर इसी पर सोते हैं। बादशाह को ज्ञान हुआ और वह फकीर बन गया।

तर्ज—और कहीं पर जाओ !

असर बात का अजब बखत पर हो जाता।
एक पलक में भोगी योगी बन जाता ।।ध्रुवपद।।

शास्त्र-श्रवण का अर्थ यही है, सुनने से कल्याण सही है।
किसी समय में तीर ज्ञान का लग जाता, असर० ।।१।।

शहर इटावा था अति सुंदर, सप्रू साहब डिप्टी कलेक्टर।
बजे रात के दश पगचंपी करवाता, असर० ।।२।।

करने वाला लछमन नाई, सप्रू ने खुद बात चलाई।
भैया! बात सुनाओ मनवा ललचाता, असर० ।।३।।

तर्ज—खूने जिगर को पीते रे

प्रभु मैं क्या बात सुनाऊं जी, ज्ञानी हैं आप तो ।।ध्रुवपद।।

सुनूंगा बन हितकामी, कुछ आप सुनायें स्वामी !
मैं तो अल्पज्ञ कहाऊं जी, ज्ञानी हैं० ।।१।।

सप्रू ने जोर लगाया, तब लछमन ने फरमाया।
हुंकारा प्रभु का चाहूं जी, ज्ञानी हैं० ।।२।।

तर्ज—सारी दुनिया में दिन हिन्द में

वात लछमन सुनाने लगा तौर से,
सम्रू लेटा हुआ सुन रहा गौर से ।।ध्रुवपद।।
थे अरव के शहंशाह जग में जवर,
ले रहे थे सुपुण्यों से सुख की लहर ।
थी न वाहर निकलती प्रजा डोर[1] से, वात० ।।१।।
दासी पल्यंक खुश हो रही थी विछा,
ऊंचा-नीचा वरावर रही थी जंचा ।
देखती थी उसे फिर सभी ओर से, वात० ।।२।।

तर्ज—मेरा रंग दे तिरंगी चोला

पल्यंक सजा अतिभारी, छवि थी मन मोहनगारी ।।ध्रुवपद।।
सोने का पल्यंक सुहाया, नरम गदेला था मनभाया ।
रेशम की चद्दर डारी, पल्यंक० ।।१।।
तकिये चारों तर्फ लगे हैं, ऊपर फूल विचित्र विछे हैं ।
इत खिली चांदनी प्यारी, पल्यंक० ।।२।।

तर्ज—दुनिया राम-नाम नहिं जान्यो

दासी सो गई शय्या ऊपर, लेने पांच मिनट की मौज ।।ध्रुवपद।।
वादशाह तो सोते हैं नित, मैं भी जरा-सी सोकर जी ।
देखूं कैसा मजा है आता, यों मन में साहस धर, दासी० ।।१।।
सारे दिन की थकी हुइ थी, सोते ही घुरणाई जी ।
वीत गया है घंटा, वेला शाह-शयन की आई, दासी० ।।२।।
सोने हेतु शाह आये लख, वेगम को वुलवाया जी ।
तुरत उठाया दासी को, दासी के मन भय छाया, दासी० ।।३।।

तर्ज—नरम वनोजी नरम वनो

होश उड़े जी होश उड़े, वेचारी के होश उड़े ।।ध्रुवपद।।
लाल आंख कर पूछा यों, इस शय्या पर सोयी क्यों ?
समाचार सच्चे उचरे, वेचारी० ।।१।।

---

१. आज्ञारूप डोर से ।

पूछा नृप ने क्या दें दंड ? मारें चावुक[1] साठ प्रचंड।
जो न कभी फिर भूल करे, वेचारी० ॥२॥
वादशाह ने स्वीकृति दी, वेगम खुद अब मार रही।
स्वयं शाह गिन रहे खड़े, वेचारी० ॥३॥

तर्ज— तन नहीं छूता कोई

तीस चावुक तक तो रोयी, वाद में हंसने लगी।
शाह की आश्चर्य से मति, अमित डगमगने लगी ॥ध्रुवपद॥
हो गयी पूरी सजा, फिर प्रश्न दासी से किया।
छोड़कर रोना अरी! तू किसलिए हंसने लगी, तीस० ॥१॥
(दासी)हो रहा था दुःख जव तक, रो रही थी नाथ! मैं !
वाद मूरखता तुम्हारी, देखकर पीड़ा भगी, तीस० ॥२॥

तर्ज—सरौता कहां भूल आई

विचार ही में भूल गयी नाथ! मैं तो रोना ॥ध्रुवपद॥
साठ मिनट सोने से चावुक, अगर साठ होते हैं।
तो प्रभु की क्या हालत होगी ? जो हरदम सोते हैं, विचार० ॥१॥
इतनी कोमल वेगम कैसे, चावुक मार सहेगी ?
फिर भी मार रही न समझती, इज्जत कैसे रहेगी, विचार० ॥२॥
वादशाह के तीर लग गया, तुरत प्रयाण किया है।
वना फकीर तपस्या ही में, जीवन झोंक दिया है, विचार० ॥३॥

तर्ज—म्हारा सतगुरु करत विहार

सुनते-सुनते ही सम्राजी, नीचे उतरे छोड़ पलंग ॥ध्रुवपद॥
वाह-वाह रे लछमन भाई! भारी वात सुनाई।
मूल पलंग सभी पापों का, आज समझ में आई, सुनते० ॥१॥
सजा दूसरों को देने में, पता नहीं पड़ता है।
हा ! हा ! जन्म गंवाया मैंने, मनवा थरहरता है, सुनते० ॥२॥
छोड़ दिये हैं सूट-बूट, और छोड़ी है नेक्टाई।

१. वेगम ने कहा।

बने खटखटा बाबा', कंबल एक फटी अपनाई, सुनते० ।।३।।

तर्ज—राधेश्याम

इस वर्णन पर बारीकी से, अरे सज्जनो! दो कुछ ध्यान।
सत्पुरुषों से धर्मकथा सुन, कर लो तुम आत्मिक कल्यान।
दो हजार षडधिक शुभ संवत, भाद्र कृष्ण-चौदस का दिन।
सद्गुरु-कृपया 'आंगआ' में, धर्म-प्रचार कर रहा 'धन' ।।१।।

मणि चौरानवेवां

लॉटरी

रसोईदार के दो लाख आए—यों समाचार-पत्र में पढ़कर लालाजी ने भी २५ रुपये लगाये। तीन महीने बीते, पति-पत्नी दो लाख रुपयों की बात में लीन थे। पत्नी को नींद आयी। सपने में दो लाख आए। सेठ अंधे होकर वेश्या के यहां गए, मोटर से एक्सिडेंट हुआ, सेठ पकड़े गए, सेठानी मिलने गई, दु:खित होकर खंभे से सिर फोड़ा और आंखें खुल गई।

तर्ज—श्री महावीर चरण में

धन है महापाप का कारण, प्रभु ने स्पष्ट सुनाया है।
शास्त्रों में वर्णन काफी आया है ॥ध्रुवपद॥
माया जब आती, यह सच्ची राह भुलाती,
बदमाशी दिल में लाती।
आधुनिक चित्र एक यहां बनाया है, धन०॥१॥
चालीस के नौकर, थे लाला[1] जगत भले नर,
स्त्री विद्या रूप-गणाकर।
नहिं चलता खर्च हृदय अकुलाया है, धन०॥२॥
एक दिन चितातुर, लालाजी पढ़ते पेपर,
अवलोक वदन सुविकस्वर।
पूछा पत्नी ने क्या कुछ पाया है? धन०॥३॥

तर्ज—मेरा दिल तोड़ने वाले

समझने तू नहीं पाती, अनूठी चीज पाई है।
दु:ख-दारिद्र्य खोने की, अजब विधि हाथ आई है ॥ध्रुवपद॥
रसोईदार ने ली थी, टिकिट पच्चीस रुपयों की।
मिले आ लाख दो ऐसी, खबर इसमें सुहाई है, समझने०॥१॥

१. जगत् प्रसाद।

भाग्य खुल जाएगा तेरा, लगा दे लॉटरी तू भी।
मुझे कहता है यों कोई, खुशी अतएव छाई है, समझने०॥२॥
प्रिये ! एक बार कर हिम्मत, मुझे पच्चीस तू दे दे !
एक बाजी लगा देखूं, आज मनसा उमाही है, समझने० ॥३॥

तर्ज—असली आजादी अपनाओ !

विद्या सुनते ही बिलखाई-२ ।
पास रुपैये थे इतने ही, इसी हेतु सकुचाई, विद्या ॥ध्रुवपद॥
पैसा-पैसा कर जोड़े थे, लिए वखत के रख छोड़े थे।
फिर भी पति का आग्रह लखकर, चुपके-सी जा लाई, विद्या०॥१॥
टिकट एक लाला ने ली है, लालच में मति लीन बनी है।
दौड़ रहे आशा के घोड़े, दिल चंचलता छाई, विद्या०॥२॥
मोटर लेंगे बंगला लेंगे, कृष्ण नगर में वास करेंगे।
दास-दासियां रखकर, पूरी विलसेंगे ठकुराई, विद्या०॥३॥

तर्ज—धर्म की पूंजी कमा ले !

तीन महीने गए हैं, लाला की लेकिन, न लगी है लॉटरी ॥ध्रुवपद॥
रात समय में नींद न आती, रोटी भी पूरी नहिं भाती।
फेर रहे हैं माला, लाला की०॥१॥
धन-आशा ने खर्च बढ़ाया, भाड़ा घर का शीश चढ़ाया।
चिंता की जल रही ज्वाला, लाला की०॥२॥
बातें करते आंखें मिली हैं, सुख की अजब बगीची खिली है।
विद्या ने स्वप्न निहाला, लाला की०॥३॥

तर्ज—दिल्ली चलो

तार आया, तार आया, तार आया जी।
इतने में ही लॉटरी का तार आया जी ॥ध्रुवपद॥
पढ़ते ही लाला जी फूले नहीं समाये हैं,
खुल गई है लॉटरी दो लाख आए हैं।
चपरासी ने मांगा कुछ थप्पड़ लगाया जी, इतने०॥१॥
बांट रही हूं घूम-घूमकर खूब मिठाई जी,
लाला ने बाजार जाकर की सजाई जी।
बाबू बनकर वापस आए फिर यों गाया जी, इतने०॥२॥

तर्ज—हो भाभी ! तमे थोड़ा-थोड़ा

हे प्यारी ! नई फैशन की ड्रेश अब धारो ! ॥ध्रुवपद॥
घघरी और ओढ़णी को, फेंको तुम दूर प्यारी !
बन जाओ फैशन-एबल, चढ़ के फिर मोटर गाड़ी।
मौज माया की मस्त हो निहारो ! हे प्यारी ! ॥१॥
मैंने की आनाकानी लाला ने जोर दिया,
आखिर फिर लालाजी के मन-माफिक वेष किया।
धन की मस्ती पै ध्यान जरा डारो ! हे प्यारी ! ॥२॥

तर्ज—चले आना हमारे अंगना

दौड़ा-दौड़ कर के, लाला मोटर चढ़ के।
पास वेश्या के पहुंचे मन रंग ॥ध्रुवपद॥
मदिरा के प्याले खुश हो पिये हैं,
वेश्या को लेकर विदा फिर हुए हैं-२।
यह देख कर के, मैं तो बोली चिढ़ के, पास०॥१॥
हा ! हा ! अरे नाथ ! क्या कर रहे हो ?
किस तर्फ ऐसे कदम भर रहे हो-२।
मुझे छोड़ दो यहां ?, जाओ मर्जी हो जहां, पास०॥२॥

तर्ज—ज्ञानी गुरु अमने संभार जो !

एक्सिडेंट मोटर से हो गया, कुचले गये युग बाल रे ॥ध्रुवपद॥
वेश्या हुई गुम पकड़ा है सेठ को,
गई थाने में मैं हो बेहाल रे[1], एक्सिडेंट०॥१॥
बोले सिपाही वह सेठ तो है,
पापी महा विकराल रे, एक्सिडेंट०॥२॥
पिस्तोल से फिर मारा सिपाही,
(मैं) अरे अब होंगे भैया ! क्या हाल रे, एक्सिडेंट०॥३॥
(सिपाही) फांसी मिलेगी होना है और क्या,
(मैं) अरे खरचूं जो लाखों का माल रे, एक्सिडेंट०॥४॥
(सिपाही) अब छूटने का अवसर नहीं है,

---

१. पुलिस थाने में।

(सुन) प्रगटी विरह की झाल रे, एक्सिडेंट०॥५॥
हा ! हा ! न लगती जो आज लॉटरी,
तो] लगता क्यों इतना जंजाल रे, एक्सिडेंट०॥६॥

तर्ज—जीवन पल-पल मा जाय रे

पड़ रही आंसू की धार, हा ! हा ! करती अपार,
आई मिलने को चलकर कैद में ॥ध्रुवपद॥
बेड़ी पैरों में हाथों में हथकड़ी,
देख विह्वल हो पलभर रही खड़ी।
(फिर) फोड़ा खंभे से सिर, खुल गई आंखें इधर, आई०॥१॥
देखा लाला तो खटिया पै सो रहा,
हा ! हा ! करता है पागल-सा हो रहा।
झर रहे आंसू अमाप, करता मुख से यों जाप, आई०॥२॥

तर्ज—सुनादे-३ किसना !

लगा दे ! लगा दे ! लगा दे भगवान !
देरी मत कर लॉटरी लगा दे भगवान ! ॥ध्रुवपद॥
संकट से पिंड छुड़ा दे ! पूरण कर दिली मुरादें-२।
लॉटरी का टेलीग्राम ला दे भगवान ! देरी०॥१॥
विद्या ने कहा चमक कर, नहिं-नहिं-नहिं प्रभु ! अब बशकर-२।
है जैसी ही जिंदगी निभा दे भगवान ! देरी० ॥२॥

तर्ज—बन जोगी मन भटकाई ना !

प्यारी ! क्यों पागल बन रही है ?
मुख से क्यों नहिं-नहिं कर रही है ॥ध्रुवपद॥
विद्या ने स्वप्न सुनाया है, पति को ज्यों-त्यों समझाया है।
अब देखो ! कैसी माया है,
जिसके हित प्रजा भटक रही है, प्यारी ! ॥१॥
षडधिक द्विसहस्र वर्ष आया, 'ध्रांगध्रा' पुर में मन भाया।
'धन मुनि' ने यह वर्णन गाया,
भाद्रव[1] की मावस चल रही है, प्यारी ! ॥२॥

---

१. वि० सं० २००६।

मणि पंचानवेवां   वचन का तीर

लोभी राजा के दान देने से इन्कार होने पर मंत्री की सलाह से नट राजा ने नाटक किया। पैसा नहीं मिला। नटनी के उत्तर में ज्योंही नट ने 'बहुत गई थोड़ी रही' गाया, रत्नकंबल आदि बहुमूल्य चीजों की वृष्टि हुई। तत्त्व पाकर लोभी राजा को भी ज्ञान हुआ। कहानी पढ़कर मनन करने लायक है।

तर्ज—अखियां मिला के

लगता है ऐसा, न कह सकें जैसा, तीर वचन का ।।ध्रुवपद।।
एक-एक वचनों से पापी, पापों से फौरन फिरते।
पड़ते-पड़ते ही योगी योग में, जा वापस जुड़ते, लगता० ।।१।।
नटपति के एक वचन से, चारों के दिल बदले थे।
सुनना सब सज्जन लोगों! पाप से कैसे टले थे, लगता०।।२।।

तर्ज—पिया घर आजा!

लोभी नृप की नगरी में, फिरता विदेशों से एक,
नटराज आया-आया, नटराज आया ।।ध्रुवपद।।
किन्तु कृपण राजा ने नहिं बोलाया है-बोलाया है,
बेचारा मंत्री के मंदिर आया है-आया है।
मंत्रीश्वर ने फरमाया,
देना और मरना नृप ने, तुल्य बनाया-आया, नटराज०।।१।।
अगर कहे तो पडह शहर में बजवा दूं-बजवा दूं,
राजमहल में नाटक तेरा रचवा दूं-रचवा दूं।
(पर) भाग्य भरोसे धन मिलना,
साहस बढ़ाकर नट ने हुंकार गाया-आया, नटराज०।।२।।

तर्ज—अय बाबु जी !

मिल के राजा से पड़हा बजाया जी, मंत्रीश ने,
वृंद लोगों का नाटक में आया जी, मंत्रीश ने ॥ध्रुवपद॥
सोने के आसन पै बैठा नरेश्वर,
नटी नाचती है बजाता नटेश्वर।
खेल अच्छे से अच्छा दिखाया जी, मंत्रीश ने० ॥१॥

नाटक का एक अद्‌भुत चित्र (मास्टर मोहन के शब्दों में)

छिछि छुम, छिछि छुम, छुम छननननननन,
रमकत झमकत पगपे जन,
घुम-घुम घिरि-घिरि थ्रिकि-थ्रिकि नाचे गन,
ताथई-ताथई कर बहुत मगन ॥ध्रुवपद॥
किड़ किड़ झांई, किड़ किड़ झांई बाजे झांझ मोर चंग,
लगी तबलों पर थाप पड़न।
ढोल डफ मृदंग सननन सारंग,
डमकत डमरू नाचत गन।
घुम घुम घिरि-घिरि बाजे गति घूंघरों की,
चोरासी नेउर करें ठननन।
नाद घड़ियाल खरताल करताल बाजे,
झालर घंटा घनननन।
लप-झप गणपति तान तोडेते,
चौसठ वाजे लगे बजन। घुम-घुम ॥१॥
सितार तंबूरा मोर चीकारा इकतारा बीन,
खंजरी धारा कानु वाजे कुनन-कुनन।
हुडंगा नागड़िया किंगड़ी मुरली सिटकी चिटकी ताली,
अलगुंजा और वंशी बाजे सनन-सनन।
सरणाई गरणाई सीटी सरोद रब्बाब पाल,
थोड़ गिड़-गिड़ थब्ब वाजे लगे हैं वजन।
सखावज पखावज ताली मेरी भेरी भीपी धुन्नवी,
इन्द्रनगारे तोरे लगे गरजन।

श्याम का नरसिंघा है जी ढोलक मजीरा चड़ा,
तबले और तासे सब लगे खड़कन। घुम-घुम० ॥२॥
असकंभे तुंतुमने दंभे दंडे जलतंरगे बाजे,
तुंबड़ियां गुड़ गुड़िया खूब मथा मथन।
डमडमी-डुगडगी ठिकरी शीतल दंडी रोशन चौकी,
और रब्बानी तोरी लगी बुधुकन।
चंग फिरंगा चंग, तुक्कन गुरु का शायर,
फड़ में बाजे गावें वो सब गिन-गिन।
दसनावें का धौंसा सुनकर होकर अपने मन में राजी,
खिल-खिल हंसते श्रोता जन।
लोक कोक सब ही पूछें, किसने दिन्ही गनकु ताली,
और किसने सिखाया गन को नृत्य करन। घुम-घुम० ॥३॥
सब बाजन में मोहनगारी बाजती बांसुरिया,
तीस रागिनी छः राग गावे सुजन मोहन।
कान्हड़ा केदारां सारंग तल्लाना नट दीपक सौरठ,
झब्बाब रब्बाई और विहाग एमन।
भैरवी अड़ियाना टोडी बंगाली मल्हार मरुआ,
पिस्तोल चोताला ध्रुपद न्यारी गुनियन।
सब्बाव रब्वायी जैजैवंती जे हिंडोल गावे,
हिरणी ऐसी तान लागी तीन भवन।
गावें गोरी और प्रभाती, खेट राग कर बिल्लाहन। घुम-घुम० ॥४॥

तर्ज—अय बाबुजी !

चला रात भर खेल प्रगटा उजाला,
लेकिन किसी ने न पैसा निकाला।
हो हतोत्साह नटिया ने गाया जो, मंत्रीश ने० ॥१॥

तर्ज—माढ़

सब गुण लायक! हो म्हारा नायक! अब नहिं नाच्यो जाय ॥ध्रुवपद॥
रात घड़ी भर रह गयी रे, पंजर थाक्यो प्राय।
नटिया कहै सुण नायका ! टुक, मधुरी ताल बजाय, सब० ॥१॥

(नटराज) बहुत गयी थोड़ी रही है, थोड़ी भी अब जाय।
थोड़ी-सी देरी के कारण, ताल में भंग न थाय।
हे सुन प्यारी! सीख हमारी, आलस तन मत लाय, सब० ॥२॥

तर्ज—चले आना हमारे अंगना

नट का गाना सुन के, बदले भाव मन के,
किया कंवल का दान ऋषि ने ॥ध्रुवपद॥
सवा लाख मोहरों की थी रत्नकंवल,
राजा के दिल में मची देख हलचल-२।
युवराज ने इधर, कुंडल दे दिए प्रवर, किया० ॥१॥
महाराज कुमारी ने मोती का हारवर,
दिया है नटी को गले से निकालकर-२।
अच्छी मिल गयी रकम, खेला हो गया खतम, किया० ॥२॥

तर्ज—हीरा मिसरी का

अचंभित राजा ने, मुनि से किया सवाल ॥ध्रुवपद॥
कैसे तुमने दान दिया यह? इसने मुझको ज्ञान दिया यह।
नहिं समझा नरपाल, अचंभित० ॥१॥
तब मुनि बोले बहुत वर्ष से, पाल रहा था चरण हर्ष से।
डोल गया इहकाल, अचंभित० ॥२॥
नट-वाणी से बदल गया मन, अब जीना है थोड़े ही दिन।
क्यों तोड़ूं चरण विशाल, अचंभित० ॥३॥
इसी खुशी में दान दिया है, अथ निज सुत से प्रश्न किया है।
वह बोला तत्काल, अचंभित० ॥४॥

तर्ज—मेरा दिल तोड़ने वाले

मेरा दिल हो गया मैला, पिताजी! राज्य के खातिर।
तुम्हारा खून करने को, सझा था राज्य के खातिर ॥ध्रुवपद॥
चुभी दिल में नटेश्वर की, परन्तु ज्ञानमय गाथा।
विचारा बाप हैं बूढ़े, अरे मूरख रहा क्या कर! मेरा०
लिए थोड़े दिनों के तू, न ले बदनाम दुनिया में
फिरा दिल पाप से फौरन, इसी से दे दिए कुंडल, मेरा०

चकित-सा हो गया राजा, किया फिर प्रश्न पुत्री से।
दिया क्यों हार मोती का, सुना दे बात तू सत्वर, मेरा० ।।३।।

तर्ज—हो भाभी! तमे थोड़ा-थोड़ा

हो तात! सुनो सच्चा-सच्चा हाल बतलाऊं ।।ध्रुवपद।।
मैं शादी के योग्य हुई, तुमने न ध्यान दिया।
पैसों के लोभी बनकर, अब तक न विवाह किया।
मैंने सोचा था भाग कहीं जाऊं, हो तात! ।।१।।
मन्त्री के पुत्र से फिर, दिल को मिलाया मैंने।
रत्नों की चोरी कर के, भगना जंचाया मैंने।
एक अक्षर भी झूठ नहिं गाऊं, हो तात! ।।२।।

तर्ज—आजा-३ मेरे

सुनकर-सुनकर, सुनकर के नट का गीत, मैंने मन में विचारा।
थोड़े दिनों के हैं पिता, कर कुल को न कारा ।।ध्रुवपद।।
पीछे से भाई जी, करेंगे शीघ्र ही शादी-२।
निर्मल हुआ मन इसलिए, गल-हार निकारा, थोड़े० ।।१।।
सुनकर नरेश्वर भी बना तत्काल वैरागी-२।
राज्य दे सुत को चरण ले, जीवन सुधारा, थोड़े० ।।२।।

तर्ज—राधेश्याम

ऋषि ने भी फिर लेकर संयम, बेड़ा अपना पार किया।
देखो भाई! एक वचन ने, चारों का उद्धार किया।
पर सावद्य जिनाज्ञा बाहर, समझो! आज्ञा में निरवद्य।
'ध्रागंध्रा' में[1] सद्गुरु-कृपया 'धनमुनि' का गाना अनवद्य ।।१।।

---

१. वि० सं० २००६ भादवा सुदी २।

मणि छियानवेवां — अमानत

बुढ़िया ने जेवर की पेटी सेठ के यहां रखी। तीर्थ से आने पर सेठ ने वापस देते हुए संभालने के लिए कहा। उसने नहीं संभाली और लाकर घर में रख दी। होली पर ज्योंही पेटी खोली तो जेवर की जगह कंकर-पत्थर थे। बहुत चिल्लाई, सेठ ने धक्का देकर निकाली। बुढ़िया ने शाप दिया, सेठ का दीवाला निकला, पुत्र-पुत्रवधू मरे। आखिर सेठ ने उसे कुछ ले-देकर सन्तुष्ट किया।

तर्ज—दुनिया में बाबा !

किस ही की अमानत, भैया! न कब ही दबाना !
यह पाप बड़ा है, अन्तर ज्योति जगाना ॥ध्रुवपद॥
दिल को लालच में न फंसाना, चार दिनों का यहां ठिकाना।
फिर सबको मर जाना, किस ही की० ॥१॥
हजम अमानत जो करते हैं, बुरी मौत आखिर मरते हैं।
है वर्णन एक पुराना, किस ही की० ॥२॥
गाम खरेड़ी विधवा[1] बाई, यात्रा करने हेतु उमाही।
साथ मिला मनमाना, किस ही की० ॥३॥
फिर भी हो चिन्तातुर बैठी, कहां रखूं जोखिम की पेटी।
नाजुक आज जमाना, किस ही की० ॥४॥

तर्ज—अय बाबुजी !

याद इतने में बाई को आया जी, कल्याण सेठ।
जिसका लड़का था नटवर सुहायाजी, कल्याण सेठ ॥ध्रुवपद॥
करता था लाखों रुपैयों का धंधा,
था गांव में वह सुधर्मिष्ठ बन्दा।
राज्य में भी बड़ा नाम पाया जी, कल्याण सेठ० ॥१॥

---

१. रलियात नामक।

उससे मिली शीघ्र रलियात बाई,
जोखिम की पेटी भी वह साथ लाई।
हाल सारा ही अपना सुनाया जी, कल्याण सेठ० ॥२॥

तर्ज—रहमत के बादल छाये

सुनकर कल्याण ने, रखने की नां फरमाई ॥ध्रुवपद॥
मैं न धरोहर रखता बाई! पैदा इसमें है नहिं पाई।
त्यों जोखिम जबर कहाई, सुन० ॥१॥
सेठ! कहो अब मैं कहां जाऊं, बिना भरोसे किसे भोलाऊं।
तुम ही हो रक्षक भाई! सुन० ॥२॥
(सेठ) खैर! माल तेरा दिखला दे! एक पत्र पर सब लिखवा दे!
सुनकर हंस बोली बाई, सुन० ॥३॥

तर्ज—श्री महावीर चरण में

मन में है मेरे एतबार, लिखाने की न जरूरत है।
तुम हो सच्चे साहूकार, लिखाने की न जरूरत है ॥ध्रुवपद॥
मेरे दो पैसे, ले करके भगो तुम कैसे?
कह करके मुख से ऐसे।
रलियात सिधाई करने तीरथ है, मन० ॥१॥
नटवर को बुलाकर, बुढ़िया की बात सुनाकर,
कहा रक्खो पेटी अंदर।
रख दी नटवर ने हो मन हर्षित है, मन० ॥२॥

तर्ज—जीवन पल-पल मां जाय रे

मास बीते हैं चार, दिल में खुशियां अपार,
यात्री आए हैं तीरथ धाम से, वापस आए हैं तीरथ धाम से ॥ध्रुवपद॥
बातें तीर्थों की रलियात कर रही,
फूली घर-घर में रलियात फिर रही।
न रही पेटी भी याद, सुमरी सप्ताह बाद, यात्री० ॥१॥
लेने आयी है सेठ की दुकान पर,
दी है अन्दर से फौरन निकाल कर!
करके श्रेष्ठी विचार, बोला कर ले! संभाल, यात्री० ॥२॥

दोहा

पूर्ण भरोसा है मुझे, बोली हंस रलियात ।
कहा दुबारा सेठ ने, तू न समझती बात ।।१।।

तर्ज—नरम बनो जी नरम बनो !

बदल गया है ! बदल गया, आज जमाना बदल गया ।।ध्रुवपद।।
अपने सुत का भी तिलभर, है न भरोसे का अवसर ।
न्याय जगत से निकल गया, आज० ।।१।।
कारण नटू जुआरी था, और काफी व्यभिचारी था ।
इसी हेतु से साफ कहा, आज० ।।२।।
तो भी बुढ़िया कर विश्वास, ले आयी पेटी सोल्लास ।
रक्खी धर नहिं गौर किया, आज० ।।३।।

तर्ज—धर्म की पूंजी कमा ले !

होली की तिथि आयी, बाई ने पेटी देखी है खोलकर ।।ध्रुवपद।।
हा ! हा! कर बेहोश हुई है, फिर श्रेष्ठी के निकट गई है ।
कह रही माया चुराई, बाई० ।।१।।
गांव की जनता काफी आई, सबने इसको झूठी बनाई
बेचारी चिल्लाई, बाई० ।।३।।

तर्ज—तकदीर बनी

अब किससे कहूं, मेरी कौन सुने ! इस पापी ने अत्याचार किया ।
सब माल लिया, बदनाम दिया,
मेरा जीना भी हा ! बेकार किया, अब ।।ध्रुवपद।।
धनी जाना गुनी जाना, बड़े धर्मिष्ठ पहचाना ।
विश्वास किया न तलास किया,
इसने तो सभी धन पार किया, अब० ।।१।।
नहीं खाती नहीं पीती, नहीं नहाती नहीं धोती ।
सोती भी नहीं, रोती है सही,
किस ही ने न किंतु विचार किया, अब० ।।२।।

तर्ज—पूनम नीं रात ऊगी

सेठजी के घर पर, आकर करती रोज पुकार रे,
हो सत्यानाश तेरा हो सत्यानाश !
हाय रे कल्याण! जीवन कर डाला बेकार रे, हो सत्यानाश ।।ध्रुवपद।।
सुत तेरा मरजाओ ! पीछे पुत्रवधू भी जाओ।
तेरे पास रहो मत तार रे, हो सत्यानाश० ।।१।।
विजलियां पड़ जाओ, वदला पापों का दिखलाओ!
मेरे फिर-फिर ये उद्गार रे, हो सत्यानाश० ।।२।।
तेरे घर से सारा, मेरा माल गया है प्यारा,
तो भी करता तू न संभाल रे, हो सत्यानाश० ।।३।।
ऐसे खूब पुकारी, फिर भी श्रेष्ठी ने न विचारी,
मन में छाया अहंकार रे, हो सत्यानाश० ।।४।।

तर्ज—आजादी का दीवाना

व्यापार में कल्याण के नुकसान आया है।
हार्ट फेल हो नटवर भी परलोक सिधाया है ।।ध्रुवपद।।
महलों के बदले रही, छोटी-सी झोंपड़ी ।
सेठ जी के मन में दुःख, अपार छाया है, व्यापार० ।।१।।
रात के बारह बजे थे, चमकी है बहू ।
बुढ़िया डराती है मुझे, सब तन कंपाया है, व्यापार० ।।२।।
सासू बोली दुष्टा ने, बरबाद कर दिए ।
फिर भी पीछा नहीं छोड़ती, यह क्या माया है ? व्यापार० ।।३।।

तर्ज—किस फिक्र में बैठे हो ?

सासू जी ! मत बोलो, सच्ची थी बेचारी ।
बेटा ही तुम्हारा था, बेशक अत्याचारी ।।ध्रुवपद।।
रक्खी पेटी जिस दिन, जूए में उस ही दिन ।
हारा धन आ मांगी, मेरी रकमें प्यारी, सासू जी ! ।।१।।
मैंने इन्कार किया, तब इसका माल लिया।
मैंने भी स्वारथवश, वार्ता नहीं विस्तारी, सासू जी! ।।२।।

बेचारी चिल्लाती, सुख से नहिं सो पाती।
उस ही के पापों ने, की है अपनी ख्वारी, सासू जी! ॥३॥

तर्ज—हीरा मिसरी का

हाय[1] गरीबों की, कभी न खाली जाती।
हाय गरीबों को, भस्मीभूत बनाती ॥ध्रुवपद॥
कहते-कहते करके कड़ाका, पड़ी बीजरी हुआ धड़ाका।
गई वह चिल्लाती, हाय० ॥१॥
सच्चा भेद सेठ ने पाया, बेचारा मन में पछताया।
लगी धड़कने छाती, हाय० ॥२॥
बुढ़िया बाई झट बुलवाई, जो कुछ था दे शांत बनाई।
(अब) लो शिक्षा मनभाती, हाय० ॥३॥

तर्ज—राधेश्याम

साथ किसी के दगा न करना, फिर-फिर नर अवतार नहीं
जो बोओगे वही मिलेगा, संशय का संचार नहीं।
दो हजार षडधिक शुभ संवत, भाद्रव सित तिथि तीज उदार।
सद्गुरु-कृपया ध्रांगध्रा में 'धनमुनि' करता धर्म-प्रचार ॥१॥

---

१. तुलसी हाय गरीब की, कभी न खाली जाय।
मुए पशु की चाम सों, लोह भस्म हो जाय ॥१॥

मणि सत्तानवेवां   आज की वहुएं

मणि सेठ ने दोनों पुत्र पढ़ाये और व्याहे। व्याहते ही वे बंबई चले गए। सेठानी मर गयी किंतु बेटे-बहू नहीं आये। बड़े बेटे को बीमार सुनकर सेठ बंबई गया। दो-चार दिनों में ही बडी बहू ने नाक में दम ला दिया। सेठ छोटी के पास गया, उसने ऐसा ताना मारा कि सेठ को आत्महत्या करनी पड़ी।

तर्ज—हीरा मिसरी का

मतलबी दुनिया में, है मतलब का प्यार ।।ध्रुवपद।।
पिता ! पढ़ाते पाल-पोष कर, खर्च हजारों धर सिर पर।
सुख की आशा धार, मतलबी० ।।१।।
लाड़कोड़ से फिर परणाते, वहुओं को लाकर हुलसाते।
किंतु कहां सुख सार, मतलबी० ।।२।।
बहुएं कड़ुवे बचन सुनातीं, जल जाती बुड्ढों की छाती।
सुनो! एक अधिकार, मतलबी० ।।३।।

तर्ज—रहमत के बादल छाये

छोटे से गाम में, मणि सेठ एक कहलाया।
छोटे-से गाम में, सबने मिल मुख्य बनाया।।ध्रुवपद।।
जीवन-जगमोहन दो लड़के, निकले कॉलेजों से पढ़ के।
हर्षित हो व्याह रचाया, छोटे० ।।१।।
सविता-विमला बहुएं आईं, वर्ष न पूरी रहने पाईं।
जा बंबई कैंप लगाया, छोटे० ।।२।।
दोनों लड़के थे वहां नौकर, बूढ़ा-बुढ़िया रहते थे घर।
बुढ़िया ने छेह दिखाया[1], छोटे० ।।३।।

---

१. मर गई।

तर्ज—मत बांधो गठड़ियां अपयश की

एक भी पुत्र सेवा में आया नहीं,
फर्ज आकर के अपना बजाया नहीं, एक भी ।।ध्रुवपद।।
वृद्ध हाथों से रोटी पकाता सदा,
किंतु किस ही से कुछ भी जताया नहीं, एक भी० ।।१।।
हो गए पुत्र पुत्रों के घर में पर,
वृद्ध ने तार भर चैन पाया नहीं, एक भी० ।।२।।
मौज बोम्बे में करते हैं बेटे-बहू,
बाप घर में अकेला लखाया नहीं, एक भी० ।।३।।
कार्ड तक भी न लिखने की फुर्सत उन्हें,
बाप ने किंतु दिल को हटाया नहीं, एक भी० ।।४।।

तर्ज—किस फिक्र में बैठे हो

जीवन अस्वस्थ हुआ, किस से पता पाया ।
सुनते ही बुड्ढा तो, मन में अति घबराया ।।ध्रुवपद।।
फौरन एक पत्र दिया, पीछे से प्रयाण किया ।
स्टेशन पर दादे को, लेने पोता[1] आया, जीवन० ।।१।।
(दादा)जीवन का हाल कहो! (पोता)देखो घर जाके अहो!
क्रीकेट[2] में जाना है, दादा सुन दहलाया, जीवन० ।।२।।
टांगे में तुरत चढ़े, आकर के घर उतरे[3] ।
आए हैं प्यारे ससुर, एक बाई ने गाया, जीवन० ।।४।।

तर्ज—नरम बनो जी नरम बनो !

गिर गया, गिर गया, गिर गया है,
हीरा इनका गिर गया है, सविता ने उत्तर दिया है, हीरा ।।ध्रुवपद।।
पल्ला छुड़ाकर यहां आए, फिर भी छुटकारा नहिं पाये ।
सुन बुड्ढा थरहर गया है, हीरा० ।।१।।

---

१. विन्नू ।
२. तुम आज क्यों आए ।
३. भुलेश्वर में ।

चल आया जीवन की ओर, आंसू आए लख कमजोर ।
(वहू) क्या कोई यहां मर गया है ? हीरा० ॥२॥
जो इनके ज्यादा होगा, तो फिर मेरा क्या होगा ?
बुड्ढा चुप्पी भर गया है, हीरा० ॥३॥
ठीक हुआ कुछ जीवणलाल, फेल हुआ इत उसका लाल ।
बैठा आंसू झर रहा है, हीरा० ॥४॥

तर्ज—मेरा दिल तोड़ने वाले !

कहा दादे ने पोते से, करूं चेष्टा अभी जाकर ।
सिफारिश से तुझे वेटा !, पास कर दे कदा मास्टर ॥ध्रुवपद॥
लगा कहने तुरत विन्नू, तुम्हें नहिं बोलना आता ।
यहां है बंबई तुम हो, जंगली ग्रामवासी नर, कहा० ॥१॥
इसी से तो हुए नापास, तुरत बुड्ढे ने कह डाला ।
लड़ाई हो गयी काफी, रहा आखिर में चुप्पी भर, कहा० ॥२॥
इधर बकने लगी सविता, कमाऊ एक है केवल ।
मुफ्त में खा रहे कितने, चलेगा ऐसे कैसे घर, कहा० ॥३॥
विनय को साथ लेकर के, वृद्ध विमला[1] के घर आया ।
किया सत्कार विमला ने, पिलाया दूध प्याला भर, कहा० ॥४॥

तर्ज—हो भाभी ! तमे थोड़ा-थोड़ा

हे काकी! अब जाता हूं मैं तो घर मेरे ॥ध्रुवपद॥
विन्नू ने जाते-जाते काकी से ऐसी कही,
बोली है काकी दादा क्या अब रहेंगे यहीं ?
हां ! हां ! रहने आए हैं घर तेरे, हे काकी! ॥१॥
बकने लगी है विमला, अंदर जा मुख से ऐसे ।
आई घर भारी आफत, निकलेगा वक्त कैसे ?
नेत्र बुड्ढे के आंसुओं ने घेरे, हे काकी० ॥२॥

तर्ज—अलबेला छैला !

यों रोते-रोते, खाने का समय हुआ है ॥ध्रुवपद॥

---

[1] छोटी बहू।

तुरत बुलाने आई विमला, बेटी ! अभी न नहाया ।
प्रभु का भजन किया नहिं बिल्कुल, ससुरे ने फरमाया, यों० ।।१।।
बंबई में ये ढोंग न चलते, फिर भी थे यदि करने ।
तो पैसों से प्रेम हटाकर, क्यों न नई तुम परणे, यों० ।।२।।
तीर वचन का लगा जोर से, विमला इधर गई है ।
ली झंपा गिर मरा सड़क पर, ऐसी दशा हुई है, यों० ।।३।।

तर्ज—राधेश्याम

यह दुनिया का खेल देखकर, धर्म जवानी में कर लो !
ममता मत रक्खो! स्वजनों में, ध्यान निजात्मा का धर लो !
दो हजार षडधिक शुभ संवत, भाद्रव शुक्ल चतुर्थी-दिन ।
'ध्रांगध्रा' में सद्गुरु-कृपया, तत्पर संयम में 'मुनिधन' ।।१।।

मणि अठानवेवां घड़ा

गुरु की कटु शिक्षा से हैरान होकर चेला भागने लगा। पानी लाते समय घड़े ने अपनी जीवन-कहानी सुनाकर उसे स्थिर किया। कल्पनामय घड़े का दिया हुआ ज्ञान वस्तुतः स्तुत्य एवं आदरणीय है।

तर्ज—और कहीं पर जाओ !

बिना कष्ट के कभी बड़प्पन नहिं मिलता।
जिस्म कटा कर ही, हीरा हीरा बनता ॥ध्रुवपद॥
बीज खुदी को है जब खोता, तभी आम का दरखत होता।
कहलाता है भूषण, सोना जब गलता, बिना० ॥१॥
कपड़ा खंड-खंड ही होकर, बनता है पोशाक मनोहर।
तन पिसवाकर सुरमा, आंखों में रमता, बिना० ॥२॥

तर्ज—जोगी मन भटकाई ना।

वन में एक योगी रहता था, संन्यासधर्म निर्वहता था ॥ध्रुवपद॥
शिष्य अनेक बनाये थे, लेकिन टिकने नहिं पाये थे।
आ-आकर कई सिधाये थे, कारण वह सच्ची कहता था, वन०॥१॥
शिष्य एक था जिज्ञासु, अध्यात्मिकता का सुपिपासु।
शिवमंदिर का था अभिलाषु, वह गुरु के कटु वच सहता था, वन०॥२॥

तर्ज—रखियां बंधाओ भइया !

चेले ने ज्यों-त्यों वत्सर, एक बिताया है।
एक बिताया है, अब अकुलाया है ॥ध्रुवपद॥
खाने-पीने में, पढ़ने-लिखने में।
फिर-फिर झिड़कता बाबा, मन न सुहाया है, चेले० ॥१॥

आखिर हार गया, भगने तैयार हुआ ।
अद्भुत[1] घड़े ने उसको, ज्ञान सुनाया है, चेले० ॥२॥

तर्ज—मेरा दिल तोड़ने वाले !

लगा है पूछने घट यों, अरे क्यों भग रहा भाई ?
सीख सुन धैर्य अपना ले, अरे क्यों ॥ध्रुवपद॥
बिना तकलीफ के कब ही, नहीं पद उच्च मिलता है ।
देख मैं स्वयं मिट्टी था, गहन में स्थायिका पाई, लगा० ॥१॥
कुलालों ने कुदाला ले, मुझे आ जोश में खोदा ।
उठाकर बाद गदहों की, सवारी हाय ! करवाई, लगा० ॥२॥

तर्ज—आवी मौज मुंबई नीं

फिर कर ढेरी पानी डार, पीटा खूब लाठियों से ।
खूब लाठियों से, कूटा खूब लातों से ॥ध्रुवपद ॥
लुगदा-सा कर डाला, तो भी मैंने चूं न निकाला ।
चुपके बैठा समता धार, पीटा० ॥१॥
फिर ले चाक चढ़ाया, मुझको चक्राकार फिराया ।
काटा फिर लेकर तलवार, पीटा० ॥२॥
फिर निर्दय बन पीटा, डाला आगी में बन धीठा ।
आखिर ला रक्खा बाजार, पीटा० ॥३॥

तर्ज—हीरा मिसरी का

ग्राहक लोगों ने, फिर बहुत टक्करें मारी, ग्राहक ।
मैंने समता धारी, ग्राहक ॥ध्रुवपद॥
सब कुछ सहकर सिर चढ़ पाया, जीवन रक्षक घट कहलाया ।
(क्यों) तू ने हिम्मत हारी, ग्राहक० ॥१॥
घटवाणी सुन ज्ञान हुआ है, चेले को निज भान हुआ है ।
बिगड़ी बुद्धि सुधारी, ग्राहक०॥२॥

---

१. घड़े को सिर पर लेकर चेला नदी से जल ला रहा था ।

आकर गुरु के चरण लगा है, अब अंतर वैराग्य जगा है।
बना सुगति अधिकारी, ग्राहक० ॥३॥

तर्ज—राधेश्याम

प्रवर कल्पनामय यह वर्णन, सुन गुरु की कटु सीख सहो !
आत्मदमन कर लख शिवदायी, पल-पल गुरु की दया चहो !
दो हजार षडधिक शुभ संवत, संवत्सरी पर्व के दिन।
'ध्रांगध्रा' में सद्गुरु-कृपया, हर्षित है 'धनमुनि' का मन ॥१॥

मणि निनानवेवां — अज्ञानी ग्वाल

ग्वाले ने मित्र सोनार से एक कड़ों की जोड़ी घड़वाई। धूर्त सोनी ने एक सोने की और एक पीतल की—ऐसे दो जोड़ियां घड़ीं। सोने वाली देकर ग्वाले को लोगों के पास भेजा, सब ने कहा—असली सोना है। फिर पीतल वाली दिखलाने पर कहा—यह पीतल है लेकिन मूर्ख ग्वाला जीवन भर उसे सोना समझता रहा क्यों कि उसके दिल में यह जंचा दी गयी थी कि सोनी के साथ दुश्मनी के कारण ही लोग उसे पीतल कह रहे हैं।

तर्ज—और कहीं पर जावो !

धूर्तों के भरमाये, राह नहीं आते।
मूर्ख ग्वाल सम, कभी समझने नहिं पाते ।।ध्रुवपद।।
ग्वाल एक गौ चरा रहा था, भाग्ययोग धन कमा रहा था।
स्वर्णकार से करता था मिलजुल वातें, धूर्तों के०।।१।।
सोनी था वह वड़ा हरामी, ठगविद्या में पूरा नामी।
मित्र वन गया ग्वाल, सदा आते-जाते, धूर्तों के०।।२।।

तर्ज—दुनिया राम-नाम नहिं जाण्यो

भैया ! भूषण कुछ वनवा ले, खुल्ले पैसे टिक न सकेंगे ।।ध्रुवपद।।
हंस वोला है ग्याल-वाल, यह शिक्षा सच्ची है तेरी।
उड़ जाते हैं खुल्ले-पैसे, यही धारणा मेरी, भैया ! ।।१।।
इसीलिए चाहता वनवाने, एक कड़ों की जोड़ी मैं।
लेकिन दिल विश्वास न आता, करते सोनी चोरी, भैया! ।।२।।
अगर वनाना तू स्वीकारे, तो वेशक वनवाऊं मैं।
(सोनी) प्रीतिभेद हो जाय कदा, इस ही से कुछ भय खाऊं, भैया! ।।३।।

तर्ज—वन जोगी मन भटकाई ना !

पुरवासी मेरे दुश्मन हैं, पलटा दें कदा तेरा मन है ।।ध्रुव

मेरे पर सभी उबलते हैं, सुन मेरी उन्नति जलते हैं।
हर तरह बुराई करते हैं,
भैया ! एक तू ही सज्जन है, पुरवासी०॥१॥
ग्वाले ने आग्रह खूब किया, लाकर सारा धन सौंप दिया।
सोनी ने सोना मोल लिया,
लगा घड़ने हर्षित तन-मन है, पुरवासी०॥२॥

तर्ज—सुना दे-३ किसना !

बनाई, बनाई, बनाई सोनी ने।
दो कड़ों की जोड़ियां बनाई सोनी ने ॥ध्रुवपद॥
सोने की एक सुहाई, पीतल की अपर बनाई-२।
पालिस करके खूब चमकाई सोनी ने, दो०॥१॥
ग्वाले को फिर बोलाकर, सोने की जोड़ी लाकर।
देकर कर में पट्टी यों पढ़ाई सोनी ने, दो०॥२॥

तर्ज—दुनिया में बाबा !

अब जाकर भैया ! लोगों को जोड़ी दिखाना।
पर भूल-चूककर, नाम न मेरा बताना ॥ध्रुपवद॥
जोड़ी लेकर ग्वाल गया है, सबने असली माल कहा है।
ग्वाला सुन हुलसाना, अब०॥१॥
बात सुनाई वापस आकर, अथ जोड़ी नकली पकड़ा कर।
गाया ऐसा गाना, अब०॥२॥

तर्ज—चले आना हमारे अंगना !

मेरा नाम धर के, अब जा पूछ फिर के,
सारे कह देंगे चीज नकली ॥ध्रुवपद॥
सोनार ने चक्र ऐसा चलाया
ग्वाला बेचारा समझने न पाया-२।
शिक्षा मान कर के, आया फौरन चल के, सारे०॥१॥
सोनी का नाम साथ लेकर दिखाता,
हर एक हंस कर पीतल बताता-२।
ग्वाला मानता नहीं, कहता द्रोही हो सही, सारे०॥२॥

ग्वाले ने सोचा है गाम लुच्चा,
मेरा सुनार दोस्त है सिर्फ सच्चा-२।
किस्सा आ कहा तमाम, वन गया सोनी का काम, सारे०॥३॥

तर्ज—मेरा रंग दे तिरंगी चोला

अव ऐसा जाल विछाया, ग्वाले को अंध वनाया ॥ध्रुवपद॥
किस ही का कहना मत सुनना, असली सोना इसे समझना !
कह यों पत्थर पकड़ाया, अव०॥१॥
खुश-खुश हो ग्वाला घर आया, कड़े पहन कर अति सुख पाया।
पर] सवने पीतल गाया, अव०॥२॥
लेकिन ग्वाला नहीं मानता, असली सोना इसे जानता।
मन में भ्रम तम छाया, अव०॥३॥

तर्ज—राधेश्याम

मूर्ख ग्वाल सम अज्ञानी नर, कुगुरु धूर्त सोनी जानो !
पीतल के कटकों को, स्वर्ण समझना कुश्रद्धा मानो ! ॥१॥
नगरनिवासी तुल्य विवुध जन, वार-वार समझाते हैं।
फिर भी अज्ञानी पीतल को, स्वर्ण समझते जाते हैं॥२॥
दो हजार षडधिक शुभ संवत, भाद्र अष्टमी उज्ज्वल पक्ष।
सद्गुरु-कृपया 'ध्रांगध्रा' में पल-पल 'धन' का संयम लक्ष॥३॥

मणि सौवां   सत्यवादी सुतसोम

नरमांस का लोलुप राजा ब्रह्मदत्त राज्य-भ्रष्ट होकर नरराक्षस बना। देवी को बलि चढ़ाने के लिए सौ राजपुत्र इकट्ठे किए। सत्यवादी सुतसोम ने चार श्लोक सुनाए। प्रसन्न होकर राक्षस ने चार वरदान दिए। राजकुमार ने मांगे,-फलस्वरूप राक्षस मांस का त्यागी होकर पुनः राज्य में आया और राजा बना। बौद्ध ग्रन्थों की यह कथा पढ़िए और सत्यवादी बनिए !

तर्ज—तुमको लाखों प्रणाम

सत्यवादी बनो-२ ! जो करना उद्धार।
सत्यवादी बनो-२! है सत्य बड़ा संसार ॥ध्रुवपद॥
सत्य वचन भगवान सही है, इसके बल का पार नहीं है।
ज्ञानी रहे पुकार, सत्यवादी० ॥१॥
निर्दय हत्यारा दुष्कर्मी, इससे बन जाता है धर्मी।
सुन लो एक अधिकार, सत्यवादी० ॥२॥

तर्ज—दिल्ली चलो!

भीड़ लगी, भीड़ लगी, भीड़ लगी जी।
काशीपुर के राजमहल में भीड़ लगी जी ॥ध्रुवपद॥
शोर सुन ब्रह्मदत्त नृप के नैन खुल गए,
गोखे में जा देखा लोग हजारों मिल रहे।
हा! हा! रहे पुकार दुःख की ज्वाला जगी जी, काशीपुर०॥१॥
पूछा है दरवान से क्या बात है कहो !
पंच नगर के आये मिलने आप से अहो !
सुनते ही चेहरे की तेजी दूर भगी जी, काशीपुर० ॥२॥

दोहा

छिनभर मन में सोच फिर, बोला वसुधाधार ।
आने दो ! आई प्रजा, करने लगी पुकार ॥१॥

तर्ज—आजादी का दीवाना था

राजन्! नगर में आदमी हर रोज मरता है।
काम कौन यह करता है, कुछ पता न चलता है ॥ध्रुवपद॥
कभी किसी का भाई मरता, कभी किसी का बाप ।
कभी किसी का बेटा-पोता लुप्त बनता है, राजन् ! ॥१॥
मन्द स्वर से राजा बोला, होगा पशु का काम ।
नहीं-नहीं प्रभु ! है नरराक्षस, कभी न टलता है, राजन् ! ॥२॥

तर्ज—जमाना रंग बदल गया

राजा का मुख उतर गया, सुन पंचों की फरियाद, राजा ॥ध्रुवपद॥
कहा सेनापति के घर जाओ! कहो उससे मिल साह्लाद,राजा० ॥१॥
वह दुःख तुम्हारा हर लेगा, यहां न करो व्यर्थ विषाद, राजा० ॥२॥
सब सेनापति के पास गये, दिखलाया दुःख अगाध, राजा० ॥३॥
आश्वासन देकर उस ही क्षण, किया जासूसों को याद, राजा०॥४॥

तर्ज—नरम बनो जी नरम बनो

खबर करो जी खबर करो ! कौन चोर है खबर करो ! ॥ध्रुवपद॥
सेनापति ने हुक्म दिया, सुन सबने प्रस्थान किया !
बोल रहे जल्दी पकड़ो ! कौन० ॥१॥
सी० आई० डी० घूम रहे, रात्री के दो पहर गए ।
अब श्रोता जन ध्यान धरो ! कौन० ॥२॥

तर्ज—हीरा मिसरी का

मुझे यह मार रहा, कोई आओ जल्दी दौड़ ।
मुझे यह मार रहा, यों किया किसी ने शोर ॥ध्रुवपद॥
एक गुप्तचर दौड़ा आया, देखा नर मरा ही पाया।
किन्तु मिल गया चोर, मुझे० ॥१॥

लाकर तुरत किया है हाजिर, सेनानायक स्तब्ध हुआ फिर।
बोला कर कुछ गौर, मुझे० ॥२॥

तर्ज—रहमत के बादल छाए

यह क्या षड्यंत्र है, मैं तो न समझने पाया ॥ध्रुवपद॥
तू तो सूपकार है भाई ! यह क्या तेरी नीच कमाई।
रसके[1] ने हाल सुनाया, यह० ॥१॥
नर आमिष का लोलुप बनकर, करवाता यह दुष्कृत नरवर।
मैं तो एक भृत्य कहाया, यह० ॥२॥
पहले मृत कैदी को खाता, नित्य नया अब है मरवाता।
लोगों का मरना आया, यह० ॥३॥

तर्ज—अय बाबुजी !

राजमहलों में तत्काल आया[2] जी, सेनापति।
जिसने लोही-सा चेहरा बनाया जी, सेनापति ॥ध्रुवपद॥
क्यों खा रहे हैं प्रजा बन के राक्षस,
मेरा कथन सुन अभी कीजिए बस।
शीश राजा ने लेकिन हिलाया जी, सेनापति० ॥१॥
जीने न सकता हूं नरमांस के बिन,
अजि ! जान से मार देंगे प्रजाजन !
भूप डरकर गहन में सिधाया जी, सेनापति० ॥२॥

तर्ज—मेरा दिल तोड़ने वाले !

न लेकिन छोड़ता दुष्कृत, सदा हत्या वहां करता।
पथिक जो हाथ लग जाता, मार झट पेट में धरता ॥ध्रुवपद॥
रसक भी मिल गया आकर, बने हैं उभय नरराक्षस।
बन्द होने लगा रास्ता, न मानव मात्र संचरता, न० ॥१॥
कड़ाके तीन निकले हैं, मिला नहिं भक्ष्य बिल्कुल ही।
रसक का काट डाला सिर, न पापी पाप से डरता, न० ॥२॥

---

१. रसका नाम था।
२. रसके को साथ लेकर।

अकेला हो गया अब तो, सहायक है नहीं कोई।
विप्र श्रीमन्त एक आया, उसी वन पन्थ से चलता, न० ॥३॥

तर्ज—राणाजी आया बाव सूं

विकराल राक्षस दौड़ झट आया,
बेचारे ब्राह्मण को पकड़ उठाया ॥ध्रुवपद॥
पहरेदारों ने किया पीछा
छोड़ वहीं द्विज राक्षस दूर पलाया, विकराल० ॥१॥
लगी पैर में खदिर-कीलिका,
खोड़ाता चल वास-[1] स्थान में आया, विकराल० ॥२॥
दर्द बढ़ा हलचल नहिं सकता,
पड़ा सड़ रहा मन में अति अकुलाया, विकराल० ॥३॥
की है प्रतिज्ञा देवी[2] के आगे,
जी जाऊं तो यज्ञ[3] करूं मनभाया, विकराल० ॥४॥

तर्ज—किस फिक्र में बैठे हो ?

भावी वश ठीक हुआ, पापी मन हरषाया।
महाराजकुमारों को, अपहरके ले आया ॥ध्रुवपद॥
निन्यानवे राजकुंवर, ला रक्खे इकट्ठे कर।
कुरुनंदन[5] को लेने, अथ पापी नर धाया, भावी० ॥१॥
सुतसोम[6] सरोवर पर जाता था रथ चढ़कर।
नरभक्षी राक्षस ने मौका लख मनभाया, भावी० ॥२॥

तर्ज—सुनादे-२ किसना।

उठाया, उठाया, उठाया पापी ने।
कुरुनंदन को कंधों पर उठाया पापी ने ॥ध्रुवपद॥

---

१. वट वृक्ष के नीचे।
२. वट के नीचे एक देवी की मूर्ति थी।
३. सौ राजपुत्रों का।
४. हथेलियों में छिद्र कर के वृक्षों से बांधे।
५. देवी ने कहा—प्रिय वस्तु दे !
६. कुरुराजपुत्र।

देवी के सम्मुख लाया, उसको कुछ रोना आया।
रोता है तू किसलिए फरमाया पापी ने, कुरु० ॥१॥
अपने में जब था बचपन, था तू तो ज्ञानी पूरण-२ ।
अब मरने से डर रहा क्यों ? गाया पापी ने, कुरु० ॥२॥

तर्ज—हो भाभी ! तमे थोड़ा-थोड़ा

हो भाई ! तूने अन्तर की बात नहिं पाई।
मेरे अन्तर की, मेरे अन्तर की बात नहिं पाई ॥ध्रुवपद॥
जाता था जब नहाने, ब्राह्मण एक पास आया।
सुन करके नाम मेरा, कविता वह साथ लाया।
मैंने बात उसे ऐसी समझाई, हो भाई ! ॥१॥
नहा करके तेरी कविता, बेशक मैं आ सुनूंगा।
शक्ति-अनुसार तुझको, सुनकर मैं दान दूंगा।
मन में ब्राह्मण के खुशी न समायी, हो भाई ! ॥२॥
निजमुख से बोल कभी, भैया ! मैं बदला नहीं।
रोना इस बात का है, बानी मेरी झूठ गयी।
हांसी राक्षस को बात सुन आयी, हो भाई ! ॥३॥

तर्ज—अलबेला छैला !

क्यों व्यर्थ लगाता, भैया ! तू ऐसी सफाई।
मैं समझ रहा हूं, रहने दे तेरी ठगाई ॥ध्रुवपद॥
अगर छोड़ दूं तो तू भैया ! कभी न आवे हाथ।
अरे जरा-सा देख तमाशा, मान मित्र की बात रे।
जाने दे भैया ! वचन निभाने आज मुझको ॥१॥
असर पड़ा राक्षस ने फौरन, छोड़ा है धर प्यार।
जल्दी आना है तेरे पर, सारा दारमदार रे।
जा-जा रे भैया !, वचन निभाने शीघ्र जा तू ॥२॥

तर्ज—श्री महावीर चरण में सादर

ल गयी छुट्टी अब सुतसोम, तुरत निज पुर में आया है।
मन मात-पिता के हर्ष सवाया है ॥ध्रुवपद॥

द्विजराज बुलाया, वह चार श्लोक ले आया[1] सुन राजपुत्र सुख पाया।
वर चार हजार दीनार दिलाया है, मिल गई० ॥१॥
क्यों द्रव्य लुटाया, राजा ने प्रश्न उठाया, मुझे ज्ञान अनूठा पाया।
सारा ही किस्सा खोल सुनाया है, मिल गई० ॥२॥

तर्ज—अरी मान जा !

अरे मान जा ! मत जा दैत्य-दुवार।
अरे मान जा ! कर रहे स्वजन पुकार ॥ध्रुवपद॥
रे बेटा! वह है हत्यारा, कर देगा संहार, अरे !
तेरे विना हम कैसे रहेंगे ? कर ले जरा-सा विचार, अरे० ॥१॥
मैं जाऊंगा, आया हूं कर के करार, मैं बोला है राजकुमार, मैं।
स्वजनों से भी मूल्य वचन का, है बढ़कर संसार, में।
मुझको भले वह मार ही डाले, रक्खूंगा सत्य उदार, मैं ॥२॥

तर्ज—पपैया काहे मचावे शोर

चला यों कहकर राजकुमार,
स्वजन सब कर रहे हाहाकार ॥ध्रुवपद॥
ब्रह्मदत्त से आकर बोला, हूं अब मैं तैयार, चला।
करना हो सो कर ले मेरा, रह गया सच अविकार, चला० ॥१॥
राक्षस बोला अब मैं तुझको, होमूंगा धर प्यार, चला।
लेकिन पहले श्लोक सुना दे! जो सुन आया सार, चला० ॥२॥

---

१. श्लोक

अस्मिन्नसारसंसारे, सारं सज्जन-संगतिः।
लभन्ते यत्प्रसादेन, दुरात्मानोपि साधुताम् ॥१॥
जीर्णं भवति शरीर-मन्नं वस्त्रं तथैव भवनानि।
किन्त्वद्भुतबलशाली, धर्मस्तारुण्यमनुभवति ॥२॥
चित्रविचित्ररथा इह, स्यु जीर्णा नूनमवनिपालानाम्।
तदिव वपूंपि नराणां, न च धर्मो साधुपुरुषाणाम् ॥३॥
दूरमाकाशतः पृथ्वी, समुद्रस्य तटं ततः।
तथैवाऽधर्मतो दूरं, सतां धर्मोऽत्र विद्यते ॥४॥

तर्ज—चले आना हमारे अंगना

मनुहार कर के, दिल प्यार धर के,
श्लोक चारों सुनाये अनमोल ।।ध्रुवपद।।
फिर युक्ति से तत्व उनका बताया, ब्रह्मदत्त को स्तंभ जैसा बनाया-२ ।
तेज सत्य का पड़ा, भाव चित्त का फिरा, श्लोक० ।।१।।
इस सत्यवादी को मैं ना हनूंगा, बदले में इसके भले खुद चलूंगा-२ ।
बोला मांग वरदान, दूंगा चार धर ध्यान, श्लोक० ।।२।।

दोहा

सुख से जी सौ वर्ष तू, यज्ञ छोड़ महाभाग !
सबको पहुंचा दे सदन, फिर नर-आमिष त्याग ।।१।।

तर्ज—दुनिया में बाबा

आश्चर्य चकित हो, राजा ने शीश झुकाया,
ऐसा उपकारी, और नजर नहिं आया ।।ध्रुवपद।।
चारों वर स्वीकार किये हैं, राजपुत्र सब छोड़ दिये हैं ।
(फिर) एक-एक को पहुंचाया, आश्चर्य० ।।१।।
'जिसके हित सब राज्य तजा था, जिसके हित वनवास भजा था ।
(वह) आमिष भी छिटकाया, आश्चर्य० ।।२।।
वापस' अपने पुर में आया, सबने मिल महाराज बनाया ।
सुतसोम बिदाई पाया, आश्चर्य० ।।३।।

तर्ज—राधेश्याम

इस वर्णन से सत्यधर्ममय, मक्खन खींच निकालो जी ।
प्राण जाय पर सत्य न जाये, दिल ऐसा कर डालो जी!
दो हजार षडधिक शुभ संवत, भाद्रव सित ग्यारस शनिवार ।
'थ्रांगध्रा' में सद्गुरु-कृपया, 'धनमुनि' मन आनंद अपार ।।१।।

मणि एक सौ एकवां — मानमर्दन

भाई के मुख से श्रीकृष्ण की प्रशंसा सुनकर भीम-अर्जुन के मन में बल का अहंकार आया। हरि-हलधर ने जादूगर के रूप से अनूठी माया रचकर दोनों का मर्दन किया। कहानी चमत्कारपूर्ण है। पढ़कर निरहंकार एवं कृतज्ञ बनिए !

तर्ज—तोता उड़ जाना

मान तुम मत करना! उपकारी के साथ।
मान तुम मत करना! (सुन) भीमार्जुन की बात[1] ॥ध्रुवपद॥
ईर्ष्या-मान गुणी के गुण पर, करने में न नफा है तिलभर।
है बेहद नुकसान, मान० ॥१॥
हस्तिनागपुर नगर मनोहर, महाराज थे वहां युधिष्ठिर।
धीर वीर गुणखान, मान० ॥२॥
भारी परिषद् जुड़ी हुई थी, बात युद्ध की छिड़ी हुई थी।
(थे) मुख-मुख मंगल गान, मान० ॥३॥
जो हरि खुद सारथि नहिं होते, तो हम विजयी कभी न होते।
धर्मज[2] ने किया बयान, मान० ॥४॥

तर्ज—नरम बनोजी नरम बनो !

न सुहाया जी न सुहाया, भीमार्जुन को न सुहाया।
अहंकार मन में आया, भीमार्जुन ॥ध्रुवपद॥
हमने कितना काम किया, (पर) नहीं ज्येष्ठ ने ध्यान दिया।
केवल हरि का गुण गाया, भीमार्जुन० ॥१॥
हरि-हलधर भी थे हाजिर, समझ गए थे बड़े चतुर।
उठ निकले मिष[3] अपनाया, भीमार्जुन० ॥२॥

---

१. अखंडानंद से प्राप्त।
२. युधिष्ठिर।
३. दूत आने का मिष कर के।

समयांतर इक जादूगर, आया साथ विकट विषधर।
और एक टट्टू लाया, भीमार्जुन ॥३॥

तर्ज—सुना दे-३ किसना !

बजाई, बजाई, बजाई धर प्यार,
जादूगर ने डुगडुगी बजाई धर प्यार ॥ध्रुवपद॥
धर्मज ने हुक्म किया है, खेला अब शुरू हुआ है-२।
जुड़ रहा है पांडवों का सारा दरबार, जादूगर० ॥१॥
वादी[1] लगा बीन बजाने, फड़धर लगा झाग फैलाने-२।
बीच ही में जादूगर की यों हुई पुकार, जादूगर० ॥२॥
कोई बड़वीर आओ, इस अहि के हाथ लगाओ-२।
ले जाओ[2] इकतीस पूतले, स्वर्णमयी सुखकार, जादूगर० ॥३॥
कोई भी किंतु न आया, तब जादूगर ने गाया-२।
क्या दुर्योधन मरते ही सब मर गए जो धार, जादूगर० ॥४॥

तर्ज—दिल्ली चलो

भीम आया, भीम आया, भीम आया जी।
दुर्योधन का नाम सुनकर भीम आया जी ॥ध्रुवपद॥
आते ही उस नाग के एक थप्पड़ मारा है,
पूंछ पकड़ कर चक्र चढ़ाया फिर उछाला है।
वाह! वाह! कर भीम को सबने वधाया जी, दुर्योधन० ॥१॥
इतने ही में क्रुद्ध नाग भी नीचे आया है,
वायुपुत्र की गर्दन पर जा डंक लगाया है।
फिर गर्दन पर लिपटा सबने शोर मचाया जी, दुर्योधन० ॥२॥

तर्ज—म्हारो घणा मोल रो माणकियो

गिर गया भीम धरा पर, आखिर में बेहोशी आ गयी रे ॥ध्रुवपद॥
हाथ-पैर न हिलाता, बिल्कुल मिले हजारों वीर।

---

१. जादूगर।
२. वरना युधिष्ठिर मुझे एक पूतला दे।

धर्मराज और अर्जुनादि, सब वीर बने दिलगीर।
उदासी बेहद छाई रे, गिर० ॥१॥
अरे मदारी ! मत कर देरी, वशकर अपना नाग।
फौरन बीन बजाई उसने, गाई मीठी राग।
नाग की रीस पला गयी रे, गिर० ॥२॥

तर्ज—अखियां मिला के

मंत्र फिर पढ़ के, हाथ सिर धर के, भीम को उठाया ॥ध्रुवपद॥
उठते ही मिल गयीं आंखें, शर्मिन्दा भीम हुआ है।
दुर्योधन मारे का अभिमान, सारा उतर गया है, मंत्र० ॥१॥
मांगी है माफी जादूगर से, झट पैर पकड़ कर।
आ अपने सिंहासन पर बैठ गया, शर्मिन्दा बनकर, मंत्र० ॥२॥

तर्ज—दुनिया राम-नाम नहिं जाण्यो

फिर से शुरू हुआ है खेल, सभा सब देख रही सानंद ॥ध्रुवपद॥
वादी ने डुगडुगी बजाकर टट्टू को संभाला है।
उड़ गई सुस्ती लगा कूदने, टट्टू बन मतवाला, फिर० ॥१॥
राजपुत्र क्या है कोई असली, शूरों का सरदार जी।
परिक्रमा जो तीन करे, नगरी की हो असवार, फिर ॥२॥
(पर) दशा भीम की स्मर कर सारे, बैठे चुप्पी मार जी।
वादी[1] बोला कर्ण एक ही, था जग में असवार, फिर० ॥३॥

तर्ज—मेरा दिल तोड़ने वाले !

न अर्जुन रुक सका अब तो, तुरत ही लाल हो आया।
उछल कर के चढ़ा, टट्टू पवन के वेग से धाया ॥ध्रुवपद॥
सभा में धूम की भारी, पछाड़े राजपुत्रों को।
लगाकर चक्र नगरी के, तीन वनपंथ अपनाया, न० ॥१॥
बीच नदियां कई आयीं, बड़े पर्वत कई आए।
हुआ दिग्मूढ़ अर्जुन तो, समझने कुछ नहीं पाया, न० ॥२॥

---

१. जादूगर बोला।

तर्ज—राधेश्याम

वायु वेग से दौड़ रहा हय, जीन पीठ से निकल पड़ी।
मुंह में इधर लगाम न पाई, पता नहीं वह किधर पड़ी ॥१॥
लिपट रहा गर्दन से अर्जुन, होश उड़ गए गजब हुआ।
किस खड्डे में डालेगा यह, टट्टू दिल यों सोच रहा ॥२॥
अदाजन सौ कोस आ गए, इतने में वट तरु आया।
पकड़ लिया अर्जुन ने उसको, टट्टू इधर नहीं पाया ॥३॥
नीचे था तालाव अथग जल, उसमें मगर भयंकर थे।
इधर वृक्ष के ऊपर भीपण, काले-काले विपधर थे ॥४॥

तर्ज—रहमत के वादल छाए

नरभक्षा राक्षसी, वहां इधर अचानक आई ॥ध्रुवपद॥
थे हाथों में शस्त्र सुतीक्षण, खाऊं-खाऊं कर रही भापण।
अर्जुन पर दृष्टि टिकाई, नर० ॥१॥
वोली हैं ये दिव्य मगर-अहि, फंसा यहां क्यों छोड़ेंगे नहिं।
निज मृत्यु समझ ले भाई ! नर० ॥२॥
अगर वने तू मेरा नौकर, तो मैं तुझे वचा दूं सत्वर।
अर्जुन ने हां फरमाई, नर० ॥३॥

तर्ज—भलाई देख लेना !

जीवन भर होगा रहना, भैया ! तू देख लेना !
मेरा साफ-साफ है कहना, भैया ! तू देख लेना ! ॥ध्रुवपद॥
सव मिल तीन सौ शिशु हैं मेरे-२, पानी सिर होगा वहना,
भैया ! ॥१॥
कपड़े सवके धोने पड़ेंगे-२, चूल्हे पर फिर तन दहना,
भैया ! ॥२॥
झाड़ू लगाना रोज पड़ेगा-२, चक्की का दुख भी सहना,
भैया ! ॥३॥

तर्ज—दुनिया में वावा !

वोला है अर्जुन, प्राण वचा दे शीघ्र मेरे।
सव कुछ कर दूंगा, जो भी कहेगी काम तेरे ॥ध्रुवपद॥

यों कहते ही हाथ बढ़ाया, अर्जुन को ले कंध बिठाया।
जा रही अपने डेरे, बोला० ॥१॥
ज्यों ही घुसी गुफा के अन्दर, पुण्यहीन कद्रूप भयंकर।
अर्जुन ने बच्चे हेरे, बोला० ॥२॥

तर्ज—अलबेला छैला

आया रे आया, बहुत दिनों से बाप आया।
बच्चों ने ऐसे, शोर अपार मचाया ॥ध्रुवपद॥
लगे खींचने धोती, कइयों ने अंगुलियां पकड़ीं।
कंधों पर जा चढ़े कई, बन रहा पार्थ तो बकरी, आया० ॥१॥
कहा राक्षसी ने भर पानी, था परवश भर लाया।
जा कपड़े धो! गठड़ी सिर धर, सरिता पर धो आया, आया० ॥२॥
ज्यों ही बैठा आटा पीसो! फौरन हुक्म दिया है।
पीसा आटा करो रोटियां! बहुत विलंब हुआ है, आया० ॥३॥
खिला-पिला कर अर्जुन सोया, दिन न निकलने पाया।
ठोकर मार तुरंत उठाया, फिर सब हुक्म लगाया, आया० ॥४॥

तर्ज—चले आना हमारे अंगना !

अर्जुन दीन बन के, बलहीन बन के
सदा करता है सारा घर-काम ॥ध्रुवपद॥
विश्राम छिन भर लेने न देती, फिर-फिर के कड़वी बातें भी कहती-२।
होती भूल जो कभी, लगती पीटने तभी, सदा० ॥१॥
संकट में ऐसे एक साल गया है, हो नम्र श्रीकृष्ण को स्मर रहा है-२।
इक दिन पानी भर रहा, टट्टू आ गया वहां, सदा० ॥२॥
बस! पार्थ तो दौड़ टट्टू पै चढ़ गया, होकर पवन वेग टट्टू तो उड़ गया-२।
आया राज दरबार, जहां लग रही बहार, सदा० ॥३॥

तर्ज—जोगी मन भटकाई ना !

अर्जुन मन विस्मय पाया है, नहिं समझ सका क्या माया है ॥ध्रुवपद॥
वैसे ही धर्मज राज रहे, वैसे ही पार्षद [illegible]।

मंगल के बाजे बाज रहे, वाह! वाह! सभी ने गाया है, अर्जुन०॥१॥
गारुड़ी ने कहा बहादुर है, फिर आया न लगी पलभर है।
इकतीस पूतले हाजिर है, सुन अर्जुन मन हुलसाया है, अर्जुन०॥२॥
फिर ताकत का अहंकार हुआ, सब भ्रमणा थी यों ख्याल हुआ।
नहिं संकट का संचार हुआ, मूछों पर हाथ लगाया है, अर्जुन०॥३॥

तर्ज—सुनादे-२ किसना !

फरियाद है ! फरियाद है ! फरियाद !
धर्मराज के सामने फरियाद है ! फरियाद ॥ध्रुवपद॥
नरभक्षा दौड़ी आई, बच्चों की टोली लाई-२।
डर का मारा छिप गया है, अर्जुन सविषाद, धर्मराज० ॥१॥
चर मेरा भग कर आया, मरने से जिसे बचाया-२।
फाल्गुन उसका नाम है, दे दीजिए साह्लाद, धर्मराज०॥२॥
खाना हर रोज पकाता, कपड़े सब धोकर लाता-२।
नाज पीसता पानी भरता, रहता निर्विवाद, धर्मराज० ॥३॥

तर्ज—धर्म की पूंजी कमा ले !

नौकर' तेरा कहां है ? कहां है फौरन, जाकर के देख ले! ॥ध्रुवपद॥
लेकर दंड चली यों सुनकर, अर्जुन छिप बैठा था वहां पर।
आकर शोर किया है, किया है फौरन ॥१॥
दास यही है मेरा फाल्गुन, जादूगर भी आया उसी छिन।
अर्जुन सहम गया है, गया है फौरन० ॥२॥

तर्ज—लहरिये वाली

करो रे ! करो रे ! छुटकार, ओ वंशी वाले !
अब न करूंगा अहंकार, ओ वंशी वाले ! ॥ध्रुवपद॥
दुख सागर में डूब रहा हूं, तुम ही हो तारनहार, ओ० ॥१॥
जादूगर से आंखें मिली हैं, बहने लगी जलधार, ओ० ॥२॥

तर्ज—राधेश्याम

बस! इतने में लुप्त हो गये, नरभक्षा अरु टट्टू-नाग।
जादूगर भी नजर न आया, प्रगटे हरि-हलधर महाभाग!
बोले समझाने हित तुझको, हमने खेल बनाया था।
दुःख मूल है अहंकार यह, तादृश कर दिखलाया था ।।१।।
करके काम न फूलो मन में, इस वर्णन का सार यही।
उपकारी को कभी न भूलो! बात दूसरी यहां कही ।।
दो हजार षडधिक शुभ संवत्, भाद्र पूर्णिमा दिन सुखकंद।
'ध्रांगध्रा' में सद्गुरु-कृपया 'धनमुनि' अनुभवता आनंद ।।२।।

मणि एक सौ दोवां खटपट में खतरा

बाप का पंच-पंचायती में जाना विधवा बेटी को पसन्द नहीं था। उन्हें समझाने के लिए भाभियों से कहने लगी कि तुम मेरी ही कृपा से खा-पी रही हो एवं पहन-ओढ़ रही हो। झगड़ा बढ़ा, पंचों ने आठ हजार दिलवाए। बाप बीमार पड़ा, बेटी ने भेद खोला, रुपये वापस दिए एवं बाप की पंचायती छुड़वाई।

तर्ज—कलदार रुपैया चांदी का

इस खटपट से बचते रहना,
खटपट में खतरा भारी है ।।ध्रुवपद।।
कई खटपटिये कहलाते हैं, कई चौहटिये कहलाते हैं।
कई पंच नाम से जारी हैं, खटपट०।।१।।
दुनिया के हित तन तोड़ रहे, हम लिए न्याय के दौड़ रहे।
यों बोल रहे अधिकारी हैं, खटपट०।।२।।

तर्ज—हीरा मिसरी का

न्याय के बदले में, हो जाता अन्याय, न्याय के ।।ध्रुवपद।।
अधिकारी न समझ सकते हैं, सच्चे नर दोषी बनते हैं।
ऐसा होता न्याय, न्याय के०।।१।।
श्रीपुर नगर सेठ था श्रीधर, पुत्री समता चार पुत्र वर।
अच्छी घर में आय, न्याय के०।।२।।

दोहा

सुता बालविधवा हुई, बसती पीहर मांह।
दुख के दिन प्रभुभजन में, पूरण करती प्राय ।।१।।

तर्ज—रहमत के बादल छाये

करते पंचायती, थे सेठ शहर में नामी, करते ।।ध्रुवपद।।

भूख-प्यास का ख्याल न करते, राग-द्वेष का ध्यान न धरते।
फिरते बन मन के कामी, करते०॥१॥
समता सोच रही यों दिल में, पिता घूमते हैं घर-घर में।
नहिं स्मरते प्रभु गुणग्रामी, करते०॥२॥
जो ये यों ही मर जायेंगे, धर्मध्यान नहिं कर पायेंगे।
तो होंगे दुर्गतिगामी, करते०॥३॥

तर्ज—मत बांधो गठड़ियां अपयश की

(पुत्री) आज पीछे पंचायती में जाना नहीं,
जाना नहीं मानो मेरी कही ॥ध्रुवपद॥
होती भलाई के बदले बुराई,
सच्चे-झूठे का पाता ठिकाना नहीं, आज०॥१॥
अब उम्र आपकी ढलने लगी है,
इस खटपट में जीवन गंवाना नहीं, आज०॥२॥
प्रभु के भजन में दिल को लगाओ!
यों काफी कहा फिर भी माना नहीं, आज०॥३॥

तर्ज—तुमको लाखों प्रणाम

तुझको खबर नहीं-२, (है) पंचों में परमेश्वर, तुझको।
अन्याय न होता तिलभर, तुझको ॥ध्रुवपद॥
न्यायासन पर जब हम आते, पाप न दिल में रहने पाते।
करते न्याय बराबर, तुझको०॥१॥
(पुत्री) झूठी है यह बात सरासर, नहिं आते दिल में परमेश्वर।
कहा बाप ने बस कर! तुझको०॥२॥

तर्ज—सारी दुनिया में दिन हिंद में

चाह कर भाभियों को चिढ़ाने लगी।
आग सब के दिलों में लगाने लगी ॥ध्रुवपद॥
मौज मेरी बदौलत उड़ाती हो तुम,
मन के चाहे सदा माल खाती हो तुम।
क्या है घर में तुम्हारे यों गाने लगी, चाह० ॥१॥

रांड मैं तो हुई किंतु तुम तर गए,
दुःख-दोहग तुम्हारे सभी टल गए।
मर्म के तीर ऐसे चलाने लगी, चाह०॥२॥

तर्ज—अलबेला छैला !

पतियों के आगे, चारों ही जाके पुकारीं ॥ध्रुवपद॥
नहीं चाहिए माल-मसाले, नहीं चाहिए गहने।
नहीं चाहिए वढ़िया कपड़े, दो भगिनी के देने, पतियों०॥१॥
नहिं देती है खाने-पीने, सोने भी नहिं देती।
मुख से हरदम अकवक वकती, चुप न कभी यह रहती, पतियों०॥२॥
पुत्रों ने जा कहा पिता से, उसने तुरत बुलाई।
वेटी क्यों वकती है ! तेरी है न जमा यहां पाई, पतियों०॥३॥

तर्ज—नरम वनो जी नरम वनो !

(समता) गजव किया जी गजव किया,
वावा ! तुमने गजव किया ॥ध्रुवपद॥
जिस दिन वन वैठी विधवा, उस दिन सव जर, जेवर ला।
तुमको हाथों हाथ दिया, वावा !॥१॥
आज तुम्हीं यों नाट गए, अव किसका विश्वास रहे।
फिर रोकर यों साफ कहा, वावा!॥२॥

तर्ज—भलांई देख लेना

मैं रुपये नहिं छोड़ूंगी, भलांई देख लेना।
अव सारे वापस लूंगी, भलांई देख लेना ! ॥ध्रुवपद॥
रुपये आठ हजार हैं असली-२, नहिं लूंगी कमती पाई, भलांई०॥१॥
पंचों से फरियाद करूंगी-२, उड़ जाएगी सेठाई, भलांई०॥२॥
जा-जा करना हो सो कर ले-२!, यों वोले चारों भाई, भलांई०॥३॥
वस ! पंचों के पास पुकारी-२, दिल दया सभी के आई, भलांई०॥४॥

तर्ज—अखियां मिला के

पंचों ने आकर, सेठ को वुलाकर, वात सव पूछी ॥ध्रुवपद॥
झूठी है रांड निकम्मी, नाहक इल्जाम लगाती।

खा करके मुफ्त रोटियां हमको ही, तस्कर बनाती, पंचों०॥१॥
क्या है कुछ लिखा-पढ़ी भी, पंचों ने प्रश्न किया है?
अरे! लिखवाया जाता है क्या बाप से, उत्तर दिया है, पंचों० ॥२॥
जिस दिन पतिदेव मरे थे, (मैं) जेवर ले पीहर आई।
सोना था भरी चार-सौ, याद है इतनी-सी भाई! पंचों०॥३॥
दुख के दिन तोड़ रही थी, करती थी धर्म हमेशा।
लेकिन नहि जाना देंगे बाप जी भी, धोखा ऐसा, पंचों०॥४॥

तर्ज—तकदीर बनी

अब किससे कहूं, कहां जा के रहूं, मेरे हाथों में सोना तार नहीं।
घर वाले सभी मेरे शत्रु बने, इत पंचों को भी एतबार नहीं ॥ध्रुवपद॥
लगी रोने यों गद्‌गद हो, विचारा पंच लोगों ने।
सच्ची है सती, झूठी न रती,
इस बुड्ढे के दिल में विचार नहीं, अब०॥१॥
किया है फैसला रुपये, इसे असली अभी दे दो[1]!
बस! देने पड़े, नहि पेच चले,
रहा श्रीधर के दुख का पार नहीं, अब०॥२॥

तर्ज—म्हारो घणा मोल रो माणकियो

लेकर नगद रुपैये घर से, समता तुरत निकल गई रे॥ध्रुवपद॥
दहल गया दिल इधर सेठ भी, बेहद हुआ बीमार!
बंद हुई उठ-बैठ रो रहा, मन में बिना शुमार।
हाय! मेरी शान बिगड़ गयी रे, लेकर०॥१॥
एक दिन समता मिलने आयी, दुखी पिता के पास।
मत आ! मत आ! कहा पिता ने, फिर भी मन सोल्लास।
सुता पैरों में पड़ गई रे, लेकर० ॥२॥

तर्ज—जिंदगी है मौज से

देख लो! देख लो! अब पिताजी देख लो!
सच्चाई पंचायती में, कितनी है तुम देख लो! ॥ध्रुवपद॥

---

१. ४०० तोला सोना २० रु० के भाव से आठ हजार का होता है।

कब दिए थे आठ हजार, ले गई जो कर तकरार।
कहां गए परमेश्वर प्यारे, ज्ञानदृष्टि कुछ टेक लो ! देख लो ! ।।१।।
होते हैं ऐसे अन्याय, कह यों रुपये सौंपे लाय।
फिर बोली पंचायती का, नियम पिताजी नेक लो ! देख लो ! ।।२।।

तर्ज—हीरा मिसरी का

वापस बुलवाये, पंचों को धर प्यार ।।ध्रुवपद।।
सारा अपना भेद सुनाया, सब ही के मन विस्मय छाया।
धन-धन रहे पुकार, वापस०।।१।।
श्रीधर अब पंचायत तजकर, बैठा घर में धर्म-ध्यान धर।
पाया भव जल-पार, वापस०।।२।।

तर्ज—राधेश्याम

सुन यह वर्णन सांसारिक, खटपट से तुम बचते रहना !
सद्गुरु-शिक्षा सुनकर आत्मिक-खटपट में रचते रहना।
दो हजार षडधिक शुभ संवत, आश्विन वदि छठ मंगलवार।
'ध्रांगध्रा' में सुगुरु-महर से 'धनमुनि' करता धर्म-प्रचार ।।१।।

मणि एक सौ तीनवां — रत्नों के ऊंट

रत्नों के चालीस ऊंट लेकर भी ऊंटवाला सन्तुष्ट नहीं हुआ। चार बार में बाद के चालीस भी ले लिए। फिर उसकी मांगी, उसकी मरहम बायीं आंख में डालने से पृथ्वी का धन देखने लगा। फिर लोभांध मनाही करने पर भी दाहिनी आंख में मरहम डलवाकर अन्धा बना एवं जीवन भर थप्पड़ खाता रहा और भीख मांगता रहा। इस कथा में लोभ की सर्वनाशकता का चित्रण है।

तर्ज—पारेवड़ा ! जाजे वीरा ना देश मां

अरे भाइयों ! फंसना न लालच की लाल में,
रहना संतोष की संभाल में ।।ध्रुवपद।।

रहता न प्राणियों में सद्ज्ञान सूरज,
वे] फंसते हैं जब इसके जाल में, अरे० ।।१।।
कौरव त्यों पांडव इसने लड़ाये,
कोणिक को ले गया पाताल में, अरे० ।।२।।

तर्ज—दिल्ली चलो !

फोड़ डालीं, फोड़ डालीं, फोड़ डालीं जी,
ऊंट वाले की दोनों आंखें फोड़ डालीं जी ।।ध्रुवपद।।

सैर करने जा रहे थे राजा और दीवान,
नदी-तीर पर बैठा पाया अन्धा एक महान।
मेहरबान हो राजा ने मोहर निकाली जी, ऊंट० ।।१।।
देते ही अन्धे ने पकड़े नृप के दोनों हाथ,
हंसकर बोला थप्पड़ एक लगायें नरनाथ !
वापस ले लें वरना अपनी मोहर प्यारी जी, ऊंट० ।।२।।

तर्ज—किस फिक्र में बैठे हो ?

थप्पड़ एक धीरे से, मारा है राजा ने ।
कारण अब खुश होकर, लगा अन्धा बतलाने ।।ध्रुवपद।।
भाड़ा मन भाता था, ऊंटों से कमाता था ।
भर चारा लोगों का, जाता था पहुंचाने, थप्पड़० ।।१।।
एक दिन मैं भाड़ा कर, आता था वापस घर ।
कुछ धूप की तेजी थी, विश्राम लगा खाने, थप्पड़० ।।२।।

तर्ज—राणा जी आया बाव सूं

इतने में योगी एक वहां आया,
बैठा आकर थी शीतल वड़ छाया ।।ध्रुवपद।।
बात-बात में प्रेम हो गया,
साथ बैठकर खाना हमने खाया, इतने में० ।।१।।
बोला बाबा भइया ! मैंने,
धन का एक खजाना ऐसा पाया, इतने में० ।।३।।
सारे तेरे ऊंट भरवा दूं,
सुनकर मेरे मन में लालच छाया, इतने में० ।।३।।
पैर पकड़कर खूब बिरुदाया,
तब बाबे ने मुख से ऐसे गाया, इतने में० ।।४।।

तर्ज—मेरा दिल तोड़ने वाले

ऊंट आधे मुझे देने, पड़ेंगे देख ले भाई !
किया स्वीकार झट मैंने, खुशी दिल में अमित छाई।।ध्रुवपद।।
कहा बाबे ने तू और मैं, रहेंगे दो ही दो साथी ।
सभी को सीख दे दे बस! तुरत ही सीख दिलवायी, ऊंट० ।।१।।
चलें हम दो ही दो वन में, सभी ऊंटों को ले कर के ।
भयंकर पंथ कटने पर, अजब एक कंदरा आयी, ऊंट० ।।२।।
घुसे ऊंटों सहित उसमें वहां मैदान एक दीखा ।
ऊंट सारे बिठाए फिर, आग बाबे ने सुलगायी, ऊंट० ।।३।।

तर्ज—अखियां मिला के

आग सुलगा के, मन्त्र कुछ गा के, डाला है पानी ।।ध्रुवपद।।

पानी डाला के धूआं, होकर अन्धेरा छाया।
समयान्तर पुनः हुआ उद्योत, इक दरवाजा आया, आग० ॥१॥
अन्दर था महल मनोहर, रत्नों के ढेर पड़े वर।
पागल-सा होकर मैंने तो भरे सब ऊंट धड़ाधड़ा, आग० ॥२॥
बाबे ने ऊंटों को भर, खोली एक स्वर्ण पिटारी।
लकड़ी की डब्बी एक छोटी-सी, उसमें से निकाली, आग० ॥३॥

तर्ज—श्री महावीर चरण में

लेकर धन के अस्सी ऊंट, महल से बाहर आया मैं।
वह दृश्य अभी तक भूल न पाया मैं ॥ध्रुवपद॥
आगी सुलगा कर, बाबे ने मंत्र पढ़ा फिर,
गुम हुआ मनोहर मन्दिर।
प्रमुदित मन तन फूला न समाया मैं, लेकर० ॥१॥
रास्ते पर आकर, उपकारी के गुन गाकर,
फिर सविनय शीश झुकाकर,
चालीस ऊंट ले घर दिशि धाया मैं, लेकर० ॥२॥

तर्ज—और कहीं पर जाओ!

खुश-खुश होता मैं थोड़ी-सी दूर गया,
फिर मेरे पर लोभ पिशाच सवार हुआ ॥ध्रुवपद॥
हा! हा! आधे ऊंट गंवाये, मजा बने यदि दस भी आये।
बाबा जी दस दे दो! फिर आ विनय किया, खुश० ॥१॥
योगीश्वर ने तुरत दिये दस, लोभ बढ़ा दिल कर न सका बस।
चार बार में दस-दस कर सब माल लिया, खुश० ॥२॥

तर्ज—गाये जा गीत मिलन के

लेकर सारे ही ऊंट, चला धन लूट, डब्बी फिर सुमरी है ॥ध्रुवपद॥
रत्नों से बढ़कर डब्बी में माल है, उसके बिना यह धूल।
फिर दौड़ आया बाबा ने डब्बी, दे दी है बन अनुकूल।
अन्दर मरहम देख, पूछे गुण नेक डब्बी० ॥१॥

तर्ज—अलबेला छैला!

गुन अजब-गजब हैं, सुन ले जरा-सा ध्यान धर के ॥ध्रुवपद॥

वाम नेत्र में अगर लगे तो दीखें धरा-निधान।
दाहिन में लगते ही फौरन, अन्ध बने इन्सान रे, गुन० ॥१॥
जरा लगाकर मुझे दिखाओ ! ऋषि ने तुरत लगायी।
लगे दीखने निधि पृथ्वी के, फिर दुर्मति दिल छायी, गुन० ॥२॥
नाथ ! जरा इस तरफ लगाओ, ऋषि ने की है मनाही।
(पर) मैं नहिं माना लगा सोचने, है झूठा यह साई, गुन० ॥३॥

तर्ज—म्हारा सतगुरु करत विहार

इसमें चमत्कार है अद्भुत, बाबा नहीं बताता है।
नहीं बताता है कि अंतर भेद छिपाता है, इसमें० ॥ध्रुवपद॥
स्वर्ग तथा पाताल दीखने, मुझे लगेंगे बेशक।
यों तृष्णा में बनकर अंधा, लगा बोलने अकबक, इसमें० ॥१॥
बाबा बोला सच कहता हूं, फूट जायेंगे नैन।
फूटेंगे तो मेरे तुम क्यों मचा रहे हो फैन, इसमें० ॥२॥

तर्ज—सुनादे-३ किसना !

लगाई, लगाई, लगाई बाबे ने।
गुस्से होकर थोड़ी-सी लगाई बाबे ने ॥ध्रुवपद॥
लगते ही ज्योति पलायी, अन्धे की पदवी पाई-२।
रोया तो भी की नहीं सुनायी बाबे ने, गुस्से० ॥१॥
ले सब धन-माल सिधाया, मैं तो कुछ बोल न पाया-२।
घर आने की राह भी, न बतायी, बाबे ने, गुस्से० ॥२॥

तर्ज—हो भाभी ! तमे थोड़ा-थोड़ा थावो

हो नाथ ! मैं तो जंगल में रो रहा अकेला ॥ध्रुवपद॥
बनजारा एक आया, मैंने सब हाल कहा ?
पहुंचाया बेचारे ने, पर ना कुछ पास रहा।
जग में लक्ष्मी का आज सब खेला, हो नाथ! ॥१॥
स्वजनों ने क्रुद्ध होकर, घर से निकाला मुझे।
भिक्षुक बनाया भारी, आफत में डाला मुझे।
मांग खाना तभी से मैंने झेला, हो नाथ ! ॥२॥

तर्ज—राधेश्याम

साथ भीख के थप्पड़ खाना, निश्चित प्रण धारा मन में।
तृष्णा की अति कटु अनुभूति, रहती इससे सुमरिन में।।
सुन यह किस्सा राजा-मन्त्री, बन वैरागी सन्त हुए।
अन्धे बाबे रहे भटकते, पता नहिं मर कहां गए।।१।।
इस वर्णन से समझो भव्यों! तृष्णा दुख की खानी है।
संतोषी बन जाओ फिर-फिर, समझाते गुरु ज्ञानी हैं।
दो हजार षडधिक शुभ संवत, आश्विन वदि बारस शशिवार।
सद्गुरु-कृपया 'धांगध्रा' में, 'धनमुनि' करता धर्म प्रचार।।२।।

भूखा बगुला मच्छी की ताक में एक पग पर खड़ा था। मच्छी ने उस महिमा घर-घर सुना दी। दर्शनार्थ कुछ मच्छियां उसके निकट आई। बस मौका पाते ही पकड़कर गवागव खाने लगा। ढोंगी साधु इसी तरह भोले भव को ठग-ठग कर स्वार्थ-पूर्ति कर रहे हैं।

तर्ज—असली आजादी अपनाओ !

बगुले भक्तों से बच जाना, ढोंगी संतों से बच जाना !
मीठी-मीठी बातें सुनकर, मत कोई फंस जाना, बगुले ॥ध्रुवपद॥
बगुला एक नदी पर आया, भूख लगी भोजन नहिं पाया।
एक पैर ऊंचा कर उसने, मुनि का ढोंग रचाया, बगुले० ॥१॥
आंख मींच कर बन गया ध्यानी, मच्छी पास गयी लख ज्ञानी।
मत डालो ! तन छाया, ठग का, हुआ तुरत फरमाना, बगुले० ॥२॥

तर्ज—म्हारी रस सेलडी

ब्रह्मचर्य हमारा, छाया पड़ने से होता नष्ट है ॥ध्रुवपद॥
ब्रह्मचारी को स्त्री की छाया, जहर समान कही हैं।
सुनकर सोचा मच्छी ने, ये सच्चे सन्त सही हैं जी, ब्रह्मचर्य० ॥१॥
एक पैर से खड़ा देखकर, विस्मय दिल न समाया!
लगी पूछने प्रभु! क्यों ऐसे, तुमने ध्यान लगाया जी, ब्रह्मचर्य०॥२॥

तर्ज—लूटत है दिन-रैन

दयावान हैं दुख हम न कभी देते किसी को ॥ध्रुवपद॥
खुद चाहे जो कुछ सह लेना, पर न और को बोझा देना।
माना हमने सभी धरम का मूल इसी को, दयावान० ॥१॥
एक पग जो धरना पड़ता है, पृथ्वी को बोझा लगता है।
जिस दिन छूटे पिंजरा मानें! धन्य उसी को, दयावान० ॥२॥

मणि एक सौ पांचवां — एक चित्र

आटा पीसती हुई बुढ़िया से पंडित ने पूछा—माई! तेरे आगे चार-चार बेटे और बहुएं हैं, फिर तू आटा क्यों पीस रही है? बुढ़िया ने 'मर गए बेटे और मर गई बहुएं' यों कहकर अपनी ऐसी दर्दभरी कहानी सुनाई, जिसे सुनकर बेचारा पंडित भी गद्‌गद होगया। इस कथा में संसार की विचित्रता का चित्रण है।

तर्ज—तुमको लाखों प्रणाम

सेवा होती नहीं, रोती हैं माताएं, सेवा।
तुम सुन लो जरा सुनाएं, सेवा ॥ध्रुवपद॥
पाल-पोष सुत को परणाती, आखिर माताएं पछतातीं।
लो] चित्र एक दिखलाएं, सेवा० ॥१॥

तर्ज—पिया घर आजा!

बुढिया आटा पीस रही, पंडित ने पूछा मइया!
यह क्या है माया-माया यह ॥ध्रुवपद॥
अस्सी के अंदाजन अब तू हो गई-हो गई,
चार-चार सुत-वहुएं तेरे हैं सही-हैं सही।
फिर क्यों आटा पीस रही?
सुनते ही बुढ़िया ने यों, मुख से सुनाया-माया, यह० ॥१॥
मर गयी बहुएं मर गए चारों लड़के हैं-लड़के हैं,
सुन पंडित के तन-मन बेहद चमके हैं-चमके हैं।
मइया! यह क्या बोल गयी?
द्विज ने तुरत ही ऐसा, प्रश्न उठाया-माया, यह० ॥२॥

तर्ज—सारी दुनिया में दिन

रोती-रोती यों बुढ़िया सुनाने लगी।
खोल दुख का पिटारा दिखाने लगी ॥ध्रुवपद॥

भाई ! जिस दिन मरे थे पियारे पिया,
साल नव का था, बेटा बड़ा चैनिया।
तीन छोटे थे, आंसू बहाने लगी, रोती० ॥१॥
सज्जनों ने सुधीरज बंधाया मुझे,
वक्त निकला जरा भान आया मुझे।
नन्हें बच्चों पै दिल को टिकाने लगी, रोती० ॥२॥
किन्तु पैसा न था दुःख पाती थी मैं,
पीस-पोकर ही खर्चा चलाती थी मैं।
फिर भी आशा से टाइम बिताने लगी, रोती० ॥३॥

तर्ज—और कहीं पर जाओ !

कर उत्तावल बहू चैनिए के लाई,
मौज करूंगी अब मैं ऐसे हुलसाई ॥ध्रुवपद॥
एक बार तो आई बहुवर, अटक गई फिर जाकर पीहर।
बार-बार बुलवाई लेकिन नहिं आई, कर० ॥१॥
अलग करो तो मैं आ जाऊं, कहलाया वरना नहिं आऊं।
भैया ! आखिर अलग रसोई करवाई, कर० ॥२॥
मैं फिर करने लगी मजूरी, मन की आशा रही अधूरी।
खैर ! धैर्य धर फिर भी गाड़ी सरकाई, कर० ॥३॥

तर्ज—गाये जा गीत मिलन के

श्यामु-रामु की फिर मैं, शादी कर दिल में,
परम सुख पाई थी ॥ध्रुवपद॥
रूं-रूं में खुशियां छाई थीं लेकिन, कर्मों की बांकी बात।
बहुओं में बनती बिल्कुल नहीं रही, लड़ने लगी दिन-रात।
मैंने हो मजबूर, श्यामु को किया दूर, परम० ॥१॥

तर्ज—अलबेला छैला !

अब बहू राम की, मुझको भी लगी दुःख देने ॥ध्रुवपद॥
एक कहूं तो सात सुनावे, नागिन सम फूंफांकर।
हुआ राम भी आखिर उसका, मुझे रुलाता फिर-फिर, अब० ॥१॥

मैं कहती रे जन्म दिया है, पापी ! कुछ तो बस कर ।
वह कहता ले ले तेरा भाड़ा, बक-बक ज्यादा मत कर! अब० ॥२॥

तर्ज—मत बांधो ! गठड़िया

ऐसे लड़ कर के रामा निकल ही गया,
रो रही घर में दिल मेरा जल ही गया ॥ध्रुवपद॥
अब एक पेमला था मेरे साथ में,
शादी करने से मन किंतु फिर ही गया, ऐसे० ॥१॥
स्वजनों ने आकर मुझको दवाया,
प्रोग्राम आखिर बदल ही गया, ऐसे० ॥२॥
सोचा बहू अब के अच्छी मिलेगी,
बनने सुखी दिल उमड़ ही गया, ऐसे० ॥३॥
पैसे की शादी की मैंने ज्यों-त्यों,
जाना था दुख अब तो टल ही गया, ऐसे० ॥४॥

तर्ज—धर्म की पूंजी कमा ले !

वहू आई के नहिं आई, सुन भाई! बोला इतने में पेमला ॥ध्रुवपद॥
मैं तो यहां पर अब न रहूंगा, जा परदेश धनेश बनूंगा ।
दे दे मुझको बिदाई, सुन भाई ! ॥१॥
बहुत कहा पर प्रेम न माना, छोड़ उसे तू हो जा रवाना ।
(यों) कहते ही आंख दिखाई, सुन भाई ! ॥२॥
नहिं-नहिं! वह तो साथ रहेगी, अरे ! मेरे में क्या बेला वहेगी ?
बस ! हो गयी तुरत लड़ाई, सुन भाई ! ॥३॥
लड़-भिड़ साथ वहू को लेकर, प्रेम प्रदेश सिधाया सजकर ।
(फिर) चिट्ठी भी नहिं आई, सुन भाई ! ॥४॥

तर्ज—हीरा मिसरी का

बुढ़िया रोने लगी, कहती-कहती बात, बुढ़िया ॥ध्रुवपद॥
रोती-रोती ने यों गाया, भाई ! तू पंडित कहलाया ।
मेरा देख जरा-सा हाथ, बुढ़िया० ॥१॥
सच बतला अब कितना जीना ? क्यों नहिं आता मेरा मरना ।
कर देखा है दृग् पात, बुढ़िया० ॥२॥

मणि एक सौ छठवां पीपल के राम-राम

तीन शिष्यों सहित एक मौनी बावे ने शहर के बाहर पीपल के नीचे तंबू लगाकर डेरा डाला। कई दिनों के बाद मौन खोलकर कहने लगा कि यहां पीपल महर्षि तपस्या कर रहे हैं और राम-राम जप रहे हैं। सारा शहर पागल हो गया है और पीपल से राम-राम सुनने लगा। फिर सुमति सेठ ने उस बावे की पोल निकाली एवं लोगों को समझाया। इस कथा में ठग साधुओं से बचने की शिक्षा है।

तर्ज—हीरा मिसरी का

ठगाई दुनिया में, छाई बिना शुमार ।।ध्रुवपद।।
वेष साधु का धरने वाले, धर्म ठगाई करने वाले।
धूर्तों का नहिं पार, ठगाई०।।१।।
अंतर भेद न पाती दुनिया, देखादेख लुभाती दुनिया।
भेड़ भ्यांह-अनुसार, ठगाई०।।२।।

तर्ज—म्हांरी छोटी-सी वैरागण नै

सुन लेना ! पुर के बाग में, बाबा जी एक आये।
बाबा जी एक आये, सह चेले तीन सुहाये, सुन ।।ध्रुवपद।।
पीपल-तल तंबू छाया, आसन रच ध्यान लगाया।
दर्शन हित पुर-जन धाये, बाबाजी० ।।१।।
नहिं आंख खोलते बाबा, नहिं हर्फ बोलते बाबा।
शिष्यों ने गुन बतलाये, बाबाजी० ।।२।।
मौनव्रत धारन कर, आए हैं हिमगिरि से चल।
गुरु अजब विभूति कहाये, बाबाजी० ।।३।।
हैं तीन काल के ज्ञानी, कोई भी बात न छानी।
सुन पुरवासी ललचाये, बाबाजी० ।।४।।

तर्ज—दिल्ली चलो !

फैल गई, फैल गई, फैल गई जी,
बाबा जी की महिमा घर-घर फैल गई जी ।।ध्रुवपद।।
संख्या दिन-दिन भक्तों की बढ़ती ही जाती है,
आ-आकर ऋषि के चरणों में सिर झुकाती है,
एक रोज शिष्यों ने ऐसी बात कही जी, बाबा जी० ।।१।।
कल सवेरे आना ! बाबा मौन खोलेंगे,
खुद हाथों से भस्म देंगे फिर कुछ बोलेंगे ।
बस, उलट गया है गांव, भारी भीड़ हुई जी, बाबाजी० ।।२।।

तर्ज—अलबेला छैला !

बाबाजी सब के, टीकी भसम को लगाते ।।ध्रुवपद।।
बुड्ढे आते बालक आते, सेठ-मुनीम सुहाते ।
डाक्टर मास्टर अहलकार गण, आ-आ शीश झुकाते, बाबाजी० ।।१।।
सधवा आती विधवा आती, कई कुंवारियां आतीं ।
बांझ स्त्रियां बच्चों की भूखी, भारी, धूम मचातीं, बाबाजी० ।।२।।
भीड़ मिटी ग्रामाग्रगण्य मिल, बाबाजी से बोले ।
आशीर्वाद गांव को दें, प्रभु ! मौनव्रत अब खोलें, बाबाजी० ।।३।।

तर्ज—हो भाभी ! तमे थोड़ा-थोड़ा खावो

(बाबा) हो भाई ! भाग्यशाली हो सारे गांव वाले ।।ध्रुवपद।।
वर्षों से तप रहे हैं पीपल महर्षि यहां,
जपते हैं जाप प्रभु का इस ही से मैंने यहां ।
इनकी सेवा में डेरे स्वयं डाले, हो भाई ! ।।१।।
झूठी ही हां ! हां ! करके बोले दो-चार जने,
तपसी पुराने एक हमने भी कान सुने ।
(जो) यहां रहते थे बुड्ढों ने निहाले, हो भाई ! ।।२।।

तर्ज—म्हांरा सतगुरु करत विहार

बोले बाबा हां ! हां ! वे ही, पीपल बन कर तप रहे हैं ।
बनकर तप रहे हैं, प्रभु को पल-पल जप रहे हैं ।।ध्रुवपद

सांझ समय श्री राम-राम की, आती है आवाज।
सुनना हो तो आना भाई ! मिलजुल सकल समाज, बोले० ॥१॥
अचरज का न शुमार रहा, सब नियत समय मिल आये।
पीपल से भी राम-राम का जाप स्पष्ट सुन पाये, बोले० ॥२॥
अब तो बाबा जी की महिमा, मुख से कही न जाती।
होने ढेर लगे रुपयों के, दुनियाँ दौड़ी आती, बोले० ॥३॥

तर्ज—दुनिया में बाबा !

अब यात्री-गण भी, काफी लगे हैं वहां आने ॥ध्रुवपद॥
सांझ समय नित लगता मेला, खुलता रकम-रकम का खेला।
लगती कई दुकानें, अब० ॥१॥
सुमति सेठ ने देख विचारा, ठग ने भारी जाल पसारा।
लगा लोगों को समझाने, अब० ॥२॥
लेकिन कोई भी नहिं सुनते, कारण राम-राम नित सुनते।
कैसे ढोंग पिछानें, अब० ॥३॥

तर्ज—मेरा दिल तोड़ने वाले !

छिपा है एक दिन श्रेष्ठी, अकेला उसी पीपल पर।
पकड़ने चोर की चोरी, हो रहा खूब ही तत्पर ॥ध्रुवपद॥
ठगाई देख ली सारी, सुनो अब दूसरे ही दिन।
लगी जब आरती होने, कहा है सेठ ने डटकर, छिपा है० ॥१॥
अरे पुरवासियों प्यारे ! बने हो क्यों सभी पागल !
सही है धूर्त यह बाबा, कभी नहिं बोलता पीपल, छिपा है०॥२॥

तर्ज—और कहीं पर जाओ !

अगर कहो तो चोर पकड़ कर दिखलाऊं।
इस ढोंगी का ढोंग तुम्हें सब बतलाऊं ॥ध्रुवपद॥
लाल हो गए बाबाजी सुन, देख रहे जन गूंगे-से बन।
बोला श्रेष्ठी लो! अब मैं अन्दर जाऊं, अगर० ॥१॥

तर्ज—आज्यो जी-आज्यो जी गुरुदेव !

दौड़ा जी, दौड़ा जी यों कह तंबू की ओर।
बक-बक कर रहा बाबा जी, पर चला न तिलभर जोर ॥ध्रुवपद॥

अन्दर जाकर पाट उठाया, नीचे खड्डा गहरा पाया।
खड्डे में घुस बोला जी, धीरे से सुमति चकोर, दौड़ा जी० ॥१॥
भैया! अब तू नीचे आ जा! लोग गए सब! लेट लगा जा!
क्या अब ही आ जाऊं जी, सुन लगा पूछने चोर, दौड़ा जी०॥२॥

तर्ज—लूटत है दिन-रैन सभी मिल

हां कहते ही निकली सारी पोल पलक में ॥ध्रुवपद॥
ऊपर से नर उतर गया है, उसे तुरत ही पकड़ लिया है।
(फिर) तोड़ा तम्बू भेद सुनाया, खोल पलक में, हां० ॥१॥
कोटर में यह नर छिपता है, राम-राम मुख से जपता है।
लख पीपल को पोला, निकला गोल पलक में, हां० ॥२॥

तर्ज—राधेश्याम

लज्जित होकर भागे बाबा, अब खींचो वर्णन का सार।
फिरते ऐसे पाखंडी, तुम रहना बन कर के हुशियार।
सुगुरु सुदेव सुधर्म धार कर, भवसागर से तर जाना!
आश्विन सुदि चौदस' 'आंगआ' पुर में 'धनमुनि' का गाना ॥१॥

मणि एक सौ सातवां — कन्या-विक्रय

नगद बीस हजार लेकर बन्नाशा और दीवाली ने अपनी पुत्री विद्या साठ वर्ष के बूढ़े को दी। शादी के समय पुत्री काफी रोयी-पीटी। लेकिन मां-बाप ने कुछ नहीं सुना। आखिर पुत्री शाप देकर विदा हुई। नतीजा यह निकला कि दीवाली को जलकर मरना पड़ा एवं सेठ पागल बनकर हाय! हाय! करता रहा।

तर्ज—आजादी का दीवाना था

कन्या का विक्रय करने वाले, सुख नहिं पाते हैं।
पुत्री का पैसा लेने वाले, दुख ही पाते हैं ।।ध्रुवपद।।
मांस बेचने वाले लोग कसाई कहलाते।
सुता बेचने वाले उनसे भी बढ़ जाते हैं, कन्या० ।।१।।
लड़की के मां-बाप नहीं, वे हैं बेशक दुश्मन।
कर जीवन बरबाद, कुगति का पंथ बनाते हैं, कन्या० ।।२।।
अन्त दूध का दूध में, पानी का पानी में।
टिक नहिं सकते ऐसे पैसे, जो ले जाते हैं, कन्या० ।।३।।

तर्ज—दुनिया में बाबा!

था वृषभ नगर में, सेठ खब्बाशा एक भारी।
थी उम्र साठ की, मर गई प्राणपियारी ।।ध्रुवपद।।
पंडित भोलाराम बुलाया, सारा अपना हाल सुनाया।
अरे ला दे सुंदर नारी, था० ।।१।।
दांत गिर गिए आंख गड़ गई, ताकत तन में बिल्कुल न रही।
अब यह क्या बात विचारी?, था० ।।२।।
ऐसा मूर्ख कौन है गाओ? जो पुत्री दे नाम बताओ!
बोला है अविचारी, था० ।।३।।

तर्ज—राधेश्याम

नगर विराट सेठ बन्नाशा, सेठानी दीवानी है।
उनकी पुत्री विद्या है जो, रंभा सम रति वाली है ॥१॥
काफी बड़ी हो गई लेकिन, न किया उसका अब तक व्याह।
देख रहे हैं धनिक सेठ को, है रुपया लेने की चाह ॥२॥
रुपये अपने पास अमित हैं, जो मांगें दे दो जाकर।
नगद पांच सौ लेकर भट्ट, चला है मोद हृदय में भर ॥३॥
पहुंचा नगर विराट हरामी, विप्र मिला हरिराम वहां।
दिये चार सौ गया तुरत वह, था बन्नाशा सेठ जहां ॥४॥

दोहा

साठ वर्ष की उम्र में, है खब्बाशा शाह
बड़े प्रेम से कर रहे, वे विद्या[1] की चाह ! ॥१॥

तर्ज—सुना दे-३ किसना !

तैयार हूं, तैयार हूं, तैयार हूं तैयार।
जो दिलवा दे भैया ! मुझको, रुपये तीस हजार ॥ध्रुवपद॥
छी! छी! छी! बोला ब्राह्मण, न मिलेगा इतना तो धन-२।
तीनों से भी बढ़ जाता है इन रुपयों[2] का भार, नगद० ॥१॥
कम से कम बीस तो लूंगा, अब नीचे नहिं सरकूंगा-२।
हां कहकर हरिराम ने, करवाया अत्याचार[3], नगद० ॥२॥
भोला द्विज वापस आया, खब्बाशा मन हुलसाया-२।
इक्षु तीज दिन शादी करने, पहुंच गया धर प्यार, नगद० ॥३॥

तर्ज—धर्म पर डट जाना

देखकर वर राजा, सब ने शीश हिलाया ॥ध्रुवपद॥
कहां यह देवी विद्या सुंदर, कहां यह बुड्ढा डाकी-सा वर।
किसने बुलवाया, सबने० ॥१॥

---

१. जो १६ वर्ष नौ महीनों की है।
२. नौ मण पांच सेर।
३. सगपन।

सेठ की बुद्धि भ्रष्ट हुई है, रुपया ले कन्या बेची है।
गजब कलियुग आया, सबने० ॥२॥
देख वर विद्या भी घबराकर, जा छिप बैठी घर के अंदर।
लेने द्विज[1] धाया, सबने० ॥३॥

तर्ज—धर्म की पूंजी कमा ले !

इस बुड्ढे को न वरूंगी, मरूंगी चाहे जिह्वा को खींचकर ॥ध्रुवपद॥
मात-पिता समझा रहे फिर-फिर, हो गया जो कुछ बेटी! क्षमा कर।
ना ! ना ! क्षमा न करूंगी, मरूंगी०॥१॥
मात-पिता नहिं हो तुम राक्षस, मुझको खाने कर रहे धसमस।
नहिं भक्ष्य तुम्हारा बनूंगी, मरूंगी०॥२॥

तर्ज—श्री महावीर चरण में

आखिर रो-रोकर मां-बाप, सुता को बाहर लाए हैं।
फेरे बुड्ढे के साथ फिराए हैं ॥ध्रुवपद॥
था निर्दय ब्राह्मण, करवा दी सब विधि फौरन,
इत सेठ सेठानी का मन।
हद फूल रहा धन बेहद पाए हैं, आखिर०॥१॥
अब सुता चली है, माता के साथ मिली है,
क्रोधाग्नि प्रबल जली है।
हो व्याकुल ऐसे शब्द सुनाए हैं, आखिर०॥२॥

तर्ज—भलाई देख लेना !

तुम सुख न कभी पाओगे, भलाई देख लेना !
तुम आखिर पछताओगे, भलाई देख लेना ! ॥ध्रुवपद॥
पुत्री का धन पच न सकेगा, कर देगा तुरत तबाही, भलाई० ॥१॥
पापिनि मां! तू कुमौत मरेगी, है तेरी बुरी कमाई, भलाई० ॥२॥
पागल बन यह बाप फिरेगा, नहिं फर्क पड़ेगा राई, भलाई० ॥३॥
मात-पिता को कोस सुता ने, ली है अथ घर से विदाई, भलाई० ॥४॥

---

१. हरिराम।

तर्ज—असली आजादी अपनाओ !

मौज उड़ा रहा सेठ बन्नाशा-२, रुपये बीस हजार मिल गए,
फल गई मन की आशा, मौज ॥ध्रुवपद॥
तन में धन की गरमी आयी, फिरता है घर बेपरवाही ।
किन्तु निकम्मे रुपयों ने, दिखलाया अजब तमाशा, मौज०॥१॥
बाहर इक दिन सेठ सिधाया, ग्राममुख्य पीछे से आया ।
सेठानी से रुपये मांगे, गर्ज दिखायी खासा, मौज०॥२॥

तर्ज—लहरिये वाली

हुई रे, हुई रे इन्कार, सेठानी फौरन ॥ध्रुवपद॥
भैया ! मालिक घर में नहीं है,
मैं कैसे दूं रुपये उधार, सेठानी०॥१॥
(मुखिया) सेठानी जी ! न करो चिंता,
दे दो रुपये निकाल, सेठानी०॥२॥
तुमसे सेठ न कुछ भी कहेंगे,
(मैं) कह दूंगा सब अधिकार, सेठानी०॥३॥
अति आग्रह लख दे दिए रुपये,
ले पहुंचा निज द्वार, सेठानी०॥४॥

तर्ज—राधेश्याम

सेठ दूसरे दिन घर आया, सेठानी ने हाल कहा ।
रुपयों की सुन बात अहो ! बन्नाशा बेहद गर्म हुआ ॥१॥
पूछे बिना दे दिए रुपये, शर्म नहीं आयी तिल भर ।
क्या रुपये नभ से पड़ते हैं, हाथ उठाया यों कहकर ॥२॥

तर्ज—दिल्ली चलो !

थप्पड़ मारे, थप्पड़ मारे, थप्पड़ मारे हैं ।
गुस्से होकर सेठ जी ने थप्पड़ मारे हैं ॥ध्रुवपद॥
मारते ही सेठानी ने क्रुद्ध हो कहा,
रुपये मेरी लड़की के हैं तू क्यों लड़ रहा ?
बस ! लाठी से लगे पीटने टरे न टारे हैं, गुस्से०॥१॥

(सेठानी) मुझको तो बेशक मिलेगी मौत की सजा,
पर तुझको तो दिखला दूंगी मार का मजा ।
यों कह कर के झट कोठे के द्वार उघाड़े हैं, गुस्से०॥२॥

तर्ज—अखियां मिला के

अंदर घुसकर, कोठे को ढंक कर, खोली पिटारी ॥ध्रुवपद॥
पेटी से तुरत निकाला, नोटों का प्यारा बंडल ।
माचिस दिखला दी फौरन हो गया, वह भस्म बल-जल, अंदर०॥१॥
सोना और चांदी, रुपये-पैसे त्यों गहने लेकर ।
(फिर)टट्टी के मिष जा डाले कूप में, पागल-सी बनकर, अंदर०॥२॥

तर्ज—लूटत है दिन रैन

तेल छिड़क फिर सेठानी ने आग लगाई ।
जल कर खोए प्रान, क्रोध में समझ न पाई ॥ध्रुवपद॥
सेठ सो रहा था घर बाहर, सोच रहा था मन में फिर-फिर ।
सेठानी को नाहक मैंने, आज रीसाई, तेल०॥१॥
प्रात:काल मना लूंगा मैं, ज्यों-त्यों शांत बना लूंगा मैं ।
आग धधकती कोठे में से, इधर लखाई, तेल०॥२॥

तर्ज—म्हारा सतगुरु करत विहार

(सेठ) हा ! हा ! किससे करूं पुकार ।
दीवाली होली कर गयी रे ॥ध्रुवपद॥
ले गई चांदी ले गई सोना, ले गई भूषण सारे ।
रुपये बीस हजार जला गई, नगदी बिद्या वाले, हा ! हा ! ॥१॥
आप मर गई मुझे मार गई, कर गई सत्यानाश ।
वाह ! वाह ! सेठानी! तुझको, लाख-लाख शाबाश, हा! हा! ॥२॥
छाती-माथा जोर-जोर से, कूट रहा बन पागल ।
होली कर गई, होली कर गई, बोल रहा बन विह्वल, हा! हा! ॥३॥

तर्ज—राधेश्याम

रो-रोकर यों जन्म बिताया, अब श्रोता कुछ ध्यान धरो !
कन्या-विक्रय करने का, सारे ही मिलजुल त्याग करो !
दो हजार षडधिक शुभ संवत, कार्तिक बदि दसमी शशिवार ।
सद्गुरु-कृपया 'धन' ने गाया, 'ध्रांगध्रा' में यह अधिकार ॥१॥

मणि एक सौ आठवां   लोभी महंत

महंत ने लोभांध होकर कचरे सेठ को २५ हजार रुपये दे दिए। रुपये लेकर वह भाग गया और रामनगर में जाकर शादी कर के वहीं बस गया। पीछे से भटकता-भटकता महंत भी जा मिला। कचरे ने उसे वेचा और स्त्री-बच्चे लेकर भागा। रास्ते में डाकुओं ने उसे मार डाला। इधर महंत को महाजनों ने कसाइयों से छुड़ाया एवं उसने महादुःखमय जीवन व्यतीत किया। इस कथा से लोभ-त्याग की प्रेरणा लेनी चाहिए!

तर्ज—लहरिये वाली

कुछ नहिं सकते विचार, माया के लोभी।
होते हैं आखिर ख्वार, माया के लोभी ।।ध्रुवपद।।
खा नहिं सकते, पी नहिं सकते, दे नहिं सकते तार, माया०।।१।।
कैसे वढ़े धन कैसे वढ़े धन, जपते हैं हा! हर बार, माया०।।२।।
हित की सीख न सुनते मन में, रहते हैं वन हुशियार, माया०।।३।।
लेकिन ऐसे लोभी जनों को, ठगते हैं ठग-सरदार, माया०।।४।।
ठग भाई भी सुख नहिं पाते, सुन लो ! एक अधिकार, माया०।।५।।

तर्ज—लूटत है दिन-रैन

वावा एक मठधारी, रहता राममहल में ।।ध्रुवपद।।
ग्राम्यजनों ने महंत वनाया, राममहल की गद्दी पाया।
मिली संपदा भारी, रहता०।।१।।
नगदी वीस हजार पड़े थे, ऊंट वैल और अश्व खड़े थे।
ब्राह्मण एक पुजारी, रहता०।।२।।

तर्ज—हीरा मिसरी का

लोभी पूरा था, लेकिन मठ सरदार ।।ध्रुवपद।।

रुपयों को गिनता था फिर-फिर, देख-देख होता चिंतातुर।
हैं थोड़े कलदार, लोभी०॥१॥
उसी गांव में लगड़ा-काना, बनिया एक कचरा कहलाता।
कूड़-कपट भंडार, लोभी०॥२॥
राममहल में प्रतिदिन आता, इधर-उधर की गप्प लड़ाता।
हुआ परस्पर प्यार, लोभी०॥३॥

तर्ज—देखो-देखो जी डगर

(महंत) बोलो-बोलो जी सेठ ! तुम कुछ नहिं करते कैसे ?
खोलो-खोलो जी भेद, तुम इत-उत फिरते कैसे ? ॥ध्रुवपद॥
(कचरा) बाबा ! काम करूं मैं कैसे ? पास नहीं है पैसे।
करूं एक का सवा पलक में, काम याद है ऐसे।
बोला-बोला जी नमन कर, कचरा यों धीरे से ॥१॥

तर्ज—तन नहीं छूता कोई

लुब्ध हो बाबे ने फौरन, एक रुपया दे दिया।
दो घड़ी के बाद ही लाकर सवा हाजिर किया ॥ध्रुवपद॥
दूसरे दिन पांच के करके दिखाये सार्धपट्।
तीस के चालीस कर फिर, अंध ऋषि को कर लिया, लुब्ध०॥१॥
सोचने कुछ भी न पाया, सौ रुपैये ला दिए।
देख यह धंधा पुजारी का लगा हिलने हिया, लुब्ध०॥२॥

तर्ज—आज्यो जी, आज्यो जी गुरुदेव !

मानो जी, मानो जी महाराज ! तजो यह काम।
कर देगा बरबादी जी, है काणा बड़ा हराम ॥ध्रुवपद॥
फिर-फिर यों द्विज ने समझाया, किन्तु महंत राह नहिं आया।
अंत पटेल बुलाये जी, जतलाया हाल तमाम, मानो०॥१॥
बहुत[1] कहा पर ध्यान न डाला, द्विज को होकर क्रुद्ध निकाला।
(अथ) कचरा रुपये लेकर जी, चल गया दूसरे गाम, मानो०॥२॥

---
१. पटेलों ने।

तर्ज—मेरा दिल तोड़ने वाले !

विताकर सात दिन आया, रुपैये डेढ़ सौ लाया ।
हर्ष वश भान ऋषि भूला, समझ में दंभ नहिं आया ।।ध्रुवपद।।
लगा है पूछने भैया ! तुम्हें कितने मिले इसमें ।
धर्म से सत्य कहता हूं, मुनाफा पांच का पाया, विता०।।१।।
लगा है सोचने वावा, वड़ा ही नेक है कचरा ।
दिये नव सौ किए तेरह सौ, अचंभा अमित छाया, विता०।।२।।

तर्ज—गाए जा गीत मिलन के

इक दिन अवसर पा के, प्रपंच रचा के,
काणा हंस वोला है ।।ध्रुवपद।।
वावा जी ! थोड़े रुपयों से पूरा, होता नहीं व्यापार ।
मोटी रकम यदि आ जाये कर में, (तो)कर दूं मैं दुगुना माल ।
जा परदेश व्यापार, करूं धर प्यार, काणा०।।१।।
अंदाज कितना टाइम लगेगा, वावे ने प्रश्न किया !
ज्यादा से ज्यादा षट्मास समझें ! काणे ने स्पष्ट कहा ।
दिया सारा ही कोष, था लोभ का जोश, काणा०।।२।।

तर्ज—म्हारा सतगुरु करत विहार

लेकर नगद पचीस हजार, वहां से हुआ रवाना है ।।ध्रुवपद।।
रुपयों से भर शकट मुदित मन, कोस पांच सौ जाकर ।
रामनगर में कर ली शादी, सुख में जा रहे वासर[1], लेकर० ।।१।।
मास गया दो मास गए, अथ षट् मासी भी निकली ।
होश उड़ गए वावा जी को, खवर सेठ की न मिली, लेकर० ।।२।।

तर्ज—तकदीर वनी

अव किससे कहूं, मेरी कौन सुने,
कचरे ने तो मुझको ख्वार किया ।
सव ही ने कहा, है धूर्त महा,
(पर) मैंने न हाय ! विचार किया ।।ध्रुवपद।।

---

१. एक वच्चा भी हो गया ।

बजे थे रात के बारह, मन नहिं रख सका बाबा।
चुपचाप चला, न किसी से मिला,
इस बाबत का कुछ न प्रचार किया, अब०॥१॥
अरे कचरा ! अरे कचरा ! मुझे क्यों कर गया कचरा ?
कहां जा के मरा, मिल जा रे जरा !
मैंने तेरा क्या इतना बिगाड़ किया, अब० ॥२॥
नगर पुर ग्राम खेतों में, भटकता इस तरह रोता।
दो साल गए, दुख घोर सहे,
विपिनों में अपार विहार किया, अब० ॥३॥

तर्ज—झूठी दुनिया बड़ी रंगीली

फिरता-फिरता अब वह बाबा, रामनगर में आया लोगों !
बन-ठन कहीं जा रहा कचरा,
रास्ते ही में पाया लोगों! ॥ध्रुवपद॥
होते ही चौनजर सेठने, सविनय शीश झुकाया है।
आओ बाबा! आओ बाबा! कहकर यों बिरुदाया लोगों !
फिरता ०॥१॥
घर ला करके नहलाया है, फिर भोजन करवाया है।
महलों में विश्राम किया फिर, बाबे ने फरमाया लोगों !
फिरता० ॥२॥
सेठ न तुमने लिखा पत्र भी, दिल मेरा अकुलाया है।
दो वर्षों से भटक रहा हूं, नहिं पीया नहिं खाया, लोगों !
फिरता० ॥३॥

तर्ज—दुनिया में बाबा !

भर पाए दूने, मूल रुपैया मेरे लाओ !
भर पाये दूने, अब मत बार लगाओ ! ॥ध्रुवपद॥
कचरा बोला मर्म न पाए, इतना दिल अभरोसा लाए।
लो भले अभी ले जाओ ! भर० ॥१॥
मैं तो तन को तोड़ रहा हूं, लाख बनाने दौड़ रहा हूं।

कुछ तो अक्ल लड़ाओ ! भर० ॥२॥
पौन लाख तक पहुंच गए हैं, धंधे काफी किए हुए हैं।
(अब) जो इच्छा फरमाओ ! भर० ॥३॥

तर्ज—चले आना हमारे अंगना

ऐसी वाणी सुन के, बदले भाव मन के,
पड़ा लालच में बाबा अब तो-२ ॥ध्रुवपद॥
बोला उतावल इतनी कहां है ?
हंसी में मैंने यूंही कह दिया है-२ ।
लाख पूरे कर दो ! मेरे दुःख हर दो !, पड़ा० ॥१॥
बाबा वहीं चैन-बंशी बजाता,
कभी गर्म हलुवा कभी खीर खाता-२ ।
लड्डू बनते हैं कभी, पेड़े उड़ते हैं कभी, पड़ा० ॥२॥

तर्ज—नरम बनो जी नरम बनो !

निकल गया जी निकल गया, एक महीना निकल गया ॥ध्रुवपद॥
खाने से यों प्रतिदिन माल, बन गया बाबा तन में लाल ।
कचरे का गुन सुमर रहा, एक० ॥१॥
जमा रुपैये ले आयें, साथ आप भी आ जाएं ।
(यों) कचरे ने एक रोज कहा, एक० ॥२॥
तुरत चला ऋषि हर्ष अमान, पहुंचा मम्मइगर[1] के स्थान ।
बिठलाया नहिं भेद दिया, एक० ॥३॥

तर्ज—पिया घर आजा !

बाबा बाहर बैठा है, लेने रुपैये कचरा,
अन्दर सिधाया-धाया, अन्दर ॥ध्रुवपद॥
रखना हो तो रख लो नर इक ताजा है-ताजा है,
कीमत क्या है ? दस हजार अन्दाजा है-अन्दाजा है ।
इतने तो कुछ ज्यादा है,

---

१. जो जीवित मनुष्य का खून निकालकर उससे दवा बनाते हैं।

आखिर हजार छह में सौदा पटाया, धाया० ॥१॥
व्यापारी आ महाराज से जांच रहा, जांच रहा।
श्रेष्ठी छह हजार आपके याच रहा-याच रहा।
है' मंजूर करे जो भी,
बस! ले रुपये कचरा फौरन पलाया, धाया० ॥२॥

तर्ज—धर्म की पूंजी कमा ले !

ले धन-माल सिधाया, सिधाया पापी पहले तैयार था ॥ध्रुवपद॥
धन की खुशी में भूल रहा था, मन में मूरख फूल रहा था।
अहा! कैसा काम जमाया, सिधाया० ॥१॥
लाख का भूखा बाबा आया, लेकिन मैंने खूब फंसाया।
अहो! अद्भुत चक्र चलाया, सिधाया० ॥२॥
यों मन मोद मना रहा कचरा, चढ़ गाड़ी में जा रहा कचरा।
एक जंगल राह में आया, सिधाया० ॥३॥

तर्ज—भलाई देख लेना !

सुख नहिं पाते अन्यायी, भलांई देख लेना !
दुख पाते हैं अन्याई, भलांई देख लेना ! ॥ध्रुवपद॥
भीलों की धाड़ भयंकर प्रगटी-२, कचरे पर लूट मचाई,
भलांई० ॥१॥
नारी सुत धन लूट लिए हैं-२, पापी को छुरी पहनाई, भलांई०॥२॥
बिलख-बिलख कर मर कचरे ने-२, पाताल सातवीं पाई,
भलांई० ॥३॥
आंख खोलकर अब तुम देखो-२, फली कैसी बुरी कमाई,
भलांई० ॥४॥

तर्ज—रघुपति राघव राजा राम

कर रहा बाबा इधर विचार,
अहो ! बना मैं धनसरदार ॥ध्रुवपद॥
मौज करूंगा जा निज गाम, न रहेगा दुविधा का नाम।

' बाबे ने कहा।

तर्ज—अलबेला छैला

ठाकुर मन्दिर में, बाबे को स्थान मिला है ॥ध्रुवपद॥
वही पुजारी रहता था यहां, इसने जिसे निकाला।
बस ! पहचान लगा है रोने, लगी दुःख की ज्वाला, ठाकुर० ॥१॥
हंस बोला ब्राह्मण काणे ने, कैसा खेल दिखाया ?
पैर पकड़ कर कहा बाबे ने, लालच का फल पाया, ठाकुर० ॥२॥
ज्यों-त्यों जीवन पूरण करता, पर धन को न विसरता।
गया कुगति में मर कर आखिर, हाय ! हाय ! मुख करता,
ठाकुर० ॥३॥

तर्ज—राधेश्याम

सुन यह वर्णन सज्जन लोगों, तृष्णा का तुम त्याग करो !
दगाबाजियों से बच कर के, नेकी के दिल भाव भरो !
दो हजार षड्धिक शुभ संवत, 'ध्रांगध्रा' धन तेरस दिन।
सद्गुरुओं की करुणा से, 'धनमुनि' ने गाया यह वर्णन ॥१॥

समापन-प्रशस्ति

तर्ज—राधेश्याम

जगदीश्वर की दयादृष्टि से, मणिमाला तैयार हुई।
मात्र कल्पना थी जो मन में, आज सही साकार हुई ॥१॥
मणिमाला में नए-नए मणि, अष्टाधिक शत हैं मंजुल।
दुर्गुण खंडन सद्गुणमंडन-हेतु हेतु हैं सभी सबल ॥२॥
मणिमाला के वाचक गण! मेरे कहने पर देना ध्यान।
वर्णन हैं संक्षिप्त अमुक, विज्ञों से उनका लेना ज्ञान ॥३॥
द्रव्य क्षेत्र समयानुकूल फिर, करना परिषद् में व्याख्यान।
धर्मकथा का रूप धार ये, कर देंगे बेशक कल्यान ॥४॥
वर्द्धमान शासन-अधिकारी, भिक्षु-भारमल ईश हुए।
रायचंद जय मघवा माणक, डालम कालु मुनीश हुए ॥५॥
श्री तुलसी के शासन से, 'धनमुनि' सोरठ में विचर रहा।
ध्रांगध्रा में तेरह मुनियों का, सुंदर संमिलन हुआ ॥६॥
दो हजार षडधिक संवत, वैसाख वदी पांचम गुरुवार।
न्यूनाधिक का प्रभुसाक्षी से, मिथ्या दुष्कृत बारंबार ॥७॥

•

लेखक की प्रकाशित रचनाएं

हिन्दी

१. सच्चा धन
२. प्रश्न-प्रकाश
३. लोक-प्रकाश
४. ज्ञान-प्रकाश
५. दर्शन-प्रकाश
६. चारित्र-प्रकाश
७. श्रावकधर्म-प्रकाश
८. मोक्षप्रकाश
९. मनोनिग्रह के दो मार्ग
१०. चौदह नियम
११. भजनों की भेंट
१२. ज्ञान के गीत
१३. उपदेशसुमनमाला
१४. एक आदर्श आत्मा
१५. चमकते चांद
१६. जैन-जीवन
१७. सोलह सतियां
१८. दो व्याख्यान
१९. दो पतिव्रताएं
२०. नव्यचन्द चरित्र
२१. चार व्याख्यान
२२. शब्दवेधी वीर चौहान
२३. व्याख्यान मणिमाला
२४. व्याख्यान रत्नमंजूषा
२५. व्याख्यान नवरत्नमाला
२६. श्री शान्तिनाथ चरित्र के तीन उपाख्यान
२७. दोहा-संदोह
२८. धनबावनी-सवैया शतक
२९-३८. वक्तृत्वकला के बीज १ से १० भाग तक
३९. पच्चीस बोल का सरल विवेचन

गुजराती

४०. तेरापंथ एटले शुं !
४१. धर्म एटले शुं !
४२. परीक्षक बनो !

संस्कृत

४३. गणिगुण-गीतिनवकम्
४४. श्री कालुकल्याणमन्दिरम्
४५. ऐकाह्निक-श्री कालुशकम्

उर्दू

४६. जीवन-प्रकाश
४७. सच्चा धन

पंजाबी

४८. पंजाब पच्चीसी

लेखक की अप्रकाशित रचनाएं

संस्कृत

१. देवगुरु धर्म-द्वात्रिंशिका
२. प्रास्ताविकश्लोकशतकम्
३. श्री कालुगुणाष्टकम्
४. भाविनी
५. ऐक्यम्
६. श्री भिक्षुशब्दानुशासन-लघुवृत्तितद्धितप्रकरणम्

गुजराती

७. गुर्जरभजनपुष्पावली
८. गुर्जरव्याख्यानरत्नावलि

हिन्दी

९. वैदिक विचार-विमर्शन
१०. संक्षिप्त वैदिकविचार-विमर्शन
११. अवधान-विधि
१२. संस्कृत बोलने का सरल तरीका
१३. जैन महाभारत, जैन रामायण आदि बड़े व्याख्यान
१४. उपदेशद्विपञ्चाशिका

राजस्थानी

१५. औपदेशिक ढालें
१६. प्रस्ताविक ढालें
१७. कथा-प्रबन्ध
१८. छः बड़े व्याख्यान
१९. ग्यारह छोटे व्याख्यान
२०. सावधानी रो समुद्र

मुनि धनराज

जन्म : वि० सं० १९६७, माघ शुक्ला १,
सिरसा (हरियाणा)

दीक्षा : वि० सं० १९८०, ज्येष्ठ शुक्ला १५,
सुजानगढ़ (राजस्थान)

श्री जैन श्वेताम्बर तेरापंथ धर्मसंघ अणुव्रत-अनुशास्ता, युगप्रधान आचार्यश्री तुलसी के नेतृत्व में आज प्रगति-शिखर पर पहुंच रहा है। मुनि धनराज 'प्रथम' इस धर्मसंघ के बहुश्रुत विद्वान्, सरस कवि, लेखक, कुशल संग्रहकार, मधुर प्रवक्ता और सुयोग्य शिक्षक संत हैं। आप संघ के सर्वप्रथम शतावधानी हैं। वि० सं० २००४ माघ कृष्णा १४ रविवार को बम्बई में सर्वप्रथम आपने शतावधान का प्रयोग कर लोगों को आश्चर्यचकित कर दिया। संस्कृत, हिन्दी, राजस्थानी, गुजराती, पंजाबी तथा उर्दू आदि भाषाओं में आपने अनेक ग्रन्थों का प्रणयन किया है।